केन्सर परिचर्या एवं शोध सोसाईटी (रजि०)

सुजानगढ (राजस्थान)

के

समस्त सदस्य, सहयोगी एव शुभाकाक्षीगण
प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशनार्थ आर्थिक सहयोग
के लिये

श्री बाँगड़ चेरिटेबल ट्रस्ट

डीडवाना

के प्रति
हार्दिक आभार
समर्पित करते है।

शुभास्ते पन्थानः स्युः ।

प्रकाशक

कैंसर परिचर्या एवं शोध सोसाइटी (रजि.)

सुजानगढ़–331507

अर्थ सहयोगी

श्री बागड़ चेरिटेबल ट्रस्ट

डीडवाना

बुद्ध पूर्णिमा – 1983

मुद्रक .   फोन १७५

किशोर पेपर इण्डस्ट्रीज एन्ड प्रिन्टर्स

सुजानगढ़

केन्सर परिचर्या एवं शोध सोसाईटी (रजि०)

सुजानगढ (राजस्थान)

के

समस्त सदस्य, सहयोगी एव शुभाकाक्षीगण
प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशनार्थ आर्थिक सहयोग
के लिये

श्री बाँगड़ चेरिटेबल ट्रस्ट

डीडवाना

के प्रति
हार्दिक आभार
समर्पित करते है।

शुभास्ते पन्थानः स्युः ।

योगीराज श्री कृष्ण उवाच

आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः ।
यज्ञस्तपस्तथा दान तेषा भेदमिमं शृणु ॥ ७ ॥

प्रत्येक की रुचि का आहार भी तीन प्रकार का होता है । और यही हाल यज्ञ, तप एव दान का भी है । सुनो, उनका भेद बतलाता हूँ ।

आयु.सत्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः ।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्विकप्रियाः ॥ ८ ॥

आयु, सात्त्विक वृत्ति, बल, आरोग्य, सुख, और प्रीति की वृद्धि करने वाले, रसीले, स्निग्ध, शरीर मे भिद कर चिरकाल तक रहनेवाले और मन को आनन्ददायक आहार सात्विक मनुष्य को प्रिय होते हैं ।

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः ।
आहारा राजसश्रेष्टा दु.खशोकामयप्रदाः ॥ ९ ॥

कटु अर्थात् चरपरे, खट्टे, खारे, अत्युष्ण, तीखे, रूखे दाहकारक तथा दु.ख–शोक और रोग उपजाने वाले आहार राजस मनुष्य को प्रिय होते है ।

यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत् ।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम् ॥ १० ॥

कुछ काल रखा हुआ अर्थात् ठण्डा, नीरस, दुर्गन्धित, वासा, जूँठा तथा अपवित्र भोजन तामस पुरुष को रुचता है ।

—श्रीमद्भगवद्गीता

—: अनुक्रमणिका :—

		पृष्ठ
प्राक्कथन कि कर्तव्यम् ?	—	क
प्रथम सोपान—		
परिचय	—	१
परिभाषा	—	११
प्रकार	—	२६
कारण	—	३५
द्वितीय सोपान—		
ऐतिहासिक पृष्ठभूमि	—	४१
भारतीय पृष्ठभूमि	—	४८
त्रिवेणी सगम—मानव जीवन	—	५६
इतिहास के काल खण्ड	—	६६
रसो वै सः	—	८८
तृतीय सोपान—		
वैद्य औषध विवर्जित योग	—	११७
मध्यम योग	—	१३०
सामान्य योग	—	१६४
चतुर्थ सोपान—		
वैदिक चिकित्सा	—	१८६
आश्वासन चिकित्सा	—	१९३
औषधि चिकित्सा	—	१९६
मानस चिकित्सा	—	२०४
वेदो मे वैद्यक शास्त्र	—	२०७
ऋग्वेद मे आयुर्वेद	—	२२४
यजुर्वेद मे आयुर्वेद	—	२३७
अथर्ववेद मे आयुर्वेद	—	२५१

प्राक्कथन

किं कर्तव्यम् ?

वर्तमान विज्ञान की उपलब्धियाँ आश्चर्यजनक और आशातीत है। अनेक क्षेत्रो मे विज्ञान ने मानव जाति के समक्ष नये आयाम खोल दिये है। चिकित्सा के क्षेत्र मे भी विज्ञान ने आभ्यन्तरिक अग प्रत्यारोपण एव जीनस् मे परिवर्तन आदि चमत्कारिक अन्वेषणो एव अनुसन्धानो द्वारा क्रान्तिकारी परिवर्तनो की रूप रेखा प्रस्तुत की है। किन्तु ऐसा शक्तिशाली विज्ञान मानव जाति के एक रोग समूह कैन्सर को पराजित करने मे अब तक असमर्थ रहा है।

अरबो रुपये व्यय कर लाखो वैज्ञानिक अनवरत कैन्सर से मुक्ति के प्रयत्न मे अभी तक कोई सतोषजनक समाधान नही दे सके है। न तो कारण का पता लगा सके न कोई उपचार की ही अचूक विधि खोज पाये। इसके विपरीत इसका भय जनसाधारण मे इतना फैल चुका है कि हरेक मनुष्य इसके नाम से भयाक्रान्त है। कैन्सर होने की सभावना से ही मृत्यु को अवश्यभावी मानकर लाखो व्यक्ति अपनी जीवन शक्ति और रोगो से लडने की शक्ति, जो उनमें पर्याप्त मात्रा मे होती है, का रोग के खिलाफ सफल प्रयोग न करते हुए अपनी मानसिक शक्ति को, अपने आपको जल्दी से जल्दी और ज्यादा यन्त्रणादायक तरीको से मार डालने की आत्मघाती प्रवृति मे सयोजित कर देते है। कभी कभी ऐसी आशका होती है कि विश्व भर मे कैन्सर के प्रति इतने आतंक का जो वातावरण है, यह कुछ अतर्राष्ट्रीय दवा कंपनियो का व्यापारिक षडयन्त्र तो नही ? क्या आज से २०० या दो हजार वर्ष पूर्व कैन्सर नामक रोग समूह विद्यमान नही था ? ग्रीक, रोमन, मिश्र, भारतीय और चीनी चिकित्सा पद्धतियो के प्राचीन ग्रन्थो मे कैन्सर का वर्णन होना तो सब विद्वान मानते हैं, लेकिन इस रोग समूह की भयकरता और असाध्यता की जैसी डोडी वर्तमान चिकित्सा जगत पीटता है वैसी उन प्राचीन ग्रन्थो मे क्यो नही दिखाई देती ?

मानव जीवन और इसकी क्षमताये अनन्त है। वेल्लोर और बम्बई के कैन्सर के सबसे बडे अस्पतालो मे से असाध्य और अन्तिम स्टेज मे मानकर घर जाने की छुट्टी दिये हुए रोगी जिनके केवल कुछ दिन मात्र ही जी सकने की भविष्यवाणियाँ कर दी गई उनमे से कुछ बिना इलाज आश्चर्यजनक रूप से जीवत देखे गये है। जब तक कैन्सर की प्रामाणिक चिकित्सा स्वीकृत व प्रचलित नही हो

जाय तब तक सर्वोच्च आवश्यकता इस बात की है कि हर पढ़े लिखे व्यक्ति द्वारा कैन्सर से भयाक्रान्त और जीवन से निराश किये गये कैन्सर रोगियों मे आशा और विश्वास की नई किरणें आत्मबल, जीवन–शक्ति और इच्छा शक्ति को जागृत कर रोग के खिलाफ नियोजित किया जाय। इसके लिए आवश्यक है एक अलग वातावरण जहाँ हर डाक्टर, कम्पाउन्डर नर्स, मित्र एवं सम्बन्धी क्षण क्षण मे रोगी को यह याद दिलाकर कि तुम्हे कैन्सर हो गया है तो तुम्हे मरना ही होगा; तेज गति से रोगी को मौत के मुँह मे न झोंक सकें। बल्कि आशा, विश्वास, स्नेह, सद्भावना और सेवा के माध्यम से रोगी की जिजीविषा को आत्मबल, इच्छा शक्ति से जागृत कर उसे उसकी पूरी मानसिक शक्तियो के साथ रोग के विरुद्ध युद्ध के मैदान मे उतारा जा सके।

मानवीय दृष्टि से विचारणीय कुछ प्रश्न और कुछ पहलू इस रोग समूह मे सम्बन्धित है –

(१) किसी विशाल षडयन्त्र के अन्तर्गत या अपनी शोधो की महत्ता को बढ़ा चढ़ाकर प्रदर्शित करने के फलस्वरूप या अनजाने मे ही हुए व्यापक प्रचार के कारण विश्वभर के जन मानस मे कैन्सर शब्द के प्रति जो गहरा भय पैठ गया है, इस भय, आतंक और निराशा के दूषित प्रचार को इसी प्रकार चलने दिया जाये या इसका प्रतिरोध किया जाये या इसके विपरीत प्रभावी प्रचार द्वारा स्वस्थ और संतुलित वातावरण बनाने की दिशा मे चाहे कितना ही छोटा सही एक कदम उठाने का साहस पूर्ण, संगठित प्रयास किया जाये।

(२) देश और विश्व के भिन्न–भिन्न कोनो मे मानव जाति के इस विकट शत्रु के खिलाफ कुछ समर्पित आत्माये जो शोध व संघर्ष कर रही हैं उनकी अधिकाधिक जानकारी प्राप्त कर उन्हे इस दिशा मे मिलने वाली छोटी से छोटी सफलताओ को भी जन सामान्य के सामने रखा जावे और इस विषय के अज्ञान के कारण जो आतंक खडा हो गया है उसे तोडने का प्रयास किया जाये।

(३) विगत मे भी मानव जीवन को रोगो से मुक्त कराने हेतु संघर्ष करने वाले समर्पित शोधकर्ता वैज्ञानिको ने अपने युग मे अपराजेय और असाध्य माने जाने वाले रोगो की सफल चिकित्सा ढूंढ निकालने के प्रयास किये और कठिन संघर्ष के बाद सफल हुए। आज भी कैन्सर के खिलाफ मानव की लडाई पूरी ताकत से जारी है। अनेक शोधकर्ता वैज्ञानिक अपने शोध प्रयत्नो से प्राप्त परिणामो से उत्तेजित है और उनमे से प्रत्येक सोचता है कि इस अनुत्तरित प्रश्न का उत्तर मैं दूँगा। उनमे से कोई एक तो सही है, आवश्यकता है ऐसे सभी प्रयत्नो को प्रोत्साहन और सहयोग देने की। क्या हम व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से ऐसे प्रयत्नो के सहयोगी बन सकते हैं ?

(४) बडी ईमानदारी से फैडरल रिपब्लिक श्राफ जर्मनी के एक विद्वान ने यह स्वीकार करते हुए कि कैन्सर सम्बन्धी सारे शोध अभी प्रारम्भिक अवस्था मे है और यह आशा करना गलत है कि इन शोधो के परिणाम स्वरूप कल ही बाजार मे कोई ऐसी चमत्कारिक औषधि आ जायेगी कि खाई और कैन्सर रफा । चिकित्सको द्वारा असाध्य मान लिये गये कैन्सर रोगियो के बारे मे उन्होने तीन सवाल किये है –

(१) उन्हे बिस्तर मे पडा रहने दे ?

(२) उन्हें घर भेज दें ?

(३) उन्हे शान्ति से मरने दे ?

अपनी असफलताओ के सही आकडो को छिपाने और असफलता की शर्म और खीझ से बचने के लिए और अपने थोथे सम्मान को बचाये रखने के लिये बडे बडे अस्पताल (On his own request) रोगी की अपनी मर्जी से या (unable to tolerate) रेडियम या कोबाल्ट के और अधिक सेक सहन करने मे असमर्थ लिखकर बीमार को घर भेज देते है ।

(५) अपनी मर्जी से या तथाकथित इलाज को और अधिक बर्दाश्त न कर पाने की स्थिति मे पहुँचे हुए अस्पताल से विदा होकर घर आये हुए रोगी जो सिर्फ आने वाली मौत का इन्तजार कर रहे है; क्या हमारी किसी प्रकार की सेवा सुश्रुषा सद्भावना और मनोवैज्ञानिक आध्यात्मिक परिचर्या के दावेदार और हकदार है ? क्या हम उनके लिये कुछ कर सकते है ?

(६) जब तक अन्तिम तौर पर कैन्सर के विज्ञान सम्मत कारणो का पता न लग जाये, कारण और कार्य मे तर्क सगत सामजस्य न हो जाय तब तक क्या किया जाये ? विभिन्न स्तरो पर अधिकतम प्रतिशताक प्राप्त सभावित कारणो और रोकथाम के उपायो का प्रचार, प्रसार, पर्यावरण दूषण के खतरो के प्रति सावधानी के सकेत, विभिन्न अगो के क्षोभजनक पदार्थो के सेवन के खतरो के प्रति जन साधारण को आगाह किया जाना और मानव शरीर मे प्रतिरोधक शक्ति की वृद्धि के उपायो के प्रचार आदि कार्य भी क्या इस क्षैत्र मे किसी महत्व के है ? क्या इस तरह के प्रचार, प्रसार के लिये सगठित प्रयास किसी प्रकार उपादेय है ?

इन बहुत बडे प्रश्नो के उत्तर की दिशा मे उठाये गये हर छोटे और विनीत किन्तु साहसिक कदम का स्वागत ! अभिनन्दन !!

भारतवर्ष मे अनादिकाल से आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति प्रचलित है। आयुर्वेद सम्पूर्ण मानव जीवन का विज्ञान है। उपरोक्त ऊहापोहपूर्ण स्थिति मे प्रस्तुत पुस्तक द्वारा आयुर्वेद के कुछ विशेष अशो और अगो की तरफ ध्यान आकर्षित करने का प्रयास किया गया है ताकि भारतवर्ष के लक्ष लक्ष ग्रामो नगरो मे आयुर्वेदिक पद्धति से चिकित्सारत चिकित्सकगण केन्सर पीडित जनसाधारण को इस आर्ष उपवेद के वरदानो से लाभान्वित कर सके और आयुर्वेद महासमुद्र मे और अधिक गहराइयो मे डुबकियाँ लगाकर अगाध औषधियो के मोती ढूढ कर लाने के लिए प्रेरित हो। प्रस्तुत पुस्तक न तो अपने आप मे सम्पूर्ण है न तथाकथित मौलिक अनुसन्धान के दम्भ से ग्रस्त मिथ्यालाप। केवल नव्य चिकित्सा के नियोन विज्ञापन बोर्डो की चकाचौंध से हतप्रभ वैद्य महानुभावो का अपने पूर्वजो के अकूत अमोघ औषधि भण्डार की ओर ध्यानाकर्षण का प्रयास मात्र है।

जन साधारण को केन्सर आतक से मुक्ति दिलाने और शोध विद्वानो के प्रयासो से परिचित कराने और चिकित्सको को प्रेरित करने की दृष्टि से केन्सर परिचर्या एव शोध सोसाइटी (रजि), सुजानगढ द्वारा यह तृतीय पुस्तक प्रकाशित की जा रही है। वैदिक ऋषियो से लेकर आधुनिक युग तक के जिन विद्वानो के विचारो, रचनाओ आदि का आधार इस पुस्तक के गुम्फन मे लिया गया है, उन सबके प्रति हम हार्दिक आभार प्रदर्शित करते है। यथासम्भव प्रयत्न के वाद भी यदि किसी विद्वान रचनाकार का नाम रचना के उद्धृत अश के साथ प्रकाशित नही हुआ है तो इसके लिये हम क्षमा-प्रार्थी हैं।

सस्था के अद्यतन प्रयासो मे जिन विद्वज्जन एव उदारमना महानुभावो से आशीर्वाद, मार्गदर्शन एव आर्थिक सहयोग प्राप्त होता रहा है उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करते हुए हम अपने सभी सहयोगियो, शुभाकाक्षियो को सस्था के भावी महत् कार्य-क्रमो मे अधिकाधिक सहयोग हेतु साग्रह आमन्त्रित करते हैं।

विनयावनत्

स्वामी रामतीर्थ

CANCER VADE MECUM

VOLUME II

प्रथम - सोपान

मानव शरीर के निर्माण का मूल उपादान है– कोशिका (सेल) । शरीर की रचना कोशिकाओ से होती है। कोशिकाओ की प्राकृतिक विशेषता है–द्विगुणन क्षमता। एक कोशिका अपने आपको दो मे विभाजित करके एक नई कोशिका को जन्म देती है। यह नई कोशिका अपनी जन्मदात्री कोशिका के सम्पूर्ण गुण धर्मो से युक्त होती है, अपने ही जैसी एक अन्य

कोशिका को जन्म देने की क्षमता से भी। इसी प्रकार कोशिकाओं के स्व-विभाजन और द्विगुणन क्षमता से ही भ्रूणावस्था से लेकर मानव शरीर का पूर्ण विकास होता है। इसी क्षमता के बल पर कोशिकायें शरीर में हर कार्य से होने वाली टूट-फूट की पूर्ति करती है। जीवन के सामान्य कार्यों में कोशिकाओं की सामान्य टूट-फूट और दुर्घटना, कठिन परिश्रम, बीमारी आदि में विशेष टूट-फूट होती रहती है। जिस अंग में जिस प्रकार की कोशिकायें नष्ट होती है, वह अंग प्रकृति प्रदत्त क्षमता से उसी प्रकार की कोशिकाओं का नव निर्माण कर लेता है। जितनी कोशिकाओं की आवश्यकता होती है, उतनी ही कोशिकायें उत्पन्न करके शरीर इनका उत्पादन रोक देता है। शरीर का कोशिका उत्पादन पर यह कठोर नियन्त्रण अगर समाप्त हो जाता है और आवश्यकता पूर्ति के बाद भी नवकोशिका निर्माण का कार्य यदि अनियन्त्रित गति से चलने लगता है तो इसे कैन्सर की संज्ञा दी जाती है। यदि नवनिर्मित कोशिका हूबहू अपनी निर्मात्री कोशिका जैसी नहीं होती तब भी कैन्सर हो सकता है।

कैन्सर के लिए आयुर्वेद के विद्वान कर्कटार्बुद (कर्कटअर्बुद] और डाक्टर मेलिग्नेन्ट ट्यूमर शब्दों का प्रयोग करते है। किन्तु दोनों शब्दों में सूजन और उभार के लक्षण मुख्य है। ट्यूमर शब्द की व्युत्पत्ति लेटिन भाषा की धातु ट्यूमेर (tumere) से हुई है जिसका अर्थ है सूजना, फूलना (to swell) अर्बुद की मुख्य विशेषतायें है-वृत्ताकारता, स्थिरता, मन्दवेदना, विशालता, महामूलता, चिरवृद्धि, अपाकशीलता, मांसोपचय और शोफरूपता।

> वृत्त स्थिर मन्दरुज महान्तमनल्प मूल चिरवृध्यपाकम्।
> कुर्वन्ति मांसोपचय तु शोफ तमर्बुद शास्त्रविदो वदन्ति ॥
>
> सुश्रुत/निदान/११/१३/१४

कैन्सर एक विशेष प्रकार का अर्बुद है जो केकडे के पंजो की तरह (केकडे के दस पैर) होते है। चारो ओर फैलता है और घातक है।

अर्बुद के अर्थ

अर्बुद = एक अरब = सौ करोड

अर्बुद एक संख्यावाचक शब्द है जिसका अर्थ है 'अरब" यानि १०० करोड।

अर्बुद वर्तमान आबू पर्वत का नाम है। आबू में एक अर्बुदा देवी का मंदिर भी है।

अर्बुद का एक अर्थ पर्वत भी होता है ।

अमरकोप टीकाकार श्री भानुजी दीक्षित के मतानुसार "अर बुन्दति" जो नेत्रो द्वारा विशेष रूप मे ज्ञान का विषय हो (दीखे) वह अर्बुद है । इस अर्थ मे उभार की विशेषता मुख्य है ।

"कर्कट" शब्द दो खण्डो के योग से बना है (कर+कट) कर की निष्पति क्रञ् हिसायाम्" धातु से और कट की निष्पत्ति "कटे वर्षाविरणयो" धातु से हुई है । (क्रूर) (घातक) और छाजाने वाला तथा फैलने वाला ।

"अर्बुद या ट्यूमर कोशाणुओ की या तन्तुओ की नई बनी उस रचना को कहते है जो शरीर या स्थानीय तन्तु का पोपण खाकर अपना पोषण प्राप्त करती है तथापि अपने परिवर्ती तन्तुओ से सर्वथा स्वतन्त्र रह कर धृष्टता के साथ बढती ही जाती है और जिसका शरीर के लिए कोई उपयोगी प्राकृत कार्य या प्रयोजन नही होता ।"

मेडिकल डिक्शनरी के मुताबिक ट्यूमर "नये तन्तुओ का एक समूह है जो धृष्टता पूर्वक कायम रहता है और अपने चारो ओर की सरचनाओ से असम्बद्ध, स्वतन्त्र रूप से बढता है और जो शरीर के लिए अनुपयोगी है ।"

दम्य और दुर्दम्य अर्बुद

(बेनाइन और मेलिग्नेट ट्यूमर)

अर्बुद का मुख्य लक्षण है–वृद्धि–नव और अति वृद्धि । अर्बुद मे ऐसी वृद्धि होती है जो शरीर के लिए उपयोगी न होकर हानिकारक होती है । अर्बुद शरीर के पोपण के लिए आवश्यक तत्वो को हडप कर शरीर को निरन्तर कमजोर करता रहता है । अर्बुद परजीवी, पराश्रयी होकर जीता और बढता है । दम्य अर्बुद अनुपयोगी तन्तु और अनावश्यक पिण्ड की तरह रहता है । पोषक तत्वो का शोषण कर शरीर को कमजोर बनाता है और शरीर के लिए किसी भी प्रकार उपयोगी नही होता किन्तु इस स्थिनि मे घातक या मारक नही होता किन्तु यदि यह अर्बुद किसी महत्वपूर्ण अ ग मे हो या इसका विस्तार शरीर की जीवन धारण हेतु आवश्यक प्रणालियो मे व्यवधान उपस्थित करदे या क्षति पहुँचा दे तो दम्य अर्बुद भी घातक सिद्ध हो सकता है ।

दम्य अर्बुद की वृद्धि मन्दगति से होती है जबकि दुर्दम्य अर्बुद बडी तेज गति से बढ़ता है । दम्य मे पाकोत्पत्ति (पूयोत्पत्ति) नही होती जबकि दुर्दम्य मे कभी कभी हो जाती है । दम्य

अर्बुद प्राय. एक ही रहता है, उसी के अन्दर अन्य अर्बुद नही होता न अन्य अ ग मे दूसरा अर्बुद बनता है। इसका विक्षेप (मेटास्टेसिस) नही होता। दुर्दम्य अर्बुद मे दूसरा अर्बुद भी हो जाता है और अन्य अ ग में भी विक्षेप (द्विरर्बुद) हो सकता है। दम्य अर्बुद मे व्रणोत्पत्ति प्राय: नही होती, वेदना मन्द रहती है और रक्त स्राव प्राय. नही होता। जबकि दुर्दम्य अर्बुद मे व्रणोत्पत्ति प्राय. हो जाती है वेदना अधिक होती है और रक्तस्राव अधिक होता है। दम्य ट्यूमर मे रोगी रक्ताल्पता व क्षीणता से पीडित नही होता जबकि दुर्दम्य मे होता है। दम्य सामान्यतया घातक नही होता जबकि दुर्दम्य ट्यूमर प्रकृत्या ही घातक होता है।

अनेक तुलनात्मक विभेदो के बावजूद अमुक अर्बुद दम्य है या दुर्दम्य यह निर्णय करना कठिन होता है। इसके अलावा न तो सारे दुर्दम्य अर्बुद घातक होते है और न सारे दम्य अर्बुद निर्दोष। मर्मस्थान पर दम्य अर्बुद भी घातक हो सकता है। दुर्दम्य अर्बुद का पता सूक्ष्मदर्शी यन्त्र की सहायता से लग सकता है किन्तु अल्प दुर्दम्य अर्बुद को पहचानने मे कठिनाई होती है।

कैन्सर

(शब्द की व्युत्पत्ति और इतिहास)

यह एक विचित्र तथ्य है कि कैन्सर रोग समूह के द्योतक भिन्न २ भाषाओ के शब्दो के अर्थ मे बहुत अधिक समानता है।

लैटिन—केन्क्रम	=	केकडा
यूनानी—कार्किनोस	=	केकड़ा
अग्रेजी—कैन्सर	=	केकडा
सस्कृत—कर्क, कर्कट	=	केकडा

यह विचित्र समानता एक आकस्मिक सयोग मात्र है या इस रोग समूह की किसी विशेष प्रकृति की द्योतक है?

ज्योतिष के राशि चक्र मे कर्क राशि का चतुर्थ स्थान है। इस राशि का प्रतीक केकड़ा है। क्या इस राशि के साथ इस रोग का कोई सम्बन्ध है? राशिया १२ होती है और बारह महीने के सपूर्ण ३६०° चक्र मे एक एक माह की अवधि को प्रशासित करती है। कर्क राशि २२ जून से २२ जुलाई की अवधि को प्रशासित करती है। क्या वर्ष की इस अवधि (२२ जून से २२ जुलाई) का इस रोग समूह से कोई विशेष सम्बन्ध है? मानव शरीर मे इस राशि का स्थान छाती, स्तन माना जाता है। क्या इस अग विशेष से इस शब्द का कोई सम्बन्ध है? कुछ विद्वानो का मत है कि यह एक

ऐतिहासिक सयोग मात्र है। कहा जाता है कि एक रोमन सम्राट केटो की रानी के स्तन कैन्सर हो गया था और उसने ज्योतिप के राशि स्थान के अनुसार इसका नामकरण किया था। केटो चिकित्सको से नफरत करता था और पत्तागोभी को हर रोग का अचूक इलाज मानता था और पत्तागोभी के पुल्टिस से उसने अपनी रानी के स्तन कैन्सर का इलाज कर लिया था।

राशिचक्र की चौथी राशि कर्क को केकडे के रूप मे चित्रित किये जाने के सम्बन्ध मे एक पौराणिक कथा यह है कि जव हेराकल्स लेरनाइन हाइड्रा से युद्ध कर रहा था तो केकडे ने उसे चिकोटी काटी। क्षुब्ध हेराकल्स ने केकडे को कुचल दिया। हेराकल्स के शत्रु हेरा ने केकडे को राशि मण्डल मे स्थान देकर पुरस्कृत किया।

सोचा जाता है कि अपने दस पजो से केकडा वडी जबर्दस्त पकड करता है क्या केकडे की तरह जवर्दस्त पकड के साम्य और केकडे के दस पैरो की तरह विस्तार और प्रसरण की क्षमता के कारण इस रोग समूह का नाम केकडा (कैन्सर) पडा।

ईसा से 600 वर्प पूर्व के भारतोय सर्जन सुश्रुत और 180 ईसा पूर्व के ग्रीक सर्जन लियोनिडास द्वारा उच्छेदन और प्रदाहन विधि द्वारा इस रोग के इलाज का उल्लेख मिलता है। अरबी भाषा मे इसे सरतान कहते है। हजारो वर्प पूर्व प्राक् ऐतिहासिक पशुओ के अस्थि पजरो के परीक्षण मे उनके अस्थि कैन्सर होने के प्रमाण मिले है।

* विश्व-कोष *

वहुत वडे पैमाने पर की गई शोध के वावजूद कैन्सर अव भी एक अल्पज्ञात और कठिन रोग है। कैन्सर क्या है? यह एक बीमारी है या अनेक बीमारियो का समूह? इसके उत्पन्न करने मे कीटाणुओ, जैसे कि विपाणुओ द्वारा क्या पार्ट खेला जाता है? यह प्रश्न बहुत वडा है और अभी तक इसका सतोपजनक उत्तर नही मिला है। इसलिए वर्तमान मे हम कैन्सर के वारे मे जो कुछ भी कह सकते है, वह केवल अस्थायी ही माना जाना चाहिए और हो सकता है कि आने वाले कुछ वर्षो मे कैन्सर सम्वन्धी वर्तमान धारणाये उतनी ही असत्य सिद्ध हो जितनी आज से 50 वर्प पूर्व के लोगो की रिकेट्स या मधुमेह के वारे मे थी।

कैन्सर एक प्रकार की नवीन वृद्धि है और ऐसे ही है दम्य ट्यूमर। स्वस्थ अवस्था मे शरीर के अस्थि जोडने वाले ऊतक, श्लेष्मकला आदि विभिन्न ऊतको की बढोतरी ऐसे नाजुक,

सही आनुपातिक सन्तुलन मे रखी जाती है कि कोई सी भी दूसरो की अपेक्षा सही प्रमाण से ज्यादा नही बढ सकती । सारी कोशिकाये सही मात्रा मे रक्त प्राप्त करती है और रक्त के साथ अपना भोजन प्राप्त करती है । वे अन्त· स्रावी ग्रन्थियो द्वारा तैयार किया हुआ "हार्मोन" नामक एक नियामक पदार्थ भी प्राप्त करती है। इसके अलावा स्नायुओ द्वारा भी इन कोशिकाओ की बढोतरी नियंत्रित (कन्ट्रोल) की जाती है। सम्भव है, अज्ञात कारणवश नियत्रक व्यवस्था खडित हो जाय और कुछ कोशिकाओ का समूह अचानक अपना सामान्य कर्तव्य अदा करना बन्द करदे और इसकी बजाय अपनी मर्जी से बढना शुरु करदे । इस पुनर्निर्माण का शरीर की आवश्यकताओ से कोई सम्बन्ध नही होता और इसकी कोई उपादेयता नही होती । बल्कि इसके विपरीत ज्यो ज्यो यह गठन बडा होता जाय, हो सकता है शरीर को इसके विस्तार से हानि पहुचे । यह अर्बुद जिसका सामान्य प्रक्रिया से नियत्रण नही हो रहा है, अपने ही कानूनो के मुताबिक बढता चला जाता है ।

इसकी जीवनशक्ति सीमारहित और इस धारण करने वाले शरीर से असम्बध्द प्रतीत होती है । उदाहरणार्थ उपरिकथित वसा अर्बुदो मे । लेकिन कभी कभी वे आदिम युगीन कोशिकीय रूपो मे प्रत्यावर्तित हो जाती है और उनमे पुनर्जनन के अलावा कोई क्षमता शेष नही रह जाती है और ट्यूमर शरीर मे सब दिशाओ मे फैलने लगता है ।

ट्यूमर पडौसी अगो पर अतिक्रमण करते हुए बढते है। वे ट्यूमर जो दम्य कहलाते है, केवल इसी प्रकार बढते है । वे जब तक जीवनागो पर नही होते, जीवन के लिए कोई खतरा नही बनते। लेकिन यदि ये मस्तिष्क मे हो या आन्त्रनलिका अवरुद्ध करले तो वे शीघ्र ही बहुत गम्भीर लक्षण पैदा कर देते है । अगर डाक्टर ऐसे अर्बुदो का पता पा जाये तो सर्जन बहुधा सफलतापूर्वक इनको काट कर हटा देते है, यहा तक कि मस्तिष्क मे से भी ।

लेकिन कैन्सर के ट्यूमर दुर्दम्य होते है । वे अपने आसपास के ऊतको पर आक्रमण करते हुए और उनको नष्ट करते हुए बढते है और वे रक्त वाहिनियो मे रेग जाते है । विशेषत· एक बार शिराओ मे रेग पाने पर ये शरीर के किसी भी हिस्से मे पहुँच जाते है जहा सैकन्डरी डिपोजिट्स नाम के नव वृद्धि के बीज बोकर ये अन्य अर्बुद उत्पन्न कर देते है । ऐसा बहुधा फेफडो और लीवर मे होता है । क्योकि शरीर का ज्यादातर खून इन अगो मे से होकर प्रवाहित होता है ।

अगर हमे इस बात की पूरी जानकारी मिल जाय कि कैन्सर कोशिकाये सामान्य कोशिकाओ से भिन्न किस प्रकार बनती है, तो हमे इस समस्या का बहुलाश मे निदान प्राप्त हो जाय कि कैन्सर को

क्या चीज पैदा करती है ? हमे कैन्सर कोशिकाओ के रासायनिक गठन के बारे मे तो कुछ निश्चित बाते ज्ञात है । जैसे कि हम जानते हैं कि सामान्य कोशिकाओ से उनमे पोटाशियम बहुत ज्यादा होता है और कैल्शियम बहुत कम और यह कि उनमे बहुत ही अधिक मात्रा मे होता है एक बहुत पेचीदा प्रकार का प्रोटीन, जो कोशिकाओ की न्यष्टि मे पाया जाता है– न्यूक्लियो प्रोटीनस् । यह भी पाया गया है कि कैन्सर कोशिकाये ओक्सीजन के अभाव मे भी अपनी जीवनावश्यक ऊर्जा उत्पादन मे सक्षम होती है जैसी कि अन्य कोई कोशिका नही होती बल्कि उपलब्ध होते हुए भी कई बार कैन्सर कोशिकाये ओक्सीजन को ग्रहण करने से इन्कार करती है । माइक्रोस्कोप के नीचे कैन्सर कोशिकाये अपनी न्यष्टि के बाह्यरूप मे सामान्य कोशिकाओ से भिन्न होती है। वे अन्य कोशिकाओ के निर्माण हेतु तेजी से अपने आपको विभाजित करती रहती है और वे यह कोशिका विभाजन एक ढग से करती है । छोटे केन्द्रकीय सूत्र जिनको क्रोमोसोम कहते है केन्द्रक के अन्दर अनियन्त्रित रूप से विभाजित होने लगते है । कुछ वैज्ञानिको का मत है कि उन छोटे अग्रभागो मे जिनको जीन्स कहा जाता है और जो धागो जैसे क्रोमोसोम के साथ साथ स्थित होते है। वह बुनियादी कारण ढूढा जाना चाहिये जो वृद्धि की विकृति का जिम्मेदार है और विकृत वृद्धि ही कैन्सर है।

यद्यपि कैन्सर के कारण अभी अज्ञात है लेकिन इसकी कार्य प्रणाली विदित है। उदाहरणार्थ, कैन्सर युवको की बजाय, प्रौढो को ज्यादा प्रभावित करता है । शरीर के कुछ विशेष अग जैसे आमाशय और फेफडे इसके ज्यादा प्रिय आवास स्थल है। कुछ विशेष प्रकार के काम धधो मे लगे हुए लोग कैसर के ज्यादा आसान शिकार होते है । सर्वप्रथम यह बात ध्यान मे आई है कि एक विशेप प्रकार का कैन्सर चिमनी साफ करने वालो पर आक्रमण करता है जो लगातार कालिख के सपर्क मे रहते है । एजीटाइन रग कारखानो मे काम करने वाले मजदूरो को मूत्राशय का कैन्सर अधिक सख्या मे होता है । मिट्टी का पाइप पीने वालो मे होठो का कैन्सर इतना अधिक सामान्य है कि इसका नाम ही धूम्रपान करने वालो का कैसर है । पिछले कुछ वर्षो से सिगरेट पीने को भी फेफडो के कैन्सर से सम्बन्धित माना जाता है। ये सारे प्रमाण इगित करते है कि लगातार अर्से तक होने वाला क्षोभ, कैन्सर उत्पन्न कर सकता है । इन्ही धारणाओ के मुताबिक खोज करने वाले वैज्ञानिको ने पाया कि कुछ विशेष प्रकार की रासायनिक वस्तुओ से जानवरो, विशेपत चूहो को रग देने से उनके कैन्सर हो जाता है । ये रासायनिक क्षोभजनक पदार्थ ज्यादातर कोलतार से प्राप्त किये गये पदार्थ थे । इन प्रयोगो से यह भी पता लगा कि एक जानवर से दूसरे जानवर के शरीर मे कैन्सर को किस तरह स्थानान्तरित किया जाता है और किस तरह शरीर इसके आक्रमण से अपनी रक्षा का प्रयत्न करता है ।

अन्य शोधकर्ताओ ने पाया कि एक विषाणु कोलतार और इसके उत्पादनो से कारित क्षोभजन्य कैन्सर के अलावा भिन्न तरीके से कर्कटार्बुद उत्पन्न कर सकते हैं। इन शोधकर्ताओ का मत है कि कैंसरजन्य वृद्धि के लिये दो उपादान आवश्यक है, एक कोशिकाओ की ऐसी स्थिति जो उनको कैन्सर के आक्रमण के लिए ग्रहणशील बनाती है और दूसरा एक विशेष उपादान जो आक्रमण करता है।

पिछले कई वर्षो से यह पाया गया है कि कैंसर के कुछ प्रकारो का सैक्स हारमोन के सतुलन के परिवर्तन से सम्बन्ध हैं। चूहो मे कुछ ऐसे सैक्स हारमोन्स पहुचाकर कैंसर पैदा किया गया है जो कुछ अत.स्रावी ग्रन्थियो व कोशिकाओ को उत्तेजित कर गतिशील बना देता है। स्तन कैंसर को हार्मोन्स के प्रयोग से कट्रोल किया जा सकता है। ये सश्लिष्ट हारमोन्स हैं जिनका प्रभाव प्राकृतिक नारीस्रावो जैसा होता हैं। यह भी देखा गया कि स्तन कैंसर ग्रस्त महिलाओ को पुरुष हारमोन देने से कैंसर बढना रुक गया। हालाकि इसका इलाज तो नही हुआ। अब तक ढूढ निकाले गये कैंसर के इलाजो मे रेडियम या रेडियो एक्टिव कोबाल्ट जैसे, एक्सरे किरणो या रेडियो एक्टिव तत्वो का प्रयोग सर्वाधिक प्रभावी इलाज साबित हुआ है। इनके प्रयोग का सामान्य ऊतको की बजाय कैंसर कोशिकाओ पर बहुत अधिक विनाशकारी असर होता है और इस प्रकार ये रोगनाशक का कार्य करते हैं।

कैन्सर क्या है ?

जीवन भर शरीर मे कोषो का निर्माण और विकास होता है। पुराने कोष टूट फूटकर समाप्त हो जाते है, नये निरन्तर बनते रहते हैं। बचपन व तरुणाई मे कोषो का निर्माण तेजी से होता है जिसमे शरीर बढता है। बुढापे मे नवकोष निर्माण बहुत धीमी गति मे होता है। शरीर के जिस अग को जितने कोषो की आवश्यकता होती है उतने ही अपने जैसे कोषो का निर्माण कर लेता है। आवश्यकतापूर्ति करके नव निर्माण रोक देता है। यदि किसी कारणवश यह नवनिर्माण उच्छृखल व अबाध गति मे होने लगे, रुके नही और नवनिर्मित कोष शरीर के लिए उपयोगी न हो तो इस नई बाढ को कैन्सर कहते हैं। कोष अपने आपको दो भागो मे बाट कर अपने ही जैसे एक नये कोष को जन्म देता है। नव निर्माण इसी प्रकार होता है। नया कोष मूल कोष जैसा ही होता है। यह स्वस्थ अवस्था की प्रक्रिया है। किन्तु यदि यह कोष नव निर्मित मूल कोष जैसा नही हो, भिन्न प्रकृति का व शरीर के लिए अनुपयोगी हो तो भी इस केन्सर कहते है। यह नव कोष निर्माण की अनियन्त्रित, अनुपयोगी बाढ (कैन्सर) तब तक बढती रहती है जब तक इसे इलाज करके रोक न दिया जाय या जब तक रोगी की मृत्यु न हो जाय। कैन्सर के कोष रक्त वाहिनियो के माध्यम से या लसिका मार्ग से शरीर के अन्य अगो मे पहुँच कर केन्सर का दूसरा अड्डा जमा देते हैं इसको विक्षेप (Metastates) कहते हैं।

कैन्सर क्यों होता है ?

कोषो की गडबडी एव नव कोष उत्पादन पर से नियन्त्रण समाप्त हो जाने से कैन्सर होता है । नव कोषो के निमार्ण पर अन्त-स्रावी स्रावोका और स्नायुओ का नियन्त्रण बताया जाता है । किन्तु यह नियन्त्रण क्यो खो जाता है उसका कोई विज्ञान सम्मत प्रामाणिक जवाब नही मिल पाया है । ससार के अनेक देशो मे बहुत बडे पैमाने पर अध्यवसायपूर्वक वैज्ञानिक ढग से खोज हो रही है किन्तु विज्ञान के पास अभी तक इस प्रश्न का समुचित उत्तर नही है। जो अपूर्ण उत्तर इस प्रश्न के दिये जाते है उनमे से कुछ ये है—

(१) कोप के अन्दर के रसो की गडबडी से।
(२) हार्मोन्स के असतुलन से।
(३) अधिक व निरतर धूम्रपान से फेफडो का कैन्सर।
(४) प्रदूषित वातावरण से फेफडो का कैन्सर।
(५) तम्वाकू वाला पान व चूना खाने वालो के जीभ, गाल व होठो का कैन्सर।
(६) सुलगे हुए चुट्टे का जलता हुआ सिरा मुह मे रखकर पीने से तालू का कैन्सर।
(७) कश्मीर मे कपडो के नीचे कागडी (अगीठी) लटकाये रखने से छाती पर कांगडी का कैन्सर।
(८) किसी अग के निरन्तर उत्तेजित रहने से।
(९) गुर्दे या पित्ताशय मे लम्बे समय तक पथरी रहने से।
(१०) किसी आतरिक अग मे लगातार क्षोभ कारक पदार्थ पहुँचने से जैसे तेज मसाले, मिर्च वगैरा।

कैन्सर की पहचान

दर्द, तकलीफ, पीडा, क्रमश सारे शरीर पर प्रभाव, अकारण वजन कम होना, भूख न लगना, नीद न आना, निरन्तर थकावट महसूस करना, किसी जगह घाव हो जाना और चिकित्सा से न भरना। खासी का जल्दी ठीक न होना व बार बार होना, बलगम मे खून आना, महिलाओ के स्तनो मे एक या एकाधिक गाठ वनना, चुचुक (Nipple) से रक्त स्राव, चुचुक का अन्दर खिच जाना।

मासिक धर्म मे अनियमितता, मासिक धर्म का वन्द होकर पुन: चालू हो जाना, वदवूदार स्राव आना। रजोनिवृत्ति के वाद रजोस्राव के रूप मे रक्तस्राव।

मल और मूत्र मार्ग से रक्त आना, वार वार कब्ज होना और दस्ते लगना। वार वार इन गडवडियों की पुनरावृत्ति।

वरसो न वढने वाले किसी तिल या मस्से का अचानक रग वदलने लगे या वह वढने लगे।

शरीर पर कही भी, विशेषत· छाती पर वेदना रहित शोथ (सूजन)

उपरोक्त लक्षणो के दिखाई देने पर योग्य चिकित्सक को दिखा कर जाच अवश्य करानी चाहिए।

कैन्सर की चिकित्सा

कैन्सर की चिकित्सा के आजकल तीन प्रकार प्रचलित है·—

(१) शल्य चिकित्सा (सर्जरी)

(२) विकिरण चिकित्सा। एक्सरे और कोवाल्ट का सेक या जलाना।

(३) रसायन चिकित्सा। दवाईया व इन्जेक्शन

भिन्न भिन्न स्थानो के और भिन्न भिन्न प्रकार के कैन्सर पर भिन्न भिन्न पद्धतिया एक या एक से अधिक अपनाई जाती है।

क्या कैन्सर छूत की और पैतृक बीमारी है ?

कैन्सर छूत की वीमारी नही है रोगी के सम्पर्क, कपडो और मल मूत्र आदि के माध्यम से दूसरे स्वस्थ लोगो के नही लगती। कैन्सर अधिकाशत· पैतृक बीमारी नही है। यानि पिता से पुत्र को पुत्र से पौत्र को इस प्रकार आनुवाशिक रूप से नही प्राप्त होती। केवल कुछ विशेप प्रकार के कैन्सर इसी तरह होते देखे गये है।
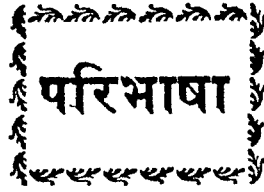
कैन्सर

3 P

(१) प्रोलीफरेटिव

(२) प्रोग्रेसिव

(३) पर्सिस्टेन्ट

कैन्सर के निदान मे सहायक कैन्सर के प्रमुख लक्षणो को डाक्टरो, वैज्ञानिको द्वारा उपरोक्त Three P के फार्मुला से अभिव्यक्त किया जाता है ।

प्रथम P (प्रोलीफरेटिव) से तात्पर्य है, कोषो या रोगी कोषार्बुदो की विभाजन द्वारा सख्यावृद्धि । कैन्सर की वृद्धि तथा प्रसार घटक कोषो की वृद्धि से होता है । किसी भी अग के स्वस्थ और शान्त कोष प्रत्युत, निज तथा आगन्तुक कारणो से विकृत कैन्सर कोषो मे परिवर्तित हो जाते है । ये तीव्र गति से बढते है, और अपने आधार अवयव के मूल कोषो को खाते जाते है। जिससे उस अवयव की रचना और कार्य प्रणाली को क्षति पहुँचती है । ये कैन्सर कोष अन्य अगो मे पहुँच कर वहा अपनी वृद्धि करते है, विकार उत्पन्न करते है ।

द्वितीय P (प्रोग्रेसिव) से तात्पर्य है, रोग से उत्पन्न विकृति का लगातार बढते ही जाना। रोग से उत्पन्न रचनात्मक और क्रियात्मक विकृति लगातार बढती ही जाती है ।

तृतीय P (पर्सिस्टेन्ट) का तात्पर्य है स्थिर लक्षणो वाला । रोग के जो लक्षण प्रकट हो जाते है वे स्थिर ही रहते है । समाप्त नही होते ।

अर्बुदो मे मासार्बुद के लक्षण कैन्सर के लक्षणो से अत्यधिक साम्य रखते है । जैसे मासार्बुद का पत्थर के समान कठोर होना, (अश्मोपमम्) इसे पकड कर हिलाया न जा सकना। (अप्रचाल्यम्) एव इसका असाध्य होना । सु० नि० 11/17-19 अ० हृ० 29/18)

कैन्सर = नियोप्लेजिया = किसी नई धातु का निर्माण, अथवा कोई नूतन वृद्धि अथवा अर्बुद का निर्माण। बायड अपनी पैथोलोजी की प्रसिद्ध पुस्तक मे नियोप्लेजिया का अर्थ नूतन वृद्धि बताते हैं किन्तु सामान्यत "पैथोलोजी मे यह शब्द ट्यूमर के अर्थ मे ही प्रयुक्त होता है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जो कोई भी उपयोगी कार्य नही करती । जो अप्रतिबन्धित रूप से चालू रहती है और जो वृद्धि के सामान्य नियमो से नियन्त्रित नही होती। यद्यपि निश्चित रूप से यह कुछ तरीको मे नियन्त्रित होती है पर अभी उनका पता लगना बाकी है ।

....**बायड**

सुश्रुत मे रक्तार्बुद का वर्णन :-

दोप: प्रदुष्टो रुधिर सिरास्तु सपीड्य सकोच्य गतस्तु पाकम् ।
सास्रावमुन्नह्यति मासपिण्ड मासाकुरैराचितमाशुवृद्धिम् ।
स्रवत्यजस्र रुधिर प्रदुष्टमसाध्यमेतद्रुधिरात्मक स्यात् ।
रक्त क्षयोपद्रव पीडितत्वात् पाण्डुर्भवेदर्बुद पीडितस्तु ॥

प्रदुष्ट हुए दोप सिराओ मे जाकर वहा के रक्त एव सिराओ (रक्त वाहिनियो) को सपीडित एव सकुचित कर पाक को प्राप्त हुआ स्रावयुक्त, मासाकुरो से पूरित, शीघ्रवर्धक मास पिण्ड को उत्पन्न करता है । उस मासपिण्ड मे निरन्तर प्रदुष्ट रक्त निकलता रहता है । यह रक्तार्बुद असाध्य है । इस अर्बुद मे पीडित रोगी रक्त क्षय रूप उपद्रव से पीडित होने के कारण पाण्डुवर्ण का हो जाता हैं ।

सुश्रुत मे मांसार्बुद :-

मुष्टिप्रहारादिभिरर्दितेऽङ्गे मास प्रदुष्ट प्रकरोति शोफम् ।
अवेदन स्निग्धमनन्यवर्णमपाकमश्मोपममप्रचाल्यम् ।
प्रदुष्टमासस्य नरस्य बाढमेतद्भवेन्मासपरायणस्य ॥
मासार्बुद त्वेतदसाध्यमुक्तम् ॥

मुष्टि प्रहारादि से पीडित हुए अग मे मास दुष्ट होकर अल्प वेदनायुक्त, स्पर्श मे स्निग्ध, प्राकृत त्वचा के वर्ण का, पाक रहित, पाषाण के समान कठिन एव स्थिर शोफ उत्पन्न करता है । प्रदुष्ट मास खाने और अधिक मासभोजी मनुष्य का यह अर्बुद अत्यधिक गहन और गम्भीर हो जाता है । यह शोफ मासार्बुद कहलाता है ।

असाध्य मांसार्बुदों की विशेषताएँ :-

(१) यह काफी दूर मे यानि व्यापक रूप मे फैला होता है ।
(२) यह मर्मस्थल मे उत्पन्न होता है ।
(३) यह रक्तवह, लसिकावह आदि स्रोतो मे स्थित होता है ।
(४) यह स्थिर, गतिहीन होता है ।

जो अर्बुद पूर्व स्थान पर पुन अर्बुद के रूप मे उत्पन्न होते है उन्हे अध्यर्बुद कहा जाता है ।

जो दो अर्बुद एक साथ उत्पन्न होते और एक साथ बढते है, उन्हे द्विअर्बुद कहा जाता है।

स्रोतात्मक अर्बुद-कभी कभी एक अर्बुद होकर उसमे ही दूसरा अर्बुद बन जाता है। यह अत्यन्त कठोर होता है । इसे "स्किरस" कहते हे ।

पाश्चात्य मतानुसार सवसे पहले ग्रीक सर्जन लियोनिडास ने 180 ईसा पूर्व मे चाकू की सहायता से कैन्सर का ऑपरेशन किया था। तदुपरान्त उसको अग्नि से तप्त किये हुए लाल गर्म लोहे की शलाका से जलाकर प्रदाहन (काटेराइज) किया था ।

200 ईस्वी मे रोम के प्रसिद्ध काय चिकित्सक गैलन ने कैन्सर के लक्षणो के सम्बन्ध मे अपना विचार व्यक्त करते हुए कहा कि कैन्सर की उत्पत्ति मनुष्य के रक्त मे काले पित्त के अत्यधिक स्राव के कारण होती है । इस सिद्धान्त को मध्यकालीन समस्त काय चिकित्सको ने स्वीकार किया। जिसको 18 वी शताब्दी तक कैन्सर की उत्पत्ति का एक प्रामाणिक आधार माना गया ।

कैन्सर के आज तक प्रचलित इलाज के तरीको को सक्षिप्ततम नाम Three B (तीन वी) से प्रकट किया जाता है। पहला "बी" है, ब्लेड यानि सर्जरी, शल्यचिकित्सा । कैन्सरग्रस्त हिस्से का उच्छेदन । दूसरा "वी" है, बीम यानि किरण। एक्स-रे, गामारे, रेडियम आदि की सहायता से विकिरण चिकित्सा, सेक । तीसरा "वी" है, बोटल यानि शीशी । दवाओ द्वारा चिकित्सा ।

मेक्डोनाल्ड और डिनोइक्स जैसे विद्वानो ने जोर देकर यह कहा है कि 'कैन्सर की "साध्य" और "असाध्य" दो भिन्न प्रकार की शारीरिक स्थितियाँ (इकाइयाँ) है । ये एक

ही रोग की कम वढी हुई और ज्यादा वढी हुई स्थितियाँ मात्र नही है। भिन्न शब्दो मे यह कहा जा सकता है कि कुछ अच्छे (साध्य) कैन्सर होते है जो किसी भी प्रकार की चिकित्सा से ठीक हो सकते है जबकि कुछ बुरे (असाध्य) कैन्सर होते है जो किसी भी प्रकार की चिकित्सा से कावू मे नही आते।

हर कैन्सर अपनी तरह की एक भिन्न हो इकाई होता है जिसके भावी व्यवहार के वारे मे कोई भविष्यवाणी नही की जा सकती। क्योकि कैन्सर के व्यवहार की कोई निर्धारित प्रक्रिया नही है।

फाउल्डस् :– कैन्सर की चिकित्सा के परिणामो की प्राक् घोषणा असभव है। क्योकि अनपेक्षित सफलताएँ और उतनी ही अनपेक्षित असफलताएँ होती रहती है। स्तन कैन्सर मे सर्जरी का प्रयोग इसका एक प्रत्यक्ष उदाहरण है।

कई कैन्सर अपने प्रारम्भिक स्थान पर वडा आकार धारण कर लेने पर भी शरीर के किसी अन्य अग मे प्रतिप्रसरित नही होते। जैसा **मेक्डोनाल्ड** ने कहा है "कई स्तन कैन्सर दस साल से अधिक पुराने होते हुए भी अपने उत्पत्ति स्थल तक सीमित हो सकते है। चाहे वे भारी है— व्रणरूप मे है और वक्षीय कलावितान से आवद्ध है। इस तरह के कैन्सर को अगर सर्जरी से हटा दिया जाय तो सम्भव है सम्पूर्ण कैन्सर मुकम्मिल रूप से समाप्त हो जाय। एक ऐसे डाक्टर का केस था जो साठ से सत्तर के बीच की आयु का था। उण्डुक के श्लेषाभि कार्सिनोमा से पीडित था। कैंन्सर सर्जन ने उसकी जीवनावधि अधिक से अधिक दो वर्ष वताई किन्तु वह ऑपरेशन के दस वर्ष के वाद भी जीवित था। यह डाक्टर अपने उस चिकित्सक सर्जन की अमाशय कैन्सर से मृत्यु हो जाने के वाद भी जीवित रहा।"

मेक्डोनाल्ड

एक अन्य दिलचस्प केस था। एक श्लेष्मिक कैन्सर के रोगी का, जिसका जीवनकाल केवल कुछ महीने का वताया गया था। करीव ६० वर्ष की आयु का वह व्यक्ति २० साल और जीवित रहा और ८० वर्ष की परिपक्व आयु मे उसका देहान्त हुआ।

मेक्डोनाल्ड इस विषय मे **स्ट्रोग** से सहमति व्यक्त करते हुए वताता है कि "किसी भी व्यक्ति के शरीर मे कैन्सर का व्यवहार (रवैया) आनुवाशिक सिद्धातो पर आधारित है। एक महिला स्तन कैन्सर के निदान के वाद सिर्फ छह महीने जी पाती है जवकि उसी प्रकार और उसी स्थिति के कैन्सर से पीडित अन्य महिला सोलह साल तक जी लेती है, चिकित्सा से या विना चिकित्सा के भी।"

डिनोइक्स–कैन्सरों को अच्छा और बुरा दो श्रेणियों में विभाजित करता है। अच्छा कैन्सर तो वो। जो किसी भी मान्यता प्राप्त चिकित्सा से ठीक हो जाता है और बुरा वह, जो किसी चिकित्सा से ठीक नही होता ।

कैन्सर के ३ (तीन) भेद :—

(१) **कार्सीनोमा** (a) glandular (b) Squamous (C) Basal Celled

(२) **सार्कोमा**

(३) **एण्डोथीलिओमा**

(I) **कार्सीनोमा** .– यह शल्काभ तथा स्तम्भाकार (Squamous and Columnar) कोशिकाओ मे होता है । घातक अर्बुदो मे सबसे अधिक पाया जाता है। इसका मुख्य कारण भोजन मे गरम मसाले, कॉफी, चाय, शराब आदि का अधिक प्रयोग बताया जाता है। यह रोग प्राय 40 से 60 वर्ष की आयु मे होता है और प्राय लसिका वाहिनियो द्वारा दूर के स्थानो मे प्रसार करता है ।

भेद .– इसके ३ (तीन) भेद है जो इस बात पर निर्भर करते है कि रोग किस प्रकार की कोशिकाओ (Cells) से उत्पन्न हुआ है ।

जैसे (a) **ग्रन्थीय**–glandular
(b) **शल्काभ**–Squamous
(c) **कोषाणुजन्य** Basal Cells

(a) **ग्रन्थीय**–Glandular यह स्राव पैदा करने वाली स्तम्भाकृति कोशिकाओ से पैदा होने वाला कैन्सर उन सभी रचनाओ से पैदा हो सकता है जो स्राव उत्पन्न करती है, जैसे स्तन, गर्भाशय, अन्न प्रणाली, गुर्दे, अष्ठीलाग्रन्थि, पित्ताशय, ग्रैवेयक (Throid) आदि ।

(b) **शल्काभ** Squamous–मुख्यत शल्काभ ऐपीथीलियम से पैदा होता है। यह प्राय. किसी क्षोभ के लगातार बने रहने से होता है। जैसे–मूत्रेन्द्रिय के सामने की त्वचा के लम्बी होने से मूत्र के कुछ अश रुके रहने से होने वाला मूत्रेन्द्रिय का एपिथीलियोमा । यहूदी और मुसलमानो मे जिनमे खतना कराने की प्रथा है, यह रोग बहुत कम मिलता है । इसी धारणा से प्रेरित होकर आजकल अमेरिका के 80 प्रतिशत माता–पिता अपने बच्चो का छोटी उम्र मे खतना करा देते है ।

(c) **आधार कोषाणुजन्य** (Basal Cell)–यह प्राय चेहरे के दो तिहाई भाग मे मिलता है। इसे हम कृन्तक व्रण (Rodent ulcer) कहते है। यह देखने मे ऐसा लगता है जैसे चूहे ने किसी वस्तु को कुतरा हो। 40 वर्ष से ऊपर की आयु मे होता है और प्राय. आखो के अन्दर या बाहर के सिरे के समीप से प्रारम्भ होता है। शुरू मे एक दाना सा पैदा होता है पर बाद मे फट कर व्रण का रूप ले लेता है।

सार्कोमा (Sarcoma)–यह जोडने वाले तन्तुओ (Conective tissues) से पैदा होता है और प्राय 10 से 20 वर्ष की आयु मे मिलता है। यह बडी तेजी से बढने वाला अर्बुद है जो कि रक्त द्वारा दूसरे स्थानो पर जाकर नये अर्बुद पैदा कर सकता है। हड्डियो, मॉसपेशियो के आवरण, गर्भाशय के तन्तुमयअर्बुद (Fibroma) तथा क्षत चिन्हो मे यह अधिकता से मिलता है। इसकी कोशिकाऐ तकुए के आकार की (Spindle–Shaped) होती है। कई बार यह लसिका ग्रन्थियो मे भी उत्पन्न हो जाता है। इसकी कोशिकाये छोटी तथा गोल होती है। यदि यह त्वचा के रगदार मस्सो अथवा आखो के दृष्टि पटल (Retina) मे हो तो इसे घातक रगार्बुद (Melanoma Malignum) कहते है।

(३) **एण्डोथीलिओमा** –ये रक्त तथा लसिका वाहिनियो की अन्दर की दीवार तथा सीरस कला से उत्पन्न होते है। फुफ्फुसावरण (Pleura) उदरच्छदा (Peritoneum) तथा मस्तिष्कावरण मे इस प्रकार के अर्बुद देखे जा सकते है।

"The term Neoplasia is restricted in Pathology to tumor, a process which serves no useful purpose, which continues unchecked and which is not controlled by the laws of normal growth Although undoubtedly controlled in ways which remain to be discovered."

...—... · BOYD

Growth is brought by the multiplication of cells and not by the increase in their size

.... BOYD

Cancer or Carcinoma

The malignant forms of epithelial new growth are known as "Cancer" or "Carcinomata". Any epithelial surface or organ may be affected, but cancer is most frequently seen in parts which are exposed to injury or chronic irritation In the male, the stomach is the organ most frequently affected, and then follow in order the intestines, tongue and mouth etc 80% of all Cancers in males affect the intestinal canal In the female, Cancer of the uterus, ovaries and breast accounts for nearly 80% of all cases of the disease It is not very common in early life, but increases in frequency after the age of thirty and reaches its maximum incidence between forty and fifty five years of age But according to the statistics of Imperial Cancer Research Fund, it is thirty times more frequent as an actual cause of death at seventy five than at thirty five

Manual of Surgery

— by ROSE and CARLES

The term is applied more particularly to a swelling due to a growth of new tissue. Tumors are of two kinds.-

(1) BENIGN,

(2) MALIGNANT

(1) BENIGN TUMORS .- are strictly localised and do not grow into tissues they simply push them aside , they do not undermine general health, and when removed they have no tendency to recur

(2) MALIGNANT TUMORS - are localised first but sooner or later they produce secondary growth elsewhere in tha body , they grow into adjacent tissues, disturb the general health, and often recur after they have been removed

CUTANEOUS CANCER '- is perhaps the least disastrous form of malignant disease that can occur in the body This is firstly due to the fact that being on the surface, it can hardly escape notice even in its early stages, secondly because the large majority of malignant lesions in the skin occur in the most conspicuous position namely on the face and exhibit only a modified kind of malignancy

---

At the other end of the scale is the squamous epithelioms which may arise in any situation, but most commonly at the site of old or persistent injury, the heated scar of the burn or the margin of the chronic ulcer

DEFINITION OF A TUMOR - A mass of new formation that tends to grow or persist without fulfilling any physicological function, and with no typical termination The fact that it has no typical termination distinguishes it from imflammatory over growths, which tends to form fibro-cicatrical tissue or some modification of it, infla-mmatory lesions, moreover, may disappear completely, and often diminishes in size temporarily

---

Perhaps in no department of Medical Science does so much confusion exist as in the classification of tumors. CANCER is the name for an important group of malignant tumors TUMORS are divided into TWO great classes On the one hand, some are simple or BENIGN, growing slowly at one spot, pressing neighbouring parts aside but not invading them, not recurring after removal, and having little tendency to ulcerate, while others are MALIGNANT, spreading quickly form point to point, invading and destroying surrounding tissues, tending to recur after complete removal, and being very liable to ulcerate.

Tumor, Cancer, Sarcoma or Carcinoma are general names for forms of tumor to which the term "malignant' is applied because they destroy the general health, break down the organs in which they grow, after apparent removal tend to grow again, and by rapid spread lead usually to death in some months or years

---

Malignant disease suggests by its name the baleful influence it has upon human life and the fear with which it is regarded The name is not scientific, yet it is freely used by tne medical profession in preference to the terms carcinoma or sarcoma, because the words "malignant" or "malignancy" are expressive of the dire character of the disease Perhaps this is unfortunate, because the doctor himself may become almost as much hypnotised by the same association as the average layman who pricks up his ears at the merest mention of the word 'malignant' and is apt to assume at once that the case is hopeless For more than three centuries "malignant" has been used as an epithet for the more virulent and fatal forms of any disease In modern usage it tends to be restricted to the designation of those tumors or neoplasms which present the pathological character of infiltration of surrounding tissues and dissemination from the site of origin to other parts of the body

---

A SARCOMA CANCER - is a tumor developing in the connective tissue of bones, muscles, sinews and in structure resembling imperfect connecting tissue

CARCINOMA CANCER .- is a malignant epithelial tumor which tends to invade the lymph spaces of surrounding connective tissue.

BREAST CANCER :- Pain is usually a strong symptom in this disease It is sharp and neuralgic in character. During the earleir months there is no external evidence of the disease, but sooner or later the skin overlying the tumor becomes ulcerated and oft-times covered with in offensive discharge.

The time honoured DEFINITION of a tumor is 'a new formation of cells which resemble those normally present in the body at some period, which grows at the expense of the body and which serves no useful purpose

Dible and Davie s Pathology

—by J H Dible 1952

TUMOR—A mass of new tissue which persists and grows independently of its surrounding structures, and which has no physiological use

(Medical Dictionary : Dorland : 1954)

A Tumor or Neoplasm—may be defined as a local growth of new cells which proliferate without control and which serve no useful function

A Text book of Pathology

—by W Boyd 1955

NEOPLASM (neo = new + plasm = formation)

Any new and abnormal growth, such as a tumor

(Medical Dictionary . Dorland)

Irregular and intermittent haemorrhage in a woman over 40 should always be considered as due to malignant disease until this has been positively excluded.

A TEXT BOOK OF GYNECOLOGY

New growth of the uterus may be either simple or malignant. They are derived from any of the tissue elements of which the uterus is constructed namely, epithelium, fibrous tissues and muscles

COMBINED TEXT BOOK OF OBSTETRICS & GYNECOLOGY

Anaemia may be directly related to blood loss but there is often some depression of red cell formation in the bonemarrow due to septic absorption.

Ibid

Cervical tumors may spread upward into the body or uterine tumors may extend down,

Ibid

AMONG MALES the organs mainly affected are :-

Digestive Organs,
Respiratory Organs,
Genito - urinary Organs,
Mouth and Skin,

AMONG FEMALES—

Digestive Organs,

Breast,
Uterus,
Other Genital Organs,
Respiratory Organs,
Mouth and Skin.

CANCERS ARE OF TWO TYPES—

(i) SQUAMOUS - celled epitheliom̄s,
(ii) COLUMNAR – celled, spheroidal and other forms of glandular cancer.

Classification of Tumors

No classification of tumors can be said to be perfect till we have clearly arrived at the Etiology of the same However, they may be attempted to be classified either on Histological basis or Hystogenetic basis It may be accepted till we are fortunate to find out the causative agent or agents.

MALIGNANT AND NON – MALIGNANT :

(I) Non – Malignant tumors of connective tissue origin.

X ANTHORIA

Fibroma, Lupoma, Myxoma, Chondroma, Osteoma, Mysoma, Glomangioma.

(ii) Malignant Tumor of connective tissue origin - SARCOMA
(iii) Innocent Tumor of epithelial origin ——

(a) Papilloma
(b) Adenoma

(iv) Malignant Ephithelial Tumors – Carcinoma or Epitheloma.

(v) Teratomas and Mixed Tumor

(vi) Tumors derived from Mucous –

Glioma, Neurinoma, Ganytromucoma,

Paragarylioma, Glomangioma, Argentiaffinoma,

(vii) Those derived from Endothelioma.

Endothelioma, Haemingioma, Lymphergioma,

The tumors which defy the accurate classification in light of our present knowledge are :–

Giant cell tumor of bone

Odentoma

Chordoma etc.

PATHOLOGY

Sarcoma and Carcinoma

The tumor of connective tissue origin, usually occurs in young subjects less common than carcinoma which is a very rapidly growing tumor When it affects the bones it usually affects during the growing period aud surprisingly affects the growing ends of the bones, i e on lower extrimity the bones nearer the knee and in upper extremity the bones away from the elbow are affected There may be no particular reason attached to this selectivity but the growth period coinciding with the growing ends does arouse interest

It may also arise in previously benign tumor, such as in uterine myoma, fibroma or chondroma

The cells of sarcome remain well differentiated, and accordingly we say spindle cell sarcoma, as round cell sarcoma, or Lympho sarcoma.

The cells have well defined nucleus and neudilous when the nature of the parent tissue is recognisable we name accordingly–

Fibrosarcoma, osteosarcoma, or Chondrosarcoma and so on and those in which the parent tissue is not differentiated we term it as spindle cell, or round cell or mixed cell sarcoma

To the naked eye it looks a fleshy mass, fungative, bleeding and if it is very vascular some times pulsating too The blood vessels are usually ill supported and thin, but abundant It is likely to undergo mucoid degenrative charge with subsequent liquifaction and cyst formation,

MICROSCOPICALLY—The cells are of connective tissue origin with little Inter cellular matrix outlines of the cells are usually indistinct because of plenty of cytoplasm in them, but neuclid are well marked and large The cells may be seen actually dividing According to the type of the cell predominant it is classed Hystologically spindle shaped, round cell or mixed type

The method of spread is different from that of carcinoma. Sarcoma spreads early both locally and distally. It spreads mainly by blood stream So secondary deposits are found in lungs, liver etc. The preciliction for mode of spread by blood stream in explained by the fact that it is very vascular tumor

Lymph spread by sarcoma is not important and the success of the treatment depends only upon its spread If it has spread to distant organs by blood stream then local removal of the limb is not advocated much even though the secondaries are reported to have retrogressed after the removal of the primary growth

CARCINOMA – Usually known as cancer it is the tumor of Epithelial origin and differing from sarcoma fundamentally in the origin, appearance, occurance, mode of spread and also microscopically

It usually occurs in the late life, spreads merely by Lymphatics and cells are arranged in sheets

THUS MAIN TYPES OF CANCER ARE :-

(a) Squamous cell carcinoma

(b) Basal cell carcinoma

(c) Glandular Carcinoma.

SQUAMOUS CELL CARCINOMA - Usually arises in skin or in any epitheliom which has first gone metaplastic. It may develop spontaneously or in the previously existing lesion, subject to chronic irritation by mechanical, thermal or chemical or bacterial agencies. Eczema, Warts, Hyperkeratosis of skin may form the precursor of cancerous change in them It may be of Papillary or Ulcerative variety.

Microscopically, the cells form the irregular masses of solid clumps, spreading irregularly in the subcutaneous tissue.

GRADES OF MALIGNANCY - The tumors have been attempted to be graded by Broders, though the mode of grading is not equally and rigidly applicable to all types of tumors In Cancers of lip, tongue and cervix, and sometimes of breast this method is useful. The principle of it is based on according to the number of malignant cells present in a particular tumor Four grades ascertained for this purpose are-

I Over 75% of the cells are differentiated

II 50 to 75% „

III 25 to 50% „

IV Number of cells present are more de-differentiative than differentiated.

The more the number of cells differentiated the less malignant the tumor is the more amicable to the treatment. Though it is not possible to apply this method of grading to the sarcomas and rapidly growing carcinomas, but still with the limitations this method is useful in certain types of Squamous cell carcinoma of skin, lip, tongue and cervix

BIOLOGY OF TUMOR CELL – Morphologically the tumor cells resemble the cells of the tissue from which they are derived, but the cells which were originally a part and parcel of the normal tissue must have something fundamentally different in them which is responsible for making them assume the malignant character It is suggested that they differ in character and disposition of the chromosome constituents of the genes.

CHEMICAL ASPECT :– Majority of normal cells require oxygen, malignant cells subsist principally by anaerobic glycolysis even though oxygen is available. This property of malignant cells might be enabling them to flourish under the circumstances prejudicial to the normal cells. Even then there is difference in degree and not in kind. Normal cells possess the glycolytic faculties equal to the malignant cells It is believed that most if not all the cells do possess the capacity to grow limitless In normal cells this capacity is restricted, while in malignant cells the capacity to grow limitless is un-restricted. The reason why it should remain unrestricted is not known.

Q , What Cancer is ?
Ans : A disease of cells and growth gone out of control

DATE . Diagnose And Treat Early
FCDC · Finite cell Doubling Capacity

Dorland's Dictionary :—

CANCER — 'a cellular tumor the natural course of which is fatal and usually associated with formation of secondary tumors"

" A treatment may do no good but it must do no harm."

—HIPPOCRATES

In cancer therapy it is difficult to follow this Hippocratic axiom,

Extreme remedies are appropriate for extreme diseases

—HIPPOCRATES

To cure-is to relieve or rid of something troublesome or detrimental

It is fortunate that the occurence of bilateral cancers in paired organs vital for life, such as the lungs and kidneys are rare.

-LEIS

We must become the masters of medicine not its servants,

-IAN KENNEDY

C. E. A. – Carcinoma Embryonic Antigens

Gold and Freedman found in the (cancerous) tissues of certain cancer patients some "unique tumor antigen(s)" which they christened as C E.A.

CARCINOMA-a malignant new growth of epithelial cells tending to infiltrate the surrounding tissues and give rise to metastases

Cancer research will have reached an outstanding landmark when it becomes possible to define neoplasia in biological terms.

—FOUIDS

It is impossible to define a tumor

—NICHOLSON

"A tumor or neoplasm is a growth of new cells which proliferate relation to the body The essence of the process is loss of control over two fundamental functions of the cell, namely, reproduction and differentiation

—BOYD

'The word TUMOR, strictly speaking, merely means a swelling thus, a boil or blister could be called a tumor"

—GARB

TUMOR—"an abnormal mass of tissue, the growth of which exceeds and is uncoordinated with that of the normal tissues, and persists in the same excessive manner after cessation of the stimuli which evoke the change"

—WILLIS

Most tumors have histological patterns by which they can be recognized and named Tumors, in general, are not formless, chaotic conglomerations of cells but have an organized structure which sometimes approaches in perfection that of parent tissues

—FOULDS

The term tumor (L. tumere, to swell) indicates the presence of a swelling due to any cause (of tumefy, tumefaction, tumescence) Celsus (30 B C) used the term tumor to indicate the swelling associated with any inflammation.

The term neoplasm (Gk neo, new' plasma, formation) means newly formed tissue.

ECHOGRAPHY : diagnosis with the aid of echo curves. Computer fomography (scanning) : radiological technique in which the image can be cut into slices and put together with the aid of a computer

CARCINOGENOUS SUBSTANCES substances that are thought to be capable of causing cancer A substance that supports a carcinogenous substance in its effect and thus first leads to cancer is called co-carcinogenous

IN VITRO . in a test tube (the opposite is "in vivo" in the living specimen, also a human being)

REMISSION : (temporary) disappearance of symptoms of a disease

AMINO ACIDS , the fundamental elements making up protein

CYTOSTATICS : substances that hinder cells from growing and multiplying:

SUSPENSION : fine particles distributed in a liquid Adjuvant chemotherapy : supporting agents, in our case, a chemotherapeutic agent against metastases, that is administered before metastases form

OVARIAL CARCINOMA tumour in the ovary

" I treat, He cures "

—ARISTOTLE
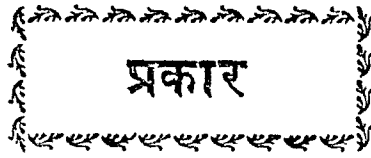
प्रकार

कार्सीनोमा–शरीर की उपकला के कैन्सर को
सार्कोमा–सयोजक ऊतक के कैन्सर को कहते है ।

कार्सीनोमा

कार्सीनोमा–शरीर की उपकला मे उत्पन्न होता है । यह अपने चारो तरफ के स्वस्थ ऊतको मे इस प्रकार प्रविष्ट रहता है कि कार्सीनोमा और स्वस्थ ऊतको के बीच मे विभाजन रेखा नही खीची जा सकती । यह सयोजक ऊतको के चारो तरफ के लसिका स्थान पर आक्रमण करता हे । कार्सीनोमा का प्रसार अधिकतर लसिका वाहिनियो के माध्यम से होता है; रक्त के माध्यम से अपेक्षाकृत वहुत कम । कार्सीनोमा शरीर की उपकला से उत्पन्न होता है । उपकला कई प्रकार की होती हे । इसलिए कार्सीनोमा भी कई प्रकार के होते हे–(१) बाह्यत्वचाभ कार्सीनोमा, (२) आधारी कोशिका कार्सीनोमा, (३) लसिका दुर्दम उपकलार्बुद, (४) ग्रन्थि कार्सीनोमा, (५) सामान्य कार्सीनोमा ।

सार्कोमा

यह सयोजक ऊतको का कैन्सर हे । इसकी मॉस के समान आकृति आसपास की रचना से भिन्न होने के कारण आसानी से पहचानी जाती है । इसकी आकृति मस्तिष्क के श्वेत पदार्थ के समान और नरम होती है । इसका प्रसार व्यापक होता है और यह आसपास के ऊतको मे भी अन्त सचरण करता हे। इसकी कोशिकाये मासपेशी के तन्तुओ तथा अस्थियो के अन्दर प्रसारित होती हे। अत॰ यह निर्मूल किया जाना दु साध्य है और इसकी पुनरुत्पत्ति की अत्यधिक सभावना रहती हे । यह अधिकतर अस्थियो, अधस्त्वक् ऊतक, प्रावरणी और मॉसपेशियो मे होता है। तन्तुसार्कोमा, तन्त्रिकासार्कोमा, अस्थिसार्कोमा, उपस्थिसार्कोमा, वसा-सार्कोमा, महाकोशिकीय सार्कोमा आदि रूपो मे यह उत्पन्न होता है ।

* रक्त कैन्सर [श्वेतरक्तता] *

इस व्याधि मे रक्त मे श्वेत कणो की सख्या बढ जाती है । इसे ल्यूकीमिया कहते है । प्रारम्भ मे रोगी को बार–बार मन्द ज्वर आता है । लसिका गाँठो मे शोथ हो जाता है । यह

रक्त उत्पादक तन्त्र पर आक्रमण करके श्वेत कणो के उत्पादन की सख्या बहुत अधिक बढा देता है और उन्हे परिपक्व नही होने देता। स्वस्थ अवस्था मे रक्त मे श्वेत कणो की सख्या 6000 से 8000 प्रति क्यूबिक मिलीमीटर होती है किन्तु ल्यूकीमिया मे यह बढकर 1 से 4 लाख तक प्रति क्यूबिक मिलीमीटर हो जाती है। रक्त कैन्सर यद्यपि सभी अवस्था के रोगियो को होता है परन्तु उग्र रूप का रक्त कैन्सर बच्चो मे सर्वाधिक होता है। बच्चो मे ल्यूकीमिया ही मुख्य कैन्सर है। उत्कट रक्त कैन्सर के अलावा विषाणु (वायरस) अन्य किसी प्रकार के कैन्सर के कारण नही है।

रक्त कैन्सर से मरने वालो की सख्या गत 50 वर्षों मे बढती जा रही है। इसका कारण विकिरण को माना जाता है। जो लोग विकिरण के सम्पर्क मे अधिक आते है उनमे यह रोग अधिक होता है। जापान के हिरोशिमा तथा नागासाकी मे हुए अणुबम विस्फोटो को इस रोग की वृद्धि का एक प्रमुख कारण माना जाता है। अन्य प्रकार के कैन्सर ढलती आयु के व्यक्तियों पर अधिक आक्रमण करते है जबकि इसके विपरीत रक्त कैन्सर 50 वर्ष से कम आयु वालो के अधिक होता है। इसमे रक्तस्राव अधिक होता है और उग्रावस्था मे त्वचा तथा होठ का रग सफेद हो जाता है। स्त्रियो की अपेक्षा पुरुषों के यह रोग अधिक होता है। विकिरण के अलावा प्रदूषण, औषधियो का अति प्रयोग और कई उद्योग, इसकी उत्पत्ति के कारण माने जाते हैं। यह दो प्रकार का होता है—जीर्ण और तीव्र। जीर्ण धीरे धीरे बढता है और तीव्र अचानक उग्र आक्रमण करता है।

फेफड़ों का कैन्सर

प्रारम्भ मे खाँसी आती है। न तो कोई पीडा होती है, न बलगम आता है। खाँसी सामान्य चिकित्सा से ठीक नही होती। बलगम आने लगता है। बलगम मे खून का रेशा भी आने लगता है, अधिक बढने पर खून की उल्टी भी कभी कभी होती है। शुरू मे वेदना नही होती, धीरे धीरे जो फेफडा आक्रान्त होता है उधर भारीपन और दर्द महसूस होता है। पूरा सास लेने मे तकलीफ होती है। दोनो फेफडे एक साथ आक्रान्त नही होते न एक का सक्रमण दूसरे मे होता है। ज्वर रहने लगता है। बलगम बदबूदार और पूय युक्त होता है। ढलती उमर मे सामान्य चिकित्सा मे खाँसी ठीक न होने पर जाँच की आवश्यकता होती है। पूरी जाँच के बाद जो रोग हो उसकी चिकित्सा की जानी चाहिये। कई बार फुफ्फुस कैन्सर को टी. बी मानकर उपचार करने से फायदे की बजाय नुक्सान होता है।

भोजन नली का कैन्सर

यह भोजन को कठ से आमाशय तक पहुचाने वाली एक 25 सेटीमीटर लम्बी नली है। मुख्यत' ढलती उमर के व्यक्तियो को होता है । स्त्रियो की अपेक्षा पुरुषो के अधिक होता है । इसके मुख्य कारण, तेज मिर्च मसालो वाले खाद्य पदार्थो और मीट शराब का सेवन बताया जाता है। आक्रान्त स्थान पर गहरा घाव (व्रण) हो जाता है जो वढकर समूची भोजन नली को रोक लेता है । शुरू मे निगलने मे कष्ट होता है जो बढता जाता है। रोग अधिक बढने पर पानी भी नही पिया जाता ।

योनि कैन्सर

वहुत कम होता है। उत्पत्ति के कारणो का पूरा ज्ञान नही है । प्राय. गर्भाशय, गर्भाशय ग्रीवा, मूत्राशय के कैन्सरो का प्रसार ही योनि कैन्सर बनता है । ढलती आयु की महिलाओ मे अधिक होता है। भग से गर्भाशय तक फैली अनेक मासपेशियो वाली, श्लेष्मायुक्त, लचीली नलिका को योनि कहते है। पैसरी का प्रयोग, किसी प्रकार का जीर्णक्षोभ और उपदश (गर्मी) इसके सम्भावित कारण हे। योनि के कैन्सर गाठ के रूप मे होते है । योनिगत रक्तस्राव, दुर्गन्धि व पूय युक्त स्राव और मैथुन क्रिया के समय रक्त स्राव इसके मुख्य लक्षण है। रोग वढने पर स्थानिक शूल, मूत्रकृच्छ, रक्त मूत्र और पैरो मे सूजन हो जाती है।

भिन्न भिन्न अंगों के कैन्सर

त्वचा का कैन्सर – तेज धूप मे काम करने वालो के ज्यादा होता है । गोरी चमडी वालो के ज्यादा होता है । चेहरा, गर्दन, पीठ, हाथ आदि खुले रहने वाले अगो पर ज्यादा होता है । इन अगो पर फुन्सी, फोडा, चकत्ता फफोला वगेरा हो जाने और साधारण चिकित्सा से ठीक न होने पर कैन्सर की आशका होती है । कस कर धोती वाधने से होने वाला धोती कैन्सर भी इसी श्रेणी का है । प्रारम्भिक अवस्था मे निदान हो जाने पर इस श्रेणी के कैन्सर का इलाज सम्भव हे ।

होठो का कैन्सर – हल्के रग के चकत्ते के रूप मे प्रकट होता है । धीरे धीरे बढता है । कभी कडे काटेदार उभार या घाव के रूप मे होता है । तम्बाकू, जर्दा व चूना मिलाकर खाने वाले इसके अधिक सम्भावित शिकार होते है ।

गाल का कैन्सर –मस्से या सफेद चकत्ते की सी आकृति प्रारम्भ मे होती है। यदि ऐसा घाव वेदना रहित हो और दो सप्ताह के इलाज से ठीक न हो जाय तो विशेषज्ञ को दिखाना चाहिये । तम्बाकू सेवन, दाँतो की खरावी, पौष्टिक भोजन की कमी, गरमागरम खाना व पीना इसकी उत्पत्ति मे सहायक हो सकते हैं ।

जीभ का कैन्सर -वेदना रहित घाव के रूप मे प्रकट होता है । महीनो बाद पता लगता है।

आमाशय का कैन्सर – प्रारम्भ मे अपच होती है । प्राय 35 वर्ष से वटी आयु वालो के होता है । भोजन मे अरुचि, क्षुधानाश, पेट के ऊपरी भाग मे भोजन के वाद पीडा प्रारम्भिक लक्षण हे । वीच वीच मे उवकाई व कै होती है । खाया पीया वाहर आ जाता है। कभी कभी रक्त वमन मे काला खून आ जाता है । वजन कम होने लगता है ।

स्तन का कैन्सर – ज्यादातर वडी उम्र की महिलाओ के होता है । अत्यधिक कष्टदायी हे । प्रारम्भ मे बिना दर्द की सूजन या स्तन मे गाँठे हाती है । हार्मोन का असन्तुलन, वच्चो को स्तनपान नही कराना, स्तनो को कसकर वाँवे रखना भी इसके सम्भावित कारण वताये जाते हे । 35 वर्ष की आयु के वाद महिलाओ को अपने स्तनो का निरीक्षण करते रहना चाहिये। सूजन, चुचुक का टेढा होना, चुचुक से रक्तस्राव, एक स्तन से दूसरे स्तन का वडा होना जेसे लक्षण दिखने पर तत्काल निदान व चिकित्सा करानी चाहिये ।

गर्भाशय का कैन्सर – प्रारम्भिक लक्षण अत्यधिक व अनियमित रक्तस्राव । दुर्गन्धयुक्त व मवादयुक्त स्राव होने पर सतर्कता आवश्यक है । सहवास के वाद रक्तस्राव गर्भाशय ग्रीवा के केन्सर का सकेत हो सकता है ।

पौरुष ग्रन्थि का कैन्सर – 60 वर्ष से अधिक के व्यक्तियो मे अधिक होता है । वार वार मूत्र त्याग की हाजत व मूत्र त्याग के समय पीडा, हड्डियो और जोडो मे दर्द इसके प्रारम्भिक लक्षण है । इस रोग मे स्त्री हारमोनस् का प्रयोग लाभप्रद है ।

अर्बुद

आयुर्वेद के अनेक विद्वान सुश्रुत सहिता के निदान स्था , एकादश अध्याय मे वर्णित ग्रन्थि अपची, अर्बुद और गलगण्ड मे से अर्बुद को ही कैन्सर मानते है । इस अध्याय मे

अर्बुद निदान मे अर्बुद के स्वरूप और लक्षण निम्नलिखित बताये है । शरीर के किसी भी प्रदेश मे बढे हुये वातादि दोष मास को दूषित करके गोल, स्थिर, अल्पपीडा युक्त, बडा, गम्भीर, धातुओ मे फैला हुआ, धीरे २ बढने वाला, कभी भी नही पकने वाला और मास के उपचय (वृद्धि) से युक्त ऐसे शोफ को पैदा करते है । आयुर्वेद शास्त्र के ज्ञाता विद्वान इस शोफ रोग को अर्बुद कहते हे । यह वात से, पित्त से, कफ से, रक्त से, मास से और मेद से उत्पन्न होता है तथा ग्रन्थि के समान इसके लक्षण होते हैं । ।। ११–१३, १४, १५ ।।

अर्बुद 6 प्रकार के बताये गये है, वातिक, पैत्तिक, श्लेष्मिक अर्बुद और रक्तार्बुद, मासार्बुद तथा मेदसार्बुद ।

एक अर्बुद मे उत्पन्न दूसरे अर्बुद को अध्यर्बुद कहते है । एक स्थान से दूसरे स्थान पर उत्पन्न होने वाले अर्बुद को द्विरर्बुद कहते है ।

मिथ्या आहार–विहार से दुष्ट हुए वातादि दोष रक्त तथा सिराओ को सपीडित तथा सकुचित करके पाक प्राप्त होकर स्रावयुवत तथा मास के अकुरो से व्याप्त एव शीघ्र वृद्धि से युक्त मासपिण्ड को उत्सेधयुवत कर देते है तथा उससे निरन्तर दूपित रक्त बहता है । यह रक्तार्बुद असाध्य होता हे । अर्बुद रोग से पीडित व्यक्ति रक्तक्षयरूपी उपद्रव से पीडित होने से वर्ण मे पाण्डु (श्वेत रक्त पीत) हो जाता है ।

सुश्रुत । निदान स्थानम् । ।। ११–१६–१७ ।।

कुछ विद्वानो का मत है कि किसी 2 व्यक्ति मे भ्रूणावस्था की धातुओ के कुछ भाग उसी अवस्था मे रह जाते है, उनका विकास नही होता । भ्रूण के कोषाणुओ मे वृद्धि की बहुत अधिक क्षमता होती हे । इसीलिए भ्रूणावस्था मे शरीर बहुत तेजी से बढता है । बचपन मे भी यह क्षमता बहुत अधिक होती हे । भ्रूणावस्था की स्थिति मे निष्क्रिय कोषाणु समूह वर्षो, 30–40–50 साल या इससे भी ज्यादा उसी स्थिति मे पडे रहते है, न तो कोई विकार उत्पन्न करते है, न तकलीफ देते है । किन्तु जब किसी कारणवश ये कोषाणु समूह विक्षुब्ध या उत्तेजित हो जाते हे तो बहुत तेजी के साथ बढने लगते है और ऐसी स्थिति म इनकी गति और वृद्धि पर से शरीर का नियन्त्रण समाप्त हो जाता है और इसी अतिवृद्धि से अर्बुद उत्पन्न होता है ।

मासार्बुद–मुष्टिप्रहार आदि से शरीर प्रदेश पर आघात पहुँचने पर वहा का मास दूपित होकर स्वल्प पीडाकारी, स्पर्श मे चिकना, स्वाभाविक वर्णयुक्त, नही पकने वाला, पत्थर के

समान कडा तथा अप्रचाल्य (स्थिर) शोफ पैदा होता है । जो व्यक्ति मास खाने मे अधिक तत्पर रहता है तथा जिसका मास दूपित हो जाता है । उसके देह मे यह मासार्बुद रोग पैदा होता है तथा यह असाध्य होता है तथा माध्य अर्बुदो मे इतने को वर्जित कर देना चाहिये, जो बहुत वहता हो, जो मर्मस्थान पर पैदा हुआ हो तथा जो नासा या रस–रक्तादिवह स्रोतस या अन्नवह महास्रोतस मे उत्पन्न हुआ हो एव जो अचल (स्थिर) हो। – ।। १८–१९–२० ।।

पूर्व उत्पन्न हुए अर्बुद के स्थान मे या उसके सन्निकट जो दूसरा अर्बुद उत्पन्न होता है उसे अर्बुदज्ञ विद्वान वैद्य अध्यर्बुद कहते है । जो प्रारम्भ ही मे दो सख्या मे अर्बुद पैदा हुए हो अथवा क्रम से एक के वाद दूसरा अर्बुद पैदा हुआ हो, उसका द्विरर्बुद कहते है तथा ये दोनो असाध्य होते है ।

अर्बुदो मे कफ को अधिकता होने से तथा मेद को विशेष अधिकता होने से एव दोपो की स्थिरता होने से या ग्रन्थि रूप (कठिन) होने से स्वाभाविक तौर पर सभी प्रकार के ही अर्बुद पकते नही है । ।। २१–२२ ।।
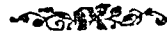
कारण

गर्भधारण से मृत्यु पर्यन्त मानव शरीर मे कोशिकाओ के निर्माण और विनाश की प्रक्रिया चलती रहती है। शरीर का बिन्दु मात्र से अपने पूर्ण आकार तक विकास नई कोशिकाओ (Cells) की वृद्धि से सम्भव हो पाता है। यह निर्माण, विकास, बढोतरी बाहर से आकर जुडने वाले किसी तत्त्व की सहायता से नही होता वल्कि विद्यमान कोशिकाये ही स्व–विभाजन द्वारा अपनी बढोतरी करके करती है। एक कोशिका अपने ही जैसी एक अन्य कोशिका को जन्म देती है स्वय को दो मे विभाजित करके। ये दोनो ही कोशिकाये अपने जैसी अन्य कोशिकाओ के निर्माण मे सक्षम होती है। जब जिस अग को जितनी नई कोशिकाओ की आवश्यकता होती है उतनी नई कोशिकाओ का निर्माण करके शरीरस्थ, अज्ञात नियन्त्रक प्रणाली नवनिर्माण को रोक देती है। कुछ विद्वानो का मत है कि यह नियन्त्रण क्षमता हार्मोनो मे निहित है और हार्मोनो मे गडबडी होने से यह नियन्त्रण क्षमता समाप्त हो जाती है। कुछ कोशिकाये अनियन्त्रित गति से बढने लगती है। इसी अनियन्त्रित वृद्धि का नाम कैन्सर है। यह कैन्सर की उत्पत्ति का एक सम्भावित कारण है किन्तु विज्ञान सम्मत एकमात्र प्रामाणिक कारण नही। कोशिकाओ के नवनिर्माण पर नियन्त्रण वास्तव मे केवल हार्मोन्स ही करते है और हार्मोन्स मे ऐसी गडबडी किस कारण से उत्पन्न होती है। इन प्रश्नो के विज्ञान सम्मत प्रामाणिक उत्तर उपलब्ध नही। ऐसी स्थिति मे कैन्सर की उत्पत्ति का कारण निश्चित रूप से नही बताया जा सकता किन्तु कुछ विशेष परिस्थितियो मे कुछ विशेष प्रकार के कैन्सर अधिक सख्या मे होते देखे गये है और उन परिस्थितियो, पदार्थो आदि को कैन्सर की उत्पत्ति का सहायक कारण माना गया है। जैसे-कुछ रसायनो के कारखाना मे काम करने वालो, एक्स रे मशीनो के टेक्नीशियन आदि का कुछ विशेष प्रकार के कैन्सरो से अधिक सख्या मे ग्रस्त होना, उन रसायन विशेषो के सम्पर्क या एक्स रे के विकिरण के खतरो की ओर सम्भावित कारणो के रूप मे इगित करना है। इस प्रकार के कुछ मुख्य सम्भावित कारण निम्नलिखित है—

(१) रसायन

(२) विकिरण

(३) दूषित पर्यावरण

(४) किसी अग विशेप पर वार वार लगने वाली चोटे
(५) किसी अग का निरन्तर क्षुब्ध, उत्तेजित रहना। मिर्च, मसाले, सुरापान, धूम्रपान, पथरी आदि से ।
(६) भ्रूणावस्था मे उत्पन्न कारण (जननिक, औत्पत्तिक)
(७) विषाणु
(८) वार्धक्य
(९) जातीय अथवा वशानुगत
(१०) जननिक परिवर्तन

पश्चिमी देशो मे सर्वप्रथम यह तथ्य सामने आया कि चिमनी साफ करने वाले श्रमिक अधिक सख्या मे अण्डकोप के कैन्सर से ग्रस्त होते है। चिमनी मे जमी कालिख के अधिक सम्पर्क को इसका कारण माना गया । इसी प्रकार अनेक रासायनिक उद्योगो मे लगे व्यक्ति भी कुछ विशेप प्रकार के कैन्सरो से अधिक सख्या मे पीडित होते देखे गये । तारकोल और इससे सम्बन्धित अन्य पदार्थो के अधिक सम्पर्क मे आने वालो को त्वचा, अण्डकोप और फेफडो के कैन्सर से ग्रस्त होते देखा गया । इसी प्रकार छापाखानो, रगाई व रग निर्माण, पटाखे, रवड की वस्तुये बनाने के कारखानो, धातुओ के कारखानो, टीन, निकल, क्रोमियम, रेडियम आदि का उत्पादन और प्रयोग करने वाले कारखानो, जूट, कपडा, टीन बनाने वाले कारखानो के श्रमिको को अपेक्षाकृत अधिक सख्या मे फेफडो, त्वचा, अण्डकोप, गुर्दा, मूत्राशय प्रणाली, अस्थि के कैन्सर से ग्रस्त पाया गया ।

इसी प्रकार खान मजदूरो मे फेफडे का कैन्सर, रग के कारखानो मे मूत्राशय का कैन्सर, अधिक गर्म अलकतरे से त्वचा का कैन्सर, पेट्रोलियम से त्वचा के कैन्सर, रेडियम और अन्य रेडियो सक्रिय पदार्थो के अधिक सम्पर्क से हड्डियो तथा अन्य तन्तुओ का कैन्सर अपेक्षाकृत अधिक मात्रा मे पाया जाता है, जिससे यह साराश निकाला गया है कि इन वस्तुओ का अधिक सम्पर्क कैन्सर की उत्पत्ति मे सहायक बनता है ।

कैन्सर की उत्पत्ति के रासायनिक कारण का सर्वप्रथम पता लगाने वाले सर **पर्सिवल** पोट ने देखा कि अलकतरे के अधिक सम्पर्क मे आने वाले व्यक्तियो के त्वचा का कन्सर अधिक सख्या मे होता है । सर पोट ने यह निर्णय निकाला कि अलकतरा रासायनिक प्रक्रिया से कैन्सर उत्पन्न करता है । होठ का कैन्सर मछुओ मे अधिक होता है जो अलकतरे लगे डोरे को वार वार मुह मे लेते है । सर पर्सिवल पोट की इस खोज के करीब 150 वर्ष वाद सन् 1905 ई०

मे प्रसिद्ध जापानी वैज्ञानिक यामाजीवा ने अपने प्रयोगो से सिद्ध किया कि खरगोश के कान पर प्रतिदिन अलकतरा लगाने से उसकी कान की त्वचा पर छ: माह पश्चात त्वचा कैन्सर हो गया। अलकतरा वहुत सी चीजो का एक सम्मिश्रण है जिसमे कई प्रकार के रासायनिक तत्व मिले रहते हैं। सन् 1932 मे **श्री केयनावे और कुक** ने खोज की कि अलकतरे मे विद्यमान कैन्सर उत्पन्न करने वाले पदार्थों मे बेन्जीपायरिन हाइड्रोकार्वन प्रधान है।

खुली धूप मे काम करने वाले मछुआरो और किसानो मे त्वचा कैन्सर अधिक पाया जाता है। कहा जाता है कि गोरे रग वालो मे यह ज्यादा होता है और परावैगनी किरणो के सामने खुले रहने वाले अगो पर होता है। सौरमण्डल मे होने वाले विस्फोटो से उत्पन्न पृथ्वीतल तक पहुँचने वाली कुछ किरणे भी केन्सर की उत्पत्ति का कारण मानी जाती हे। एटमवम के विस्फोट से आसमान मे चढ जाने वाली रेडियो सक्रिय धूलि के कण भी रक्त और त्वचा केन्सर उत्पन्न करने मे अत्यधिक सक्षम माने जाते है। कहा जाता है कि जापान के नगर हिरोशिमा और नागासाकी (जहाँ अमेरिका ने एटमबम डाले थे) के क्षेत्रो मे एटमवम विस्फोट के बाद वहुत अधिक व्यक्ति रक्त और त्वचा कैन्सर से आक्रान्त हुए। एक्स–रे ट्यूब मे से निकलने वाली रेडियो सक्रिय तरगो को भी त्वचा कैन्सर उत्पन्न करने मे सक्षम माना जाता हे। कहा जाता है कि एक्स–रे विभाग मे लम्बे अर्से तक काम करने वाले कई टैक्नीशियन इस प्रकार के कैन्सरो से आक्रान्त हो जाते है।

भिन्न २ प्रदेशो और स्थानो पर विशेष प्रकार के कैन्सर अधिक तादाद मे होते है। इसका कारण दूषित पर्यावरण और कुछ विशेप प्रकार के व्यवसायो को माना जाता है। शहरी क्षेत्रो और कारखानो के इलाको मे कैन्सर का अनुपात अधिक रहता है। अधिक समय दूषित वायुमडल मे गुजारने वाले व्यक्ति श्वास प्रणाली के कैन्सरो से अधिक पीडित होते हैं।

एक ही स्थान पर वार वार होने वाले आघात या कुछ विशेष प्रकार के आघात कैन्सर की उत्पत्ति के बहिर्जात कारणो मे से एक हे। लम्बे अर्से तक अधिक मात्रा मे धूम्रपान या सुरापान करते रहना, तेज मिर्च मसाले वाला खाना और गुर्दे, मूत्राशय आदि मे स्थित पथरी का इलाज न कराना भी कैन्सर का कारण माना गया है। कैन्सर ज्यादातर 45 वर्ष से अधिक आयु वालो के होता है। बच्चो तथा युवको के कम होता है। जलवायु, वातावरण, खानपान आदि कारणो या किन्ही विशेष इलाको मे रहने वाली जातियो की शरीरस्थ किन्ही विशेष स्थितियो के कारण भिन्न २ प्रदेशो मे कुछ विशेष प्रकार के कैन्सर ज्यादा होते देखे गये है। कैन्सर वश परम्परा से प्राप्त होने वाली बीमारी नही है, न छूत की बीमारी है। हाँ कुछ विशेष जन समूहों मे कुछ विशेष प्रकार के कैन्सर ज्यादा होते है। जिसका कारण अभी तक वश परम्परा को स्वीकार नही किया गया है।

लवण अतियोग से पुंस्त्वनाश पूर्वलिखित प्रकार से वृषण ग्रन्थियो तथा शुक्र मे द्रवाधिक्य और शुक्र में तरलता तथा चपलता होने से होता है। शरीर मे शोथ तथा शैथिल्य भी त्वचा, माँस आदि में द्रव–संचिति के कारण होता है । इसी से इन रोगो मे तथा कुष्ठादि मे लवण का परिवर्जन कराया जाता है ।

कैन्सर की उत्पत्ति के जितने भी कारण समय २ पर बताये गये है उनके पक्ष मे जितने तर्क दिये गये है, उससे कही अधिक जोरदार तर्क उन कारणो के विपक्ष मे प्रस्तुत किये गये है। कुल मिलाकर वर्तमान समय तक स्थिति ऐसी है कि कैन्सर के कारणो के बारे मे निश्चित रूप से नही कहा जा सकता । जब तक हमे निश्चित रूप से यह पता नही लग जाये कि अमुक पदार्थ, इतनी मात्रा मे, मनुष्य के शरीर मे पहुँचा देने पर इतने दिनो मे वह निश्चित रूप से अमुक प्रकार के कैन्सर से आक्रान्त हो जायेगा, तब तक किसी भी पदार्थ को कैन्सरोत्पादक नही कहा जा सकता ।

साराशत: यही कहा जा सकता है कि खान पान और आचार के अतियोग तथा हीन योग; दूषित पर्यावरण आदि शरीर के स्वस्थ संचालन की जिम्मेदार मूल प्रणालियो पर आघात पहुँचाने वाले कारणो से जहाँ तक सम्भव हो, बचा जाना चाहिये ।

CANCER VADE MECUM

VOLUME II

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

अधिकतर व्यक्तियो की यही धारणा है कि कैन्सर रोग समूह के निदान, उपचार के सम्बन्ध मे जो भी कार्य हुआ है वह पिछली आधी शताब्दी मे ही हुआ है। पहले कैन्सर से बहुत कम व्यक्ति पीडित होते थे और उपचार कोई था नही या सिर्फ टोटकाबाजी पर आधारित था। किन्तु इतिहास इस धारणा को खडित करता है। कैन्सर चिकित्सा के तीन तरीको

(१) ब्लेड, (२) बीम और (३) बोटल यानि शल्य क्रिया, प्रदाहन और औषधोपचार का प्राचीन चिकित्सकों को भी ज्ञान था और युगानुसार उपलब्ध ज्ञान के आधार पर वे इनका प्रयोग करते थे। आधुनिक वैज्ञानिकों, डाक्टरों ने अधिकांश में या तो पूर्व प्रचलित मान्यताओं पर आगे कार्य किया है या उन्हें खण्डित किया है। नवीन प्रस्थापनाये इस क्षेत्र में अभी होनी शेष है।

लाखों वर्ष पुराने पशुओं के मृत शरीरों के परीक्षण और मिश्र की ममियों (राजा, रानियों की सुरक्षित मृत देहों) के वैज्ञानिक परीक्षण से उनमें कैन्सर के अस्तित्व और उसके इलाज के करीब चार हजार वर्ष पूर्व तक के प्रमाण उपलब्ध हैं।

प्राचीन मिश्र देशीय पत्र लेख:—

ये पत्र लेख करीब 1600 ई० पूर्व के बताए जाते हैं। इनमें जीर्ण घावों, क्षोभ युक्त सूजनों और वास्तविक अर्बुदों में कोई भेद नहीं किया गया है। चिकित्सा के रूप में चीरा लगा कर पुल्टिस का विधान किया गया है और चेतावनी दी गई है कि फलां फलां प्रकार के अर्बुदों की चिकित्सा घातक सिद्ध हो सकती है। कुछ अन्य लेखों में स्तन के अर्बुदों या घावों का उल्लेख किया गया है और एक औजार (Fire drill) से प्रदाहन द्वारा उनकी चिकित्सा बताई गई है। तत्कालीन मिश्र देशीय चिकित्सक त्वचा की ऊपरी सतह पर बने घाव या गांठ का कास्टिक और संखिया के मलहम से इलाज करते थे। यह 20 वी शताब्दी में भी चालू है।

ग्रीस

प्राचीन ग्रीस में प्लेटो और अरस्तु का औषध विज्ञान के सिद्धान्तों पर जो प्रभाव था उसे जाने बिना उनके कैन्सर सम्बन्धी सिद्धान्तों को समझा नहीं जा सकता। प्लेटो अपार्थिव तत्वों जैसे—आत्मा, मन, विचार, (गुण) और सम्बन्धों को अधिक महत्व देता था। अरस्तु ने इनका क्षेत्र और बढा कर आकार और पदार्थ को भी इनमें शामिल कर दिया। अरस्तु शारीरिक प्रक्रियाओं को वायु, अग्नि, पृथ्वी, जल, तत्वों, प्रकृतियों, धातुओं, दोषों, आत्माओं और आनुवांशिकता द्वारा विश्लेषित करता था। अरस्तु ने चार कारणों का सिद्धान्त भी प्रतिपादित किया। ये हैं :—

औपचारिक, पार्थिव, सक्षम और अन्तिम। सब चीजों का एक अपार्थिव आकार, एक पार्थिव उपादान जिसमें वे निर्मित हैं, निर्माण का एक साधन और एक उपयोग है जिसमें वे प्रयुक्त होती हैं। कैन्सर सम्बन्धी धारणाओं सहित सारे ही विचारों को इस बुनियादी खाके के अन्तर्गत ही अभिव्यक्त किया जाना लाजिम था। बहुत हद तक विचार का यह तरीका अब तक प्रचलित है।

हिप्पोक्रेटस का रस स्त्रावीय सिद्धान्त – पाश्चात्य विद्वान हिप्पोक्रेटस (460–370 ई० पू०) को न केवल औषधि विज्ञान बल्कि कैन्सर किकित्साशास्त्र (Oncology) का भी पिता मानते है। हिप्पोक्रेटस पहला व्यक्ति था जिसने कार्सीनोमा शब्द का प्रयोग किया। इसकी व्युत्पत्ति कार्कीनोस शब्द से हुई है जिसका अर्थ है–केकडा। कैन्सर की केकडे के साथ बडी सागोपांग उपमा हिप्पोक्रेटस या ऐजिना के पालस (650 ई० पू०) द्वारा निम्नलिखित शब्दो मे प्रस्तुत की गई है।

"Cancer is a roundish unequal, hard, and livid tumor, generally seated in the glandulous parts of the body, supposed to be so called because it appears at length with turgid veins shooting out from it, so as to resemble the figure of a crab; or as others say, because like a crab, where it has once got, it is scarce possible to drive it away."

हिप्पोक्रेटस के कथनानुसार मानव शरीर मे चार मूल धातुये है- रक्त, कफ, पीला पित्त और काला पित्त। इनमे से एक या एकाधिक की अधिकता, न्यूनता या पृथक्करण ही बीमारी का कारण है। धातुओ के समग्रश मे आजाने या सम्यग् पारस्परिक सम्मिश्रण से वापस स्वास्थ्य लाभ हो जाता है। हिप्पोक्रेटस ने प्रतिपादित किया कि कैन्सर काले पित्त की अधिकता से उत्पन्न होने वाली एक व्याधि है। हिप्पोक्रेटस ने ट्यूमरो की दो किस्मे बताई। (१) दुर्दम्य अल्सर और (२) गहरे पैठे हुए या ओकल्ट ट्यूमर। उसने सिफारिश की कि गहरे पैठे हुए ट्यूमरो की शल्य क्रिया कभी न की जाय। ऐसे इलाज से स्थिति और अधिक बिगड सकती है और रोगी की शीघ्र ही मृत्यु हो सकती है। हिप्पोक्रेटस ने त्वचा, स्तन, गर्भाशय ग्रीवा और गुदा के कैन्सरो का वर्णन किया और त्वचा की सतह पर स्थित अगभीर ट्यूमरो का प्रदाहन और कास्टिक लेपो से इलाज किया। हिप्पोक्रेटस ने कैन्सर के इलाज हेतु निम्नलिखित सिफारिश भी की—

"Evacuation of the bowels should be continued for ten weeks, with purgation being affected once in a week If there is a large vein in the vicinity, venesection may be restored to The patient should be given a bath each day with lukewarm water and a paste of calcined verdigris applied to the affected part till the latter becomes reddish after which it should be covered with a cloth piece soaked in water"

ऑरेलियस कोर्नेलियस सेलसस (Aurelius Cornelius Celsus) (30 ई० पू०) ने कैन्सर का विस्तृत विवरण दिया है और नियोप्लाज्म (नव वृद्धि) को क्षोभ युक्त सूजन से पृथक् करने का प्रयत्न किया है।

कार्सीनोमा, कारबकल (अदीठ) फोडा जितना खतरनाक उस वक्त तक नही होता जब तक इसे इलाज से क्षुब्ध न कर दिया जाय। यह बीमारी ज्यादातर शरीर के ऊपरी हिस्सों मे होती है जैसे चेहरा, नाक, कान ओठ और औरतो के स्तन। किन्तु यह बीमारी किसी क्षत मे या प्लीहा मे भी उत्पन्न हो सकती है। रोग ग्रस्त स्थान पर (सुई चुभने) जैसा दर्द महसूस होता है। एक स्थिर ऊबड खाबड सूजन हो जाती है और कभी कभी सूनापन भी आ जाता है। इस स्थान के चारो ओर फैली हुई शिराएं दिखाई भी देती है जिनका रग पीला या काला होता है, कुछ केसो मे ये शिराएँ दिखाई नही भी देती। कुछ अन्य केसो मे रोगाक्रान्त स्थल छूने मात्र से दर्द करता है तो कुछ अन्य केसो मे कोई सम्वेदना नही होती। कई बार पीडित हिस्सा स्वाभाविक से अधिक नरम या कठोर होता है पर घाव नही होता और कई बार क्षत सब चिन्हो से ऊपर दिखाई देता है। कई बार ऐसे क्षत की कोई विशेषता नही होती किन्तु कई बार सख्त और बडे आकार का होता है तथा लाल रग का और मसूर जैसी आकृति का होता है। यह रोग प्रारम्भिक अवस्था मे ही उच्छेदन द्वारा हटाया जा सकता है। आगे की स्थितियो मे चिकित्सा से क्षुब्ध होता है। कुछ लोगो ने कास्टिक के लेपो का प्रयोग किया है। कुछ ने प्रदाहन का और कुछ ने शल्य क्रिया मे उच्छेदन का। किन्तु किसी चिकित्सा से आराम नही मिला। प्रदाहित हिस्से तत्काल उत्तेजित होकर रोग को इतना बढा देते हैं कि रोगी की मृत्यु हो जाती है। जब कि अन्य कुछ मामलो मे ट्यूमर को हटाने के लिये किसी उत्कट विधि का प्रयोग न किये जाने पर और ट्यूमर को शान्त करने के लिये केवल हल्के लेपो के प्रयोग से रोगी ट्यूमर के होते हुए भी परिपक्व आयु प्राप्त करते हैं। सिवाय समय और प्रयोग के अलावा किसी चिकित्सक को इतनी सूक्ष्म जानकारी नही होती कि वह कैन्सर की प्राथमिक और आगे बढी हुई स्थितियो को समझ सके। इसलिये, ज्योही क्षत पहले पहल ध्यान मे आये कास्टिक लेप लगाये जाने चाहिये। अगर रोगी को आराम मिलना है और इसके लक्षण कम होते है तो चिकित्सा को चाकू और प्रदाहन के प्रयोग से आगे बढाया जा सकता है।

Agloncon एगलॉकोन, (ईसा की दूसरी शताब्दी) गालेन का गुरू था उसका कथन कि लीवर का तापमान बढ जाने से लीवर सडा हुआ रक्त उत्पन्न करने लगता है जो गाढा और काला होकर रक्तस्राव के रूप मे निकलता है। यह रक्त नीचे पैरो की तरफ जाने से

कोढ़ भी हो सकता है । ऊपर की तरफ जाने से यह जिस अग में जाकर सडेगा वहां कैन्सर उत्पन्न कर देगा ।

"The treatment of cancer is possible during its incipient stage I my-self treated patient suecesfully, especially when the tumour is not thick. Melanogogues should be given continuosly till the original state of the organ returns venesection and in the case the patient happens to be a woman, the discharge of foul matter should also be given due attention There is no better poultice than aqua solanumnigrum. And once the disease has advanced, the physician can not foresake the use of the lancet, if he wishes success"

गालेन (२०० ई० पू०) निश्चित रूप से प्राचीन पश्चिमी चिकित्सा जगत का सर्वाधिक प्रभावशाली व्यक्ति था । दर्शन शास्त्र मे जो अरस्तु का स्थान था वही चिकित्सा शास्त्र मे गालेन का था । वह हिप्पोक्रेटस के ध सिद्धान्त को मानता था और कैन्सर का कारण गन्दा खून वताता था । गालेन का कथन था कि नववृद्धियाँ काले पित्त की अधिकता से उत्पन्न होती है। जो होठ, स्तन, व जीभ आदि स्थानो पर इकठ्ठा होकर जम जाती है । गालेन की धारणा थी कि कैन्सर चू कि शरीर की एक धातु के आधिक्य से उत्पन्न होता है और चयापचय सम्बन्धी वीमारी है । अत: इसका विधिपूर्वक इलाज किया जाना चाहिये न कि स्थानीय रूप से। प्रारभ मे रेचन और घावो का शोधन किया जाना चाहिये, पूय इकठ्ठी नही होने देनी चाहिये । कैन्सर के इलाज मे दवाईयाँ सौम्य और अक्षोभकारक होनी चाहिये । अगर कैन्सर किसी ऐसे अग में है जिसको पूरी तरह से काट कर अलग किया जाना सभव है तो उच्छेदन ही कैन्सर का अन्तिम इलाज है । माँसार्बुदो के लिये गालेन ने सर्व प्रथम सार्कोमा शव्द का प्रयोग किया । उसने कैन्सर के अर्बुदो और अन्य प्रकार के सूजन, क्षत, वगेरा की अलग अलग पहचान बताई। गालेन के विचार सत्रहवीं शताव्दी तक प्रचलित रहे । सारे मध्य युग मे गालेन के सिद्धान्त प्रामाणिक माने जाते थे । मध्य युग मे ईसाई धर्म और इस्लाम दोनो मे शवच्छेद की प्रक्रिया को वर्जित कर रखा था । चिकित्सा सम्बन्धी ज्ञान आगे नहीं बढ सका । एक ही जगह स्थिर रहने से उसमे सडाध पैदा हो गयो और चिकित्सा के क्षेत्र में गालेन के वाक्य वेद वाक्यो की तरह प्रामाणिक माने जाते रहे ।

पश्चिमी युरोपीय समाज मे सन् १५०० के आसपास से पुनर्जागरण का काल प्रारभ हुआ किंतु चिकित्सा के क्षेत्र मे पुनर्जागरण काल और भी १०० साल बाद प्रारभ हुआ । यह

काल वेकन, न्यूटन, और कोपरनिकस और वेसालियस के विचार प्रकाश में आने पर प्रारभ हुआ। ज्ञान को सात वर्गो मे विभाजित किया। इसमें प्रथम त्रिवर्ग था–व्याकरण, काव्य और तर्क। और द्वितीय चतुर्वर्ग था –अकगणित, रेखागणित, नक्षत्र विज्ञान और ध्वनि शास्त्र (Acoustics)। यह दूसरा चतुर्वर्ग गणना और विश्लेषण की पद्धति पर आधारित था।

पेरासेल्स् (1493–1541 ई०) नामक रसायन शास्त्री (कीमीयागर) ने अरस्तु और गालेन के सिद्धान्तो का खडन किया और चिकित्सा मे प्रयोग सिद्धि की पद्धति को प्राथमिकता दी। पेरासेल्सस का विचार था कि कैन्सर रक्त मे खनिज लवणो की मात्रा वढ जाने से उत्पन्न होता है और किसी एक स्थान पर ये लवण केन्द्रित हो जाते है तथा वाहर निकलने का रास्ता ढूढते है। हो सकता है उसका यह प्रतिपादन हिप्पोक्रेटस से अधिक भिन्न न दिखाई दे किंतु पुनर्जागरण काल के एक प्रमुख प्रणेता वेसालियस का प्रयोगो से सिद्ध परिणामो को ही मान्यता देने का सिद्धात पेरासेल्सस के माध्यम से आगे वढा।

सत्रहवी शताव्दी मे गालेन की प्रामाणिकता समाप्त होने के साथ चिकित्सा के क्षेत्र मे अव्यवस्था फैल गयी। हर व्यक्ति अपनी अपनी सनक को सिद्धान्त वनाकर चल पडा। इस युग मे कफ रहित अर्वुदो को ट्यूमर मानकर १४ भागो मे वाटा गया।

कैन्सर का लसिका (Lymph) सिद्धांत

वैसालियस ने मानव शरीर को चीर फाडकर देखा। उनमे काला पित्त कहीं नही था। जिससे काला पित्त का प्राचीन सिद्धात खडित हो गया। शरीर मे रक्त और लसिका पाये गये। लसिका ने शारीरिक धातुओ मे काले पित्त का स्थान ले लिया। मानव शरीर रचना पर आधारित विकृति विज्ञान चिकित्सा का मुख्य अग वन गया और इस परिवर्तन के परिणाम स्वरूप लसिका सिद्धान्त का परित्याग कर दिया गया। सत्रहवी शताव्दी के फ्रेडरिक होफ मेम और उसके साथी जार्ज स्टाहल ने प्रतिपादित किया कि शरीर के तरल अश ठोस अशो मे से निरन्तर और सामजस्य पूर्ण रूप से प्रवाहित रहते है। इसी प्रवाह का नाम जीवन है। शरीर के तरल पदार्थो मे सवसे अधिक महत्वपूर्ण माने गये रक्त और लसिका। उपरोक्त दोनो विद्वानो के अनुसार–लसिका विभिन्न घनत्व मे क्षार और अम्ल के द्वारा किण्व (ferment) और सडने से कैन्सर उत्पन्न होता है। कैन्सरोत्पत्ति के लसिका सिद्धान्त को काफी मान्यता मिली। अठारहवी शताव्दी के जॉन हटर ने इसका समर्थन किया। अठारहवी और उन्नीसवी शताव्दी मे चिकित्सा के क्षेत्र मे नवीन क्राति हुई। सन् 1761 मे गियोवानी यातासता मोर्गागनी ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक (On the Sites and Causes of disease)

प्रकाशित की । जिसमे 7000 केसो के चिकित्सा सम्बन्धी रिकार्डो और शवच्छेद के परिणामो का पारस्परिक सवध प्रकाश मे आया । मोर्गागनी ने दुर्दम्य नववृद्धियो को दम्य सूजनो आदि से अलग किया । उसने फेफडे, अन्न नली, आमाशय, गुदा और गर्भाशय के कैन्सरो का भी वर्णन किया ।

इसके वाद सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना सन् 1838 मे जोहान्स म्यूलर की यह प्रस्थापना थी कि अणुवीक्षणीय विकृतिविज्ञान वीमारी को समझने का मूल आधार है । म्यूलर ने यह प्रमाणित किया कि कैन्सर घनीभूत लसिका से नही, कोशिकाओ से निर्मित होते है। लसिका सिद्धान्त का स्थान इस नये सिद्धान्त ने ग्रहण कर लिया ।

हालांकि म्यूलर ने यह प्रतिपादित किया कि कैन्सर थक्के वँधी हुई लसिका की वजाय कोशिकाओ से निर्मित होता है किन्तु उसका कथन था कि कैन्सर कोशिकाएँ सामान्य ऊतको से पैदा नही होती । उसका कथन था कि सामान्य ऊतक सरचको के वीच 2 मे एक विशेष प्रकार के जीवाणु "ब्लासटेमा" उत्पन्न होते है जो कैन्सर के कारण है । इस तरह ब्लासटेमा सिद्धान्त का जन्म हुआ ।

म्यूलर के एक शिष्य रूडोल्फ विर्चो (1821 से 1902 ई०) ने अपनी सन् 1851 मे प्रकाशित पैथोलोजी की प्रसिद्ध पुस्तक मे यह प्रतिपादित किया कि कोशिका वह मूल ईकाई है जिसमे रोगोत्पत्ति की प्रक्रिया गतिशील होती है । उसने यह भी कहा कि सारी कोशिकाएँ अन्य कोशिकाओ से उत्पन्न होती हैं। विर्चो ने ब्लासटेमा सिद्धान्त का खडन किया । उसके कथनानुसार नववृद्धियो के लिए (1) रोग के सम्भावित शिकार में सरचनात्मक या आनुवाशिक सम्भावनाएँ होनी चाहिये । (2) जीर्ण क्षोभ रवेदार ऊतक उत्पन्न करता है जो भ्रूणीय ऊतक की तरह ट्यूमर मे विकसित हो सकते है । ट्यूमर की प्रकृति क्षोभ पैदा करने वाले पदार्थ की श्रेणी और सम्भावित रोगी के शरीर के झुकाव पर निर्भर करती है ।

मेटास्टेसिस (विक्षेप) शब्द का आविष्कार सन् 1829 मे जोसेफ क्लाड रिकेमियर ने किया । जब उसने स्तन कैन्सर के रोगी के मस्तिष्क मे सैकेण्डरी ट्यूमर्स प्रमाणित किये । विर्चो ने अपनी पुस्तक सेलुलर पैथोलोजी के सन् 1863 के सस्करण मे प्रतिपादित किया कि कुछ तरह के पदार्थो के माध्यम से कैन्सर अन्य अगो मे पहुँचकर मूल ट्यूमर जैसे ही अन्य उत्पन्न कर देता है । विक्षेप का यही तरीका है ।

सर जेम्स पेगेट ने भी विर्चो के सरचनात्मक सिद्धान्त को आगे बढाया और वताया कि कैन्सर एक तरल के माध्यम से फैलता है ।

विर्चो के एक विद्यार्थी जूलियस फ्रेडरिक कोनहैम ने (1839–1884 ई०) कैन्सर की उत्पत्ति के भ्रूणीय सिद्धान्त के दौरान गलत स्थान मे स्थापित कोशिकाओ के झुण्ड से ट्यूमर उत्पन्न होते है । का प्रतिपादन किया ।

मोरिट्ज रिब्बर्ट (1855 से 1920 ई०) ने बुनियादी तौर पर भ्रूणीय सिद्धान्त का समर्थन किया पर उसका कथन था कि सभी प्रकार के ट्यूमरो की व्याख्या करने के लिए यह सिद्धान्त पर्याप्त नही है ।

सत्रहवी और अठारहवी शताब्दी मे योरोप मे कैन्सर को एक संक्रामक रोग माना जाता था । जोहान्स एड्रियास ग्रिब फिबिगर ने (1826 से 1928) ने तीन जगली चूहो के गेस्टिक कार्सीनोमा के साथ एक कीटाणु पाया और उस कीडे के जीवन का अध्ययन करने के वाद यह निष्कर्ष निकाला कि तिलचट्टा इस कीटाणु का पहला मेजवान होता है । उसने उस कीटाणु से सक्रमित तिलचट्टे प्रयोगशाला के चूहो को खिलाये । उन 62 चूहो मे से 60 दिन से अधिक जीवित रहने वाले चूहो मे से 12 के गेस्टिक कार्सीनोमा हो गया । यह पेपर 1913 मे प्रकाशित हुआ । 1926 मे फिबिगर को नोवेल पुरस्कार मिला । किन्तु यह सिद्धान्त आगे नही चला । कैन्सर सम्बन्धी रिसर्च के लिये 1926 से 1966 ई० तक नोवेल पुरस्कार प्राप्त करने वाला एक मात्र व्यक्ति फिबिगर ही था । 1966 ई० मे औपधि और शरीर विज्ञान का नोवेल पुरस्कार पीटन राउस और चार्ल्स ब्रेटन हगिन्स को सयुक्त रूप से मिला । राउस ने 1911 मे प्रमाणित किया कि मुर्गियो के सार्कोमा ट्यूमर्स को मूल ट्यूमर के कोप रहित स्राव का इन्जेक्शन सामान्य मुर्गियो मे लगाकर प्रतिरोपित किया जा सकता है । 1966 से पहले नोवेल पुरकार के लिए पीटन राउस का नाम 20 वार अभिशसित किया गया था । हगिन्स ने 1941 मे केस्ट्रैशन, एस्ट्रोजन और एण्ड्रोजन का सीरम एसिड फोस्फेट्स पर प्रभाव और पुरस्थ ग्रन्थि कैन्सर का नैदानिक क्रम प्रमाणित किया । फिबिगर के सिद्धान्त को प्रमाणो के अभाव से कोई प्रश्रय नही मिला और कैन्सर का किटाणु सिद्धान्त स्वत. खडित हो गया । 20 वी शताब्दी के पिछले करीब 50 साल मे प्रायोगिक पद्धति ने ज्यादातर पुराने सिद्धान्तो को खडित कर दिया ।

भारतीय पृष्ठभूमि

अत्यन्त खेद का विषय है कि न जाने किसी ईर्ष्या या जलन के कारण, या हीन भावना से ग्रस्त होने के कारण या पक्षपात पूर्ण विचारो के कारण जर्मनी को छोडकर अन्य सभी पाश्चात्य देशो के अधिकतर विद्वान भारत के प्राचीनतम ज्ञान विज्ञान के वारे मे या तो कुछ नही कहते या ज्ञान की किसी भी शाखा के विकास मे भारतीय योगदान को कम से कम पुराने

मानते है ।मेसोपोटेमिया, चीन, मिश्र, ग्रीस और रोम मे हुए ज्ञान विज्ञान की विभिन्न शाखाओं के कार्य और विकास को तो महत्व दिया जाता है किन्तु भारतीय योगदान को प्राय: भुला दिया जाता है । क्या इस अवहेलना का एक कारण यह भी है कि भारतीय शिक्षित जन स्वय अपने देश के ज्ञान विज्ञान के प्राचीन विकास क्रम का गहन, व्यवस्थित अध्ययन कर उसे विश्व के सन्मुख रखने मे असफल और असमर्थ रहे है और सैकडो वर्षो के विदेशी शासको द्वारा भारतीय गुलामो की ब्रेनवाशिग ने उन्हे प्रत्येक भारतीय वस्तु और विचार के बारे मे हीन भावना से भर दिया है और भारतीय स्वय भी इस दुष्प्रभाव के कारण किसी भी प्राचीन भारतीय विचार को उत्कृष्ट कोटि का और महत्वपूर्ण मानने मे अक्षम हो चुके है ।

औषधि और चिकित्सा के क्षेत्र मे भारतीय ऋषियो का सुव्यवस्थित और प्रामाणिक योगदान बहुत प्राचीनकाल से एक लम्बे अरसे तक चला है और अन्य अनेक विषयो की तरह अनेक प्राचीन सभ्यताओ ने भारतीयो से चिकित्सा और औषधि सम्बन्धी अनेक पाठ पढे है । आयुर्वेद शब्द का उत्तराश यह सकेत करता है कि यह वेद का ही एक अग है । इसे उपवेद माना जाता है । कुछ विद्वान चरणव्यूह (38) और प्रस्थान भेद (4) मे प्रयुक्त "आयुर्वेद" शब्द के आधार पर इसे ऋग्वेद का उपवेद मानते है और चरक, सुश्रुत आदि सहिताकार आयुर्वेद का सम्बन्ध अथर्ववेद से मानते है । प्राचीनतम भारतीय इतिहास का कालनिर्णय ज्योतिष के आधार पर किये जाने की प्रणाली को शनै शनै अधिकाधिक मान्यता मिल रही है । स्वामी विवेकानन्द और लोकमान्य बाल गगाधर तिलक ज्योतिष के आधार पर ऐतिहासिक घटनाओ का कालनिर्णय किये जाने के प्रवल पक्षधर थे । लोकमान्य तिलक ने कृत्तिका नक्षत्र के आधार पर शतपथ ब्राह्मण का काल 4000 वर्ष पूर्व (ई० पू० 2000 वर्ष) निर्धारित किया है । इसी प्रकार मृगशिरा तथा पुनर्वसु नक्षत्र के आधार पर ऋग्वेद का काल (ई0 पू0 4000) रखा जाता है ।

अथर्ववेद के काल के विषय मे मतभेद है । कुछ विद्वान इसे अन्तिम सहिता मानते है और कुछ इसे प्राचीनतम मानते है । क्योकि ऋग्वेद मे भी अथर्वा का अग्नि के आविष्कारक के रूप मे उल्लेख उपलब्ध है । प्रख्यात इतिहासकार बी0 के0 सरकार ने भी अथर्ववेद को ऋग्वेद जितना ही पुराना बताया है ।

"As for the Atharvaveda it seems to be a specialised collection of certain items and incidents in the folklore of the age of which the culture lore was collected in the three other samhitas."

"Normally speaking, we should hold that the material of the Atharva-veda is as old as that of the Rgveda".

B K. Sirkar : The Positive Background of Hindu Sociology.
BK I, Ch V

वेदो मे रुद्र, अग्नि, वरुण, इन्द्र मरुत आदि देव्य भिषक कहे गये है लेकिन सर्वश्रेष्ठ चिकित्सक अश्विनी कुमार बन्धु माने गये हे जिन्हे देवताओ का चिकित्सक माना गया। ऋग्वेद मे वर्णित अश्विनी कुमारो के चमत्कारो से उस युग मे भारतीय चिकित्सा विज्ञान की अत्यन्त उन्नत स्थिति का सकेत मिलता है। आथर्वण दधीचि से उन्होने मधुविद्या और प्रवर्ग्य विद्या की शिक्षा प्राप्त की। वैदिक स हित्य मे अश्विनी कुमारो द्वारा किये गये कुछ महत्वपूर्ण इलाज निम्नलिखित है – जल मे डूबे हुए को बाहर निकालकर पुन स्वस्थ करना, वृद्ध को वापिस युवा बनाना, वन्ध्यात्व दूर करना, कुष्ठ रोग से मुक्त करना, राजयक्ष्मा की सफल चिकित्सा तथा अनेक प्रकार के शल्य क्रिया के चमत्कार।

विन्टर निट्ज ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "History of Ancient Indian Literature, Vol. 1" मे यह मान्यता प्रतिपादित की है कि भगवान बुद्ध के आविर्भाव (6ठी शताब्दी ई पू) तक वैदिक वाड्मय अपना पूर्ण रूप ले चुका था।

सहिता–युग :—

वेदोत्तर काल मे प्रचलित चिकित्सकीय विचार और शल्य क्रिया प्रक्रियाये कल्प-छोटे लेखो के रूप मे थी जो सहिता युग (600 ई.पू. और पश्चात्) मे औषधि और शल्य-क्रिया के विशाल ग्रन्थो के रूप मे सकलित, सम्पादित की गई। भारतीय चिकित्सक अत्यन्त प्राचीन काल से दो खेमो मे बटे थे (1) शल्य चिकित्सक और (2) काय चिकित्सक। शल्य चिकित्सक धन्वन्तरी के नाम पर धन्वन्तरीया कहलाते थे। धन्वन्तरी देवताओ के सर्जन (शल्य चिकित्सक) माने जाते थे। अग्निवेश तन्त्र के सम्पूर्ण होने से पूर्व तक यह विभेद था। शल्य चिकित्सा उस युग से पूर्व ही एक विशेष दर्जा प्राप्त कर चुकी थी। इसके विशेषज्ञ धन्वन्तरीया कहलाते थे। औषधि विज्ञान के विशाल ग्रन्थ के लेखक अग्निवेश के कुछ रोगियो को शल्यक्रिया के लिये अभिशसित किया। अग्निवेश लिखित यह महान ग्रन्थ ही चरक सहिता कहलाया। अग्निवेश

तन्त्र (चरक सहिता) का संकलन सुश्रुत सहिता से पहले हुआ। सुश्रुत संहिता शल्य क्रिया की एक पाठ्य पुस्तक है। चरक सहिता मुख्यत: काय चिकित्सा सम्बन्धी एक ग्रन्थ है जिसमे शल्य क्रिया सम्बन्धी कुछ बुनियादी बातो का ही उल्लेख है।

सुश्रुत का कालः–

इस विषय मे बहुत अधिक मतभेद है किन्तु अधिक मान्यता इसी मत को है कि सुश्रुत का समय ई पू. पाँचवी, छठी शताब्दी था। "ट्रीटीज ओन सिफलिस" ग्रन्थ के लेखक लान्सेरोक्स सुश्रुत का काल ई० पू० चौथी शताब्दी मानते हैं। मेक्डोनेल का भी यही मत है। सुश्रुत संहिता के लेटिन मे अनुवाद करने वाले हेसलर महोदय सुश्रुत का काल इससे बहुत अधिक पहले का मानते हैं। "ओस्टियोलोजी ऑफ हिन्दूज" की भूमिका मे होएर्नल सुश्रुत काल 600 ई पू. या इससे पहले मानते हैं। उत्तर वैदिक साहित्य के "शतपथ ब्राह्मण" के लेखक (600 ई. पू) सुश्रुत के सिद्धान्तो से परिचित थे, इस तथ्य के प्रमाण उपलब्ध है। भारतीय सर्जरी के पिता सुश्रुत ने अपना ग्रन्थ करीब 2500 वर्ष पूर्व लिखा जिसमे अपने युग से 300 वर्ष पूर्व प्रस्थापित आयुर्वेद के सिद्धान्तो का सकलन, सम्पादन किया था।

यदि पाश्चात्य विद्वान कहते है कि हिप्पोक्रेटस औषधि विज्ञान के पिता थे तो हमें कहना चाहिये चरक इस विज्ञान के परदादा और सुश्रुत पितामह थे।

डा० के० एन० उडुपा, "चरक का काल ई. पू. पाँचवी शताब्दी मानते है क्योंकि उनके कथनानुसार चरक के गुरु महान चिकित्सक आत्रेय छठी शताब्दी ई पू मे तक्षशिला विश्वविद्यालय मे अध्यापन और चिकित्सा किया करते थे और सुश्रुत (6 से 5 वी शताब्दी ई पू.) वाराणसी में अध्यापन कार्य करते थे, शल्य क्रिया के विशेषज्ञ माने जाते थे और शल्य क्रिया से चिकित्सा भी करते थे। सुश्रुत ने सुश्रुत सहिता नामक महान ग्रन्थ का सकलन किया। यह ग्रन्थ अनेक रोगो और उनके इलाजो का व्यौरा देने के अलावा ऑपरेशनो के तरीके और शल्य क्रिया मे प्रयुक्त होने वाले औजारो क स्पष्ट विवरण भी प्रस्तुत करता है।" कुछ पाश्चात्य विद्वान प्राचीन भारतीय और ग्रीक औषधि विज्ञान के आपसी सम्पर्क और काल क्रम के विषय मे हास्यास्पद, असत्य विवरण प्रस्तुत करते है। विवादित प्रश्न ये है कि पाश्चात्य औषधि विज्ञान के पिता हिप्पोक्रटस का काल पहले का है या चरक और सुश्रुत का? ग्रीक विद्वानो ने शरीर विज्ञान, रोगनिदान, औषधि और चिकित्सा के पाठ भारतीयो से पढे या भारतीयो ने ग्रीक विद्वानो से सीखा? इस विषय मे चिकित्सा इतिहासकार मेजर (Major) का कथन है, "चौथी शताब्दी ई पू.

मे सिकन्दर महान की विजय के पश्चात् ग्रीक लोगो का भारतीयो के साथ सम्पर्क सूत्र कायम हो गया और भारतीय चिकित्सा विज्ञान ग्रीक परम्परा का अंग बन गया। ग्रीक चिकित्सक हिन्दू सस्कृति और चिकित्सा विज्ञान से सुपरिचित हो गये। सिकन्दर स्वय अपनी चिकित्सा के लिए भारतीय चिकित्सक रखता था।"

डाक्टर होएर्नल ने अपनी पुस्तक" "The Studies in the medicine of Ancient India" मे लिखा है कि ई० पू० 6 ठी शताब्दी के भारतीय चिकित्सा वैज्ञानिको की क्षमता और ज्ञान को देखकर आश्चर्यचकित होना पडता है। भारतीय विद्वानो के उस युग के ग्रन्थो मे शरीर रचना सम्बन्धी विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया गया है। यह ज्ञान अत्यन्त विशद और सटीक है।

जबकि भारतीय विद्वान G N. Sen ई० पू० छठी शताब्दी को प्राचीन भारत के गौरव के अवसान का युग मानते है। अपने ग्रन्थ 'प्रत्यक्ष शारीर' के प्राक्कथन मे श्री सेन कहते है, "Modern histories of India begin where the true history of Ancient India ends. The birth of Buddha or the reign of Ashoka the great mark not the beginning but the end of India's past glory."

अत्यन्त प्राचीन भारत ईसा से कई शताब्दी पूर्व भी अपने वैभव और सभ्यता के लिए विश्वविख्यात था। सिकन्दर के आक्रमण (323 ई० पू०) से भी पहले पायथागोरस (600 ई० पू०) जैसे ग्रीक विद्वानो ने भारतीय विद्यापीठो और धर्मपीठो की यात्राएँ की थी। सेल्युकस द्वारा मेगस्थनीज नाम के ग्रीक राजदूत को चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार मे 312 ई पू मे भेजा गया था। जिसने भारत मे अनेक यात्राएँ करके उन दिनो के भारत का मुँह बोलता शब्द चित्र प्रस्तुत किया है। मिश्र देश की सभ्यता भारतीय सभ्यता की ही एक अन्य देश मे रोपी गयी शाखा थी और ग्रीको ने अपना विज्ञान और सभ्यता मिश्रवासियो से प्राप्त किया।

प्रसिद्ध चिकित्सा इतिहासकार ज्यॉ फिलियोजट (Jean Filliozat) के कथनानुसार प्राचीन महान् सभ्यताओ मे से केवल तीन ने अपने शरीर विज्ञान और निदान शास्त्र का सम्पूर्ण विकास किया। यह थे ग्रीस, भारत और चीन। प्राचीन मिश्र और मेसोपोटेमिया मे भी उन्नत किस्म के चिकित्सा कार्यो का हवाला मिलता है लेकिन नवीनतम शोधो के अनुसार इन देशो मे चिकित्सा मुख्यत व्यावहारिक होती थी और शरीर की कार्यप्रणालियो और रोगो के कारणो के तर्क सगत विकास के प्रमाण उपलब्ध नही होते। चीनवासियो ने चिकित्सा की अपनी मौलिक प्रणाली

का बिकास किया। ग्रीस और भारतवासियों ने भी अपने अलग २ चिकित्सा सिद्धान्तो को प्रस्थापित किया। कुछ क्षेत्रो मे ग्रीक और भारतीय चिकित्सा प्रणालियाँ एक दूसरे के बहुत निकट है। उदाहरणार्थ हिप्पोक्रेटस के सकलन और आयुर्वेदिक ग्रन्थो मे श्वास का सिद्धान्त (ग्रीक मे न्यूमा (Pneuma) और सस्कृत मे प्राण) जो सारे शरीर मे व्याप्त है; जो वायु की प्रकृति का है और जो शरीर की सारी गतिविधियो को संचालित करता है पृथ्वी और आकाश मे होने वाली सारी गतिविधियो और परिवर्तनो का कारण ब्रह्माण्ड (Cosmic) वायुको माना जाता है। हिप्पोक्रेटस के सग्रह मे "On the Winds" भाग मे यह ग्रीक सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया है। न्यूमा के विषय मे ग्रीक चिकित्सा साहित्य मे अन्यत्र भी यही दृष्टिकोण प्रस्तुत किया गया है। भारत मे शरीर मे भ्रमणशील अनेक प्राणो का उल्लेख अथर्ववेद में है। हम यह निश्चित नही कर सकते कि इस तरह के समान सिद्धान्तो का प्रतिपादन ग्रीसवासियो और भारतीयो ने स्वतत्र रूप से अपनी अपनी मति से किया या ज्ञान के इस क्षेत्र मे इन दोनो सभ्यताओ के बीच आदान प्रदान का कोई सम्पर्क सूत्र था। जिसके माध्यम से इस प्राचीन वैदिक धारणा को ग्रीक विद्वानो ने भारत से प्राप्त किया।

समानता का दूसरा उदाहरण है आयुर्वेद शास्त्रीय त्रिदोष सिद्धान्त। प्लेटो के टाइम्यूस (Timaeus) मे उत्पत्ति का कोई सकेत दिये बगैर त्रिदोष से मिलते जुलते सिद्धान्त का प्रतिपादम किया गया है जो ग्रीक विचार परम्परा से अलग दिखाई देता है। इस मत के अनुसार तीन तत्वो के सही सहयोग पर स्वास्थ्य निर्भर करता है। ये तीन तत्व है:– न्यूमा (Pneuma) जो वायु का प्रतिनिधित्व करता है, चोल (Chole), (Gall) जो अग्नि का प्रतिनिधित्व करता है और फ्लेग्मा (Phlegma) जो जल का एक रूप है। ये तीनो तत्व सस्कृत परम्परा के त्रिदोषो, प्राण, पित्त और कफ या श्लेष्मा के समानान्तर है। ये दोष और इनके सम्बन्ध वैदिक साहित्य मे भली प्रकार ज्ञात है। इसलिये यह नही कहा जा सकता कि भारतीयो ने त्रिदोष सिद्धान्त प्लेटो से लिया होगा। बल्कि इसके विपरीत जिस युग मे ग्रीक एशियन देशो और भारत के एक भाग पर फारस का साम्राज्य था उस युग मे वैज्ञानिक सम्पर्क और आदान प्रदान की पूरी सम्भावना थी और प्लेटो के सिद्धान्तो पर आयुर्वेद का प्रभाव सर्वथा सभव है। An influence of the Ayurvedic theories on those described by Plato is quite probabale) 1 हिप्पोक्रेटस के सकलन मे ग्रीस द्वारा भारतीय दवाये और भारतीय नुस्खे उधार लिये जाने के प्रत्यक्ष सदर्भ उपलब्ध है। (We have several direct references in the Hippocratic Collection to the borrowing of some Indian drugs and Indian medical formulas in Greece)

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि पाश्चात्य विद्वानो द्वारा हिप्पोक्रेटस को चिकित्सा

का पिता कहा जाना असत्य और पक्षपात पूर्ण है । हिप्पोक्रेटस से वहुत पहले भारतीय चिकित्सा विज्ञान वहुत अधिक विकसित हो चुका था । हालाकि यह सही है कि आयुर्वेद मे कैन्सर का कोई समानार्थक शव्द नही है और अलग से कैन्सर रोग के सम्वन्ध मे विशेप विवेचन उपलव्ध नही है किन्तु "नहि सर्व विकाराणा नामतोऽस्ति ध्रुवास्थिति" रोग का नाम न होने पर भी चिकित्सा कार्य रुकता नही । व्याधि के हेतु और लक्षणो को दोप दृष्ट्या सोच कर सफलता पूर्वक आयुर्वेदिक चिकित्सा किया जाना सम्भव है ।

प्राचीन आयुर्वेदिक ग्रन्थो मे विद्रधि, अर्वुद, गुल्म, ग्रन्थि, अपची, विसर्प आदि प्रसगो मे वर्तमान कैन्सरो के लक्षणो से समानताएँ दिखाई देती है ।

चरक सहिता चिकित्सा स्थानमे विसर्प का वर्णन करते हुए कहा गया है कि–

स च सप्तविधो दोपैर्विज्ञेय: सप्तधातुक: ।

ये वातादि दोपो के कारण सात प्रकार का है । उसे सप्त धातुक माना गया है ।

रक्त, लसिका, त्वचा, मॉस ये चार दूष्य और वात, पित्त, कफ ये तीन मूलभूत दोप मिलाकर सप्तधातु के विसर्पो की उत्पत्ति मे कारण है ।

कैन्सर मे प्रसरण होने का कारण विसर्प के प्रसरण मे कितनी साम्यता है । ये इस उदाहरण से देखा जा सकता है ।

लवण, अम्ल, कटु प्रभृति, उष्ण रसो के अत्यन्त सेवन से, खट्टी दही, मस्तु (दही का जल), शुक्त (सिरका), सुरा सौवीर (निस्तुष जौ से सन्धित काजिक भेद) तथा विकृत मद्य अथवा वहुत अधिक मद्य सेवन से, उष्ण वीर्य द्रव्यो के अधिक सेवन से, राग पाडव (अचार, चटनी आदि) के वहुत प्रयोग से, पत्र शाको के अधिक खाने से, प्याज अदरक आदि हरतिकवर्ग के तथा विदाही द्रव्यों के सेवन से, कूर्चीक, किलाट, मन्दक दही (जो दही अच्छी प्रकार जमी न हो, कुछ ढीली ढाली हो) तथा शाण्डाकी प्रभृति सन्धित द्रव्यो के प्रयोग से, तिल, उड़द, कुलत्थ, तैल (तिल सरसो प्रभृति के) पिष्टक (चावलो के आटे से प्रस्तुत भोज्य), ग्राम्य आनूप तथा औदक (वारिशय) पशु पक्षियो का मास, लहसुन, प्रक्लिन्न (अत्यन्त सडे गले) द्रव्य, मछली, इनके अत्यधिक सेवन से, विरुद्ध भोजन करने से, अत्यधिक भोजन, दिन मे सोना तथा अजीर्ण पर अध्यशन (पूर्ण भुक्त भोजन अभी पचा न हो कि पुन भोजन कर लेने से, क्षत से, वध से (अति तीव्र आघात से), कस कर पट्टी वा रस्सी आदि के वॉधने से, गिरकर चोट लगने से, घाम या अग्नि आदि के अत्यधिक तापने से अथवा स्वेद आदि उष्ण कर्मो के अत्यधिक सेवन से, विप वायु व अग्नि के दोप स विसर्पो को उत्पत्ति होती है ।

त्रिगुणात्मक–प्रकृति

(जगत का मूल उपादान कारण)

हिन्दू धर्म के छ: दर्शनो मे कणाद के वैशेपिक और कपिल के साख्य दर्शन का युग ईसा से 5–6 शताब्दी पूर्व का माना जाता है। वैशेषिक दर्शन पूर्व का है क्योकि कपिल के सांख्य मे वैशेपिक दर्शन का उल्लेख मिलता है। साख्य के सूत्रो मे कई स्थानो पर प्रकृति शब्द का प्रयोग हुआ है। सत्त्व रजस और तमस् की साम्यावस्था को ही साख्य दर्शन मे प्रकृति कहा गया है।

सत्वरजस्तमसा साम्यावस्था प्रकृति; प्रकृतेर्महान, महतो हकार; अहकारात् पंच तन्मात्राण्युभयमिन्द्रियं तन्मात्रेभ्य: स्थूलभूतानि पुरूष पचविंशतिर्गण·। (साख्य 1।61)

प्रकृति ही इस जगत का मूल उपादन कारण है। प्रकृति का और कोई कारण नही ढूँढा जा सकता। प्रकृति रूपी कारण से पहला जो कार्य उत्पन्न हुआ, वह महत् है। महत् ही बुद्धि सत्व है। अवस्तु से वस्तु की उत्पत्ति नही होती। वस्तु हमेशा थी, हमेशा रहेगी। वर्तमान विज्ञान इस नियम को Law of conservation of matter यानि पदार्थ की नित्यता का कानून कहता है।

श्वेताश्वेत्तर उपनिपद मे सत्व को सफेद, रजस् को लाल और तमस् को काला माना है। इन्ही तीन गुणो पर आधारित सतोगुणी, रजोगुणी, तमोगुणी, तीन तरह की प्रवृत्तियाँ मनुष्यो की मानी जाती है। सृष्टि के अनेक स्थूल और सूक्ष्म पदार्थो और तत्त्वो का इन्ही आधारो पर त्रिगुणात्मक विवेचन किया जाता है।

डा० बृजेन्द्रसील ने सत्व का अर्थ चेतन तत्व, रजस् का अर्थ ऊर्जा (energy), और तमस् का अर्थ (matter) जाड्य या जड पदार्थ किया है।

योग दर्शन के प्रसिद्ध सूत्र "योगश्चित्तवृत्तिनिरोध." का भाष्य करते हुए व्यास ने चित्त को प्रख्याशील, प्रवृत्तिशील और स्थितिशील बताया है। उन्होने प्रख्या (truth), प्रवृत्ति (energy) और स्थिति (inertia), इन तीनो का सम्बन्ध त्रिगुण सत्व, रजस् और तमस् से किया है। जब चित्त मे केवल सत्त्व गुण होता है तो यह प्रख्याशील (सत्यनिष्ठ) होता है और जब इसमे रजोगुण तथा तमोगुण मिले रहते है; तो यह ऐश्वर्य–प्रिय और विपय–प्रिय हो जाता है और जब इसमे केवल तमोगुण होता है तो इसमे अधर्म, अज्ञान, राग और दारिद्रय आ जाता है। (व्यासभाष्य योग, 1/2)

त्रिवेणी संगम–मानव जीवन

चरक सहिता के एकादश अध्याय में मानव मात्र की तीन एषणाओं अथवा इच्छाओं का उल्लेख है। मन, बुद्धि तथा पराक्रम में सम्पन्न इह लोक तथा परलोक में हित की आकांक्षा रखने वाले पुरुष की तीन इच्छाएँ होती है।

(१) प्राणेषणा,
(२) धनेषणा,
(३) परलोकेषणा।

इन एषणाओ मे से प्राणेषणा सबसे मुख्य है। क्योकि प्राणनाश से सर्वनाश होता है। जीवित रहने से ही मनुष्य बाद को दोनो इच्छाओ की पूर्त्ति कर सकता है, मरकर नही। अत प्राण रक्षा के लिए स्वस्थ पुरुष को स्वास्थ्य के नियमो का पालन करना चाहिये तथा रूग्ण पुरुष को प्रमाद–रहित होकर स्वास्थ्य की पुन: प्राप्ति के लिए और रोग शमन के लिए सचेष्ट होना चाहिये।

शरीर रूपी मकान को धारण करने वाले तीन मुख्य स्तम्भ– (१) वात, (२) पित्त और (३) कफ। इसी प्रकार तीन उपस्तम्भ है—

(१) आहार,
(२) स्वप्न,
(३) ब्रह्मचर्य।

आहार इत्यादि द्वारा मुख्य स्तम्भ समावस्था मे रहते है, अत· इन्हे उपस्तम्भ कहा है। इन तीनो स्तम्भो के ऊपर ही देह आश्रित है। हमारा शरीर कोशिकाओ (Cells) से बना हुआ है। कार्य करने से ये कोशिकाएँ घिसती अथवा टूटतीफूटती रहती है। जब कोशिकाएँ कोई काम करती है तो उनकी जीवीज (protoplasm) मे रासायनिक क्रियाएँ होती है, इन क्रियाओ से शक्ति उत्पन्न होती है और यह शक्ति अधिकाश काय के रूप मे परिणित हुई २ हमे दिखायी देती है। यदि कोशिकाओ को उन पदार्थो की जगह जिनका शक्ति उत्पन्न करने मे व्यय होता है, नये पदार्थ न मिले और उनके टूटे–फूटे भाग पुन. ज्यो के त्यो न हो जायँ

तो इस शरीर का क्षण भर मे नष्ट हो जाना निश्चित है। इसी नाश से बचने के लिए हमे आहार करना होता है। आहार का रस, रक्त मे परिवर्तित होता है और रक्त से लसीका बनती है । इस लसीका मे से वे कोशिकाएँ अपना पोषक भाग ले लेती है, जिससे शरीर जीवित रहता है।

शरीर के पोषण के लिए स्वप्न अर्थात निद्रा भी अत्यावश्यक है। प्राचीन आचार्यो ने निद्रा के कई भेद किये है, किन्तु यहाँ तात्पर्य वैष्णवी निद्रा पद से परिभाषित शरीर का पोषण करने वाली निद्रा से ही है। निद्रा मस्तिष्क और वात सस्थान को आराम देती है और दिन के समय व्यय हुई शक्ति को पुन. एकत्रित कर देती है। केवल शरीर और स्नायु प्रणाली को ही नही, मासपेशियो को भी ऊर्जा के पुर्ननिमाण के लिए निद्रा की आवश्यकता होती है।

तृतीय उपस्तम्भ–ब्रह्मचर्य। ब्रह्मचर्य से अभिप्राय अन्तिम धातु वीर्य की रक्षा से है । ब्रह्मचर्य की पालना मन, वचन एव कर्म से होनी चाहिये । मन मे बुरे विचार आने पर वे वचन और कर्म द्वारा प्रकट हो ही जाते है ।

युक्तिपूर्वक प्रयुक्त किये हुए इन तीन उपस्तम्भो मे स्थिर हुआ हुआ शरीर आयु के सस्कार पर्यन्त बल, वर्ण एव पुष्टि से सयुक्त हुआ हुआ चला जाता है। "युक्तिपूर्वक प्रयुक्त" से अभिप्राय इन तीनो के अयोग, अतियोग तथा मिथ्यायोग के निराकरण से है । "सस्कार" से अभिप्राय गुणो के आधान से है । गुणो का आधान हित–सेवन से होता है। आहार आदि का समयोग अथवा सम्यग्योग ही हित-सेवन से होता है। आहार आदि का समयोग भी है ऐसा अथवा सम्यग्योग ही हित होता है । आयु का प्रमाण नियम (निश्चित) तथा अनियत (अनिश्चित) आयुर्वेद का मत है। जब दैव प्रबल होता है तब नियत माना जाता है। जब पौरूप या इस जन्म के कर्म प्रबल होते है तब अनियत होता है । अर्थात हम बहुत अवस्थाओ मे इस लोक मे किये गये हित एव अहित के सेवन से आयु को बढा–घटा भी सकते है । अर्थात हित सेवन से जो हम आयु को बढा लेते है अथवा कम नही होने देते यही हमारा सस्कार है।

बल तीन प्रकार का होता है–

(१) सहज,
(२) कालज,
(३) युक्तियुक्त ।

सहज बल उसे कहते है जो शरीर और मन को स्वाभाविक पूर्वजन्म मे किये हुए कर्मो के फल के अनुसार छहो धातुओ (पृथिव्यादि पच महाभूत तथा आत्मा) के सयोग होने पर माता द्वारा सेवन किये जाते हुए आहार के रस आदि के अनुसार तथा प्रकृति के अनुसार जो शरीर और मन का बल उत्पन्न होता है वह सहज कहलाता है । मन के बल का अभिप्राय उत्साह से भी है ।

कालज बल उसे कहते है जो छहो ऋतुओ के विभाग से उत्पन्न होता है तथा जो वय (उम्र) के अनुसार होता है। बच्चा, युवा तथा बूढे का जो बल है वह भी कालज कहाता है।

युक्तियुक्त बल उसे कहते है । जो आहार तथा चेष्टा-विहार (व्यायाम आदि) के सम-योग से उत्पन्न होता है । "योग" शब्द से यहाँ कई रसायन तथा वृष्य योगो का ग्रहण करते है अर्थात आहार, चेष्टा तथा रसायन आदि योगो से जो बल उत्पन्न होता है, उसे "युक्ति-कृत" कहते है ।

चरक सहिता के सूत्र स्थानम् विभाग के एकादश अध्याय मे आत्रेय मुनि ने रोगो के तीन कारण बताये है –

विषयो का–

(१) अतियोग,
(२) अयोग,
(३) मिथ्यायोग ।

चक्षु के विषय का अतियोग, अयोग और मिथ्यायोग–अत्यन्त प्रभा (चमक) वाले दृश्य (देखे जाने वाले) पदार्थो अर्थात सूर्य आदि को अत्यधिक मात्रा मे देखना रूप का अतियोग कहाता है । दृश्य पदार्थो का सर्वथा न देखना, यह रूप का अयोग है । अतिसूक्ष्म, आँखो के अत्यन्त पास के, अति दूर के, उग्र, भयावने, अद्भुत, अप्रिय, घृणित तथा विकृत, अपवित्र रूपो को देखना मिथ्यायोग है । ॥ 36 ॥

कान के विषय का अतियोग, अयोग और मिथ्यायोग–अत्यत ऊँचे मेघगर्जन, ढोल तथा ऊँचे रोने आदि के शब्दो का अत्यन्त सुनना अतियोग कहाता है । कान के विषय का अयोग–शब्दो का सर्वथा न सुनना अयोग कहाता है । कान के विषयो का मिथ्यायोग–कर्कश, कठोर, प्रिय वस्तु के नाश के सूचक, प्रिय–पुत्र आदि की मृत्युसूचक अथवा हानि सूचक, तिरस्कार सूचक–झिडकना तथा डरावने आदि शब्दो को सुनना मिथ्यायोग कहाता है । ॥ 37 ॥

नाक के विषय (गन्ध) का अतियोग, अयोग और मिथ्यायोग–अत्यन्त तीक्ष्ण (मरिच आदि की), उग्र (लैवेण्डर, इत्र आदि की) एव अभिष्यन्दि मालकगनी तथा हाचिया आदि की गन्धों का अत्यन्त सूंघना अतियोग कहाता है। सर्वथा न सूंघना अयोग कहाता है। दुर्गन्ध, अप्रिय गन्ध, अपवित्र गन्ध क्लिन्न अर्थात नमी के कारण सडान होने से उत्पन्न हुई गन्ध, विषयुक्त वायु का श्वास लेना अथवा उसकी गन्ध तथा मुर्दे की गन्ध आदि गन्धो का सूघना मिथ्यायोग कहाता है। ॥ 38 ॥

जिह्वा के विषय (रस) का अतियोग, अयोग और मिथ्यायोग–रसो का अत्यन्त स्वाद लेना अतियोग होता है। सर्वथा न लेना अयोग कहाता है। प्रकृति, करण, सयोग राशि, देश, काल, उपयोग सस्था, उपयोक्ता; ये 8 आहार विधि से विशेप (भेद) के आयतन (कारण) है। प्रकृति से अभिप्राय स्वाभाविक गुणो से है। करण–सस्कार को कहते है। दो या दो से अधिक द्रव्यो के इकठ्ठा होने को सयोग कहते है। आहार के उपयोग के नियम को उपयोग सस्था कहते है। राशि से अभिप्राय परिमाण से है। इसका दोप अधिक मात्रा मे या कम मात्रा मे होना है, अत. इसका अन्तर्भाव अतियोग और अयोग मे होता है। राशि का मिथ्यायोग नही हो सकता, अतएव मूल मे "राशिवर्ज्येपु कहा है। अभिप्राय यह है कि प्रकृति आदि आठ मे से राशि को छोडकर शेप सात आहार–विधि–विशेष के कारणो द्वारा अपथ्य रसो का लेना अथवा आहार खाना रस का मिथ्यायोग कहाता है। इसे दूसरे शब्दो मे इस प्रकार भी कह सकते है कि राशि रहित प्रकृति आदि सात के विपरीत विधि से आहार का उपयोग करना ही जिह्वा के विपय का मिथ्यायोग है। यथाप्रकृति (लघु, गुरू) विरुद्ध आहार द्रव्यो का सेवन मिथ्यायोग ही हो सकता है। समपरिमाण मे मिलाये हुए शहद और घी को सयोगाविरुद्ध कहते है। इस सयोगाविरुद्ध द्रव्य के सेवन को भी मिथ्यायोग ही कह सकते है। इसी प्रकार अन्य सस्कारविरुद्ध आदि द्रव्यो को जान लेना चाहिये। उपर्युक्त प्रकृतिबिरुद्ध आदि आहार द्रव्यो के सेवन को मिथ्यायोग मे ही ला सकते है, क्योकि अतियोग और वियोग के बिना ही ये दोषकर है। अयोग मे जहाँ विषय के सर्वथा न ग्रहण करने का समावेश होता है वहाँ अल्पमात्रा मे ग्रहण करने का भी।

॥ 39 ॥

त्वचा के विषय का अतियोग, अयोग और मिथ्यायोग–अत्यन्त शीत और अत्यन्त गर्म, स्पर्श से जाने जा सकने वाला स्नान, अभ्यग तथा उत्सादन (उबटन) आदि का अत्यधिक सेवन अतियोग कहाता है। सर्वथा न सेवन करना अथवा अल्पमात्रा मे सेवन करना अयोग कहाता है। स्नान आदि का तथा सर्दी गर्मी आदि भावो का जो स्पर्श द्वारा जाने जाते है, उन्हे यथाक्रम सेवन न करना,

ऊँची-नीची जगह बैठना आदि, चोट लगना, अपवित्र वस्तु एवं भूतो (रोगजनक कीटाणुओ) का स्पर्श होना स्पर्शनेन्द्रिय (त्वक्) का मिथ्यायोग है। यथाक्रम सेवन न करने का अभिप्राय यह है यथा-गर्मी से पीडित का सहसा शीतजल से स्नान कर लेना इत्यादि । ॥ 40 ॥

इन्द्रियो मे एक स्पर्शनेन्द्रिय (त्वक्) है। यह त्वक् इन्द्रिय सम्पूर्ण चक्षु आदि इन्द्रियो मे व्याप्त है । इस इन्द्रिय का चेत (मन) के साथ सयोग है अर्थात् त्वगिन्द्रिय के विना मन विषय को ग्रहण नही कर सकता ।

स्पर्श (स्पर्श ज्ञान) के सर्वत्र व्याप्त होने से मन को व्यापक कहते हे । वस्तुतस्तु मन अणु है। परन्तु स्पर्शनेन्द्रिय (त्वक्) के साथ सम्वन्ध होने से उसे भी व्यापक कहते हैं । व्यापक कहने से यह अभिप्राय नही कि मन का सर्वत्र स्पर्शनेन्द्रिय से एक ही काल मे सम्वन्ध रहता है । यदि एक काल मे ही सर्वत्र सम्वन्ध होता तो सम्पूर्ण इन्द्रियो से एक काल मे ही ज्ञान होकर वडी गडवडी होती । परन्तु ऐसा नही होता । मन के वस्तुत॰ अणु होने से जव चक्षु इन्द्रिय की त्वगिन्द्रिय से सम्वन्ध होता है तो देखता है । घ्राणेन्द्रिय की त्वक् से सम्वन्ध होता है तब सूँघता है इत्यादि । परन्तु सम्पूर्ण शरीर अर्थात् ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियो मे इस स्पर्शनेन्द्रिय (त्वगिन्द्रिय) के व्याप्त होने से मन का सर्वत्र (इन्द्रियो मे) सम्वन्ध होता रहता है, अत॰ उसे व्यापक कहा है । इसलिये सम्पूर्ण इन्द्रियो को व्यापक अर्थात् स्पर्शनेन्द्रिय और मन के सस्पर्श सम्वन्ध से उत्पन्न होने वाली जो अवस्था विशेष है वह अनुपशय (असात्म्य, दु खकर) दृष्टि से असात्म्येन्द्रियार्थ सयोग कहाती है । ये पाँच प्रकार का है और इनका तीन प्रकार का विकल्प है । इन्द्रियो के विषय पाँच है । अत: उनके भेद असात्म्येन्द्रियार्थ सयोग भी पाँच प्रकार के है। इनमे से प्रत्येक असात्म्येन्द्रियार्थ सयोग के अतियोग, अयोग और मिथ्यायोग, ये तीन प्रकार के भेद हैं । अवस्था विशेष या भाव विशेष से अभिप्राय अपने-अपने विषय की प्राप्ति या निवृत्ति से है । अथवा अवस्था विशेष का अभिप्राय सुख और दु ख भी हो सकता है ।

सात्म्य का जो अर्थ है वही उपशय का अर्थ है अर्थात सात्म्य और उपशय, ये पर्यायवाचक है। जो शरीर के लिए सुखकर हो, वह सात्म्य कहलाता है। सात्म्य और उपशय के पर्यायवाचक होने से असात्म्य और अनुपशय भी पर्यायवाचक है । अतएव अनुपशयेन्द्रियार्थ सयोग और असात्म्येन्द्रियार्थ सयोग का भी एक ही अभिप्राय है अर्थात् इन्द्रियो का विषयो के साथ शरीर के लिए दु खकर सयोग । ॥ 41 ॥

कर्म का लक्षण तथा उसका अतियोग, अयोग और मिथ्यायोग—वाणी, मन तथा शरीर की

प्रवृत्ति का नाम कर्म है। इनमे से वाणी और देह की प्रवृत्ति का नाम चेष्टा भी है । गौतम अक्षपाद ने भी कहा है– "प्रवृत्तिर्वाग्बुद्धिशरीरारम्भ." । इसमे बुद्धि से मन ही अभिप्रेत है । वाणी, मन और शरीर की अतिप्रवृत्ति को अतियोग कहते है। अर्थात् वाणी से अधिक बोलना वाणी का अतियोग है । मन से बहुत अधिक सोचना मन का अतियोग है और शरीर से बहुत अधिक चलना-फिरना, हाथ हिलाना, व्यायाम करना आदि शरीर का अतियोग कहाता है । वाणी, मन तथा शरीर को सर्वथा प्रवृत्त न करना अथवा थोडा करना उन उन का अयोग कहाता है अथवा समूह रूप से कर्म का अयोग कहाता है। सूचक (चुगली), झूठ, अकाल मे बोलना (अर्थात् जब जो बात कहनी चाहिये वहाँ न कह दूसरे समय कहना), कलह (विवाद, झगडा) करना, अप्रिय बोलना, असम्बद्ध बोलना, प्रतिकूल (उलटा) बोलना आदि, ये वाणी का मिथ्यायोग है। भय, शोक, क्रोध, लोभ, मोह, अहकार, ईर्ष्या, मिथ्या (झूठा) देखना–सोचना, आदि, ये मन का मिथ्यायोग है । उदीर्ण हुए २ वेगो को प्रवृत्त करने की चेष्टा करना, विषम रूप से फिसल कर गिरना, विषम (उल्टा–सीधा) चलना, विपमरूप (ऊँची जगह) से गिरना, अगो से विषम (उल्टी–सीधी) चेष्टा करनी, खुजली आदि द्वारा अग खराब हो जाना, डण्डे आदि द्वारा चोट लगना, अगो की पीडा, निश्वास प्रश्वास को रोकना, व्रत, उपवास, आतपसेवन, अग्नि सेवन आदि द्वारा शरीर को क्लेश देना प्रभृति शारीर मिथ्यायोग कहाता है । ॥ 42 ॥

सक्षेप मे अतियोग और अयोग को छोडकर वाणी, मन और शरीर से किया जाने वाला जो भी कर्म अहितकर हो, उसे मिथ्यायोग ही जाने । ॥ 43 ॥

वाचिक, मानस तथा शारीर भेद से तीन प्रकार का कर्म–जो कि प्रत्येक अतियोग, अयोग तथा मिथ्यायोग से तीन प्रकार का है–को प्रज्ञापराध कहते है । अर्थात वाचिक आदि त्रिविध कर्मो के अतियोग, अयोग और मिथ्यायोग प्रज्ञा (बुद्धि) के अपराध (यथावत् न सोचने) के कारण ही होते है, अत इन्हे "प्रज्ञापराध" के नाम से कहा जाता है ।

शीत (सर्दी), उष्ण (गर्मी) तथा वर्षा है क्रमश लक्षण जिनके ऐसे हेमन्त, ग्रीष्म तथा वर्षा रूप सवत्सर (वर्ष) का नाम काल है । शिशिर प्रावृट्, वसन्त अथवा शिशिर, शरद् और वसन्त रूप अनुक्त तीन ऋतुओ का इन्ही के अन्दर अन्तभाव हो जाता है; क्योकि सर्दी, गर्मी और वर्षा, इनके बिना ये ऋतुये नही रह सकती । सर्दी आदि तीन लक्षण हेमन्त आदि मे मुख्यतया होते है अत उन तीन का ही नाम लिया है। बीच की शिशिर आदि ऋतुओ मे सर्दी गर्मी अथवा वर्षा आदि का अश परस्पर मिश्रित रहता है। यथा शिशिर ऋतु मे शीत तथा गर्मी

की रूक्षता रहती है । प्रावृट् मे गर्मी और वर्षा, वसन्त मे शीत और गर्मी का, शरद मे गर्मी और सर्दी का मेल रहता है । अत इन अन्तराल ऋतुओ का अन्तर्भाव उन्ही के अन्दर हो जाता है ।

यदि इस हेमन्त आदि रूप काल मे उन–उन के अपने–अपने लक्षण शीत आदि अत्यधिक मात्रा मे हो तो कालातियोग कहायेगा । अर्थात यदि हेमन्त मे शीत, ग्रीष्म मे गर्मी और वर्षा मे वृष्टि अधिक हो तो इन्हे एक शब्द मे कालातियोग कहा जायेगा । परन्तु इन्हे पृथक् रूप मे हेमन्तातियोग आदि भी कह सकते है। ऐसे ही अयोग तथा मिथ्यायोग मे समझना चाहिये । जिसमे अपने लक्षण अर्थात् शीत आदि स्वल्प हो उसे कालयोग कहा जायेगा । अपने २ लक्षणो से विपरीत–विरुद्ध (उलटे) लक्षण होने पर उसे काल का मिथ्यायोग कहा जायेगा। यथा-हेमन्त मे यदि शीत अत्यधिक हो तो अतियोग, शीत कम हो तो अयोग और गर्मी हो तो मिथ्यायोग कहायेगा । ऐसा ही ग्रीष्म और वर्षा का भी समझना चाहिये । काल को ही परिणाम कहते हैं । काल ही सम्पूर्ण शुभ एव अशुभ कर्मो को धर्म तथा अधर्म रूप मे परिणत करता है, अतएव इसे परिणाम भी कहते है । ॥ 45 ॥

इस प्रकार असात्म्येन्द्रियार्थसयोग, प्रज्ञापराध और परिणाम, ये तीन, तीन प्रकार (अतियोग, अयोग, मिथ्यायोग) के भेद से भिन्न हुए हुए विकारो–रोगो के कारण होते है। अर्थ, कर्म और काल के अतियोग अयोग और मिथ्यायोग के क्रमश· ये नाम हैं। यदि अर्थ, कर्म एव काल के समयोग हो तो वे प्रकृति (धातुसाम्य–स्वास्थ्य) के कारण होते है । ॥ 46 ॥

सम्पूर्ण भाव–वस्तुओ की सत्ता या न होना योग, अयोग, अतियोग, मिथ्यायोग के विना नही दिखाई देता । यथावत् अपने स्वरूप मे रहना भाव कहाता है । अन्यथा रूप मे रहना अभाव कहाता है । यदि हम इसे शरीर पर घटाये तो समुचित रहेगा। सम्पूर्ण शारीर भावो–प्रकृति–विकृति रूप शारीरिक अवस्थाओ का रहना या न रहना योग, अयोग, अतियोग मिथ्यायोग के विना नही हो सकता । यहाँ योग से अभिप्राय समयोग से है । अर्थात् शरीर की प्रकृति का कारण समयोग है और विकृति का कारण अयोग, अतियोग और मिथ्यायोग है ।

प्रत्येक वस्तु की सम्यक् स्थिति और विनाश अपने अपने अनुसार युक्ति की अपेक्षा रखता है । जैसे–यदि हम चाहते हो कि वृक्ष की सत्ता रहे तो न कम न अधिक और काल मे जल आदि दें । यही उसकी स्थिति की युक्ति है । जल का कम या अधिक या अकाल मे देना, धूप का लगना, बिजली का गिरना आदि अभाव मे कारण है । यह युक्ति भिन्न–भिन्न पदार्थो मे

भिन्न–भिन्न होती है। यही बात शरीर की प्रकृति और विकृति मे भी होती है। यदि हम चाहते है–शरीर मे धातुसाम्य रहे तो स्वस्थवृत्तोक्त विधि (जो कि समयोग है) का पालन करे। विकृति का कारण स्वस्थवृत्तोक्त विधि का पालन न करना है। निदान, दोष तथा दूष्य की भिन्नता होने से रोगो के निवारण की युक्ति भी भिन्न भिन्न होती है। नीरोग रहने के लिए भी पुरुष की प्रकृति की भिन्नता से स्वस्थवृत्त की विधि मे भी भिन्नता होती है। ॥ 47 ॥

तीन रोग हैं–

(१) निज,
(२) आगन्तु,
(३) मानस।

निज रोग उनको कहते है जो शारीर दोष अर्थात् वात, पित्त, कफ से उत्पन्न हो। आगन्तु उनको कहते है जो भूत (Germs) विष, वायु (अथवा विषवायु), अग्नि अथवा चोट आदि से उत्पन्न हो। मानस वे है जो इच्छित वस्तु के न मिलने से अथवा अनिच्छित के मिलने से उत्पन्न हो। अर्थात् इच्छा और द्वेष से ही मानस रोग पैदा होते है। ॥ 48 ॥

मानस रोग से युक्त शरीर के होते हुए भी बुद्धिमान पुरुष को चाहिये कि वह बुद्धि से हित और अहित का अच्छी प्रकार विचार कर हितकर धर्म, अर्थ तथा काम के सेवन मे प्रयत्न करे। अहितकर धर्म से अभिप्राय अधर्म से है। ससार मे धर्म, अर्थ तथा काम इन तीन के बिना थोडा सा भी मानस सुख वा दु ख नही होता। इसलिये ही निम्न विधान का पालन करना चाहिये-यथा तद्विद्य अर्थात् आत्मज्ञानी अथवा मनोविज्ञान को जानने वाले ज्ञानवृद्ध पुरुषो की सेवा मे प्रयत्न करना चाहिये। उनसे इस विषय की शिक्षा लेनी चाहिये तथा यथावत् आत्मज्ञान, देशज्ञान, कालज्ञान, बलज्ञान तथा शक्ति के जानने मे प्रयत्न करना चाहिये। ॥ 49 ॥

धर्म, अर्थ तथा काम का विचारपूर्वक अनुष्ठान, मनोदोष की औषध को जानने वालो की सेवा तथा आत्मा, देश, काल, बल तथा शक्ति का सम्पूर्णतया अच्छी प्रकार ज्ञान, यह मानस रोगो की औषध है। ॥ 50 ॥

तीन रोगो के मार्ग है–

(१) शाखा,
(२) मर्म, अस्थिसन्धि,
(३) कोष्ठ।

शाखा–रक्त आदि धातु तथा त्वचा, इस मार्ग को शाखा शब्द से कहते है, यह रोग का बाह्यमार्ग है । यहाँ पर कई व्याख्याकार त्वचा से ही रस धातु का ग्रहण करते है । कोष्ठस्थित अथवा हृदय स्थित रस का तृतीय मार्ग कोष्ठ से ही ग्रहण होगा । ॥ 52 ॥

मर्म–वस्ति, हृदय तथा मूर्धा आदि । ये मर्म 107 होते है । मोटे-मोटे तीन मर्मो का ही यहाँ उल्लेख किया गया है–

अस्थि सन्धियो से अभिप्राय अस्थियो (हड्डियो) के जोडो से है तथा इन सन्धियो मे बधी हुई स्नायु (Ligaments) कण्डराये (स्थूल स्नायु) तथा सिरा आदि का भी इसी मे ही समावेश होता है । आदि शब्द से धमनियो का भी ग्रहण करना चाहिये । यह रोगो का मध्यम (बीच) का मार्ग है । ॥ 53 ॥

कोष्ठ–को इस तन्त्र मे महास्रोत, शरीरमध्य, महानिम्न, आम–पक्वाशय (आमाशय+पक्वाशय), इन पर्यायवाचक शब्दो से कहा गया है । यह रोगो का आभ्यन्तर (अन्दर का) मार्ग है । ॥ 54 ॥

शाखानुसारी रोग–गण्ड, पिडका, अलजी, अपची चर्मकील, अधिमास, मशक (मस्से), कुष्ठ, व्यग आदि तथा बाह्यमार्ग से उत्पन्न होने वाले विसर्प, शोथ, गुल्म, अर्श एव विद्रधि आदि रोग शाखाओ से जाते है । यहाँ "बाह्यमार्ग से उत्पन्न होने वाले" यह विशेषण देने का अभिप्राय यही है कि अन्तर्मार्ग से भी विसर्प आदि रोग उत्पन्न होते है, परन्तु उनका ग्रहण यहाँ न करना चाहिये । ॥ 55 ॥

मध्यममार्गानुसारी रोग–पक्षवध (अर्वाग), पक्षग्रह अपतानक, अर्दित, शोष, राजयक्ष्मा, अस्थिसन्धिशूल, गुदभ्रश आदि, शिरोरोग, हृद्रोग तथा वस्ति रोग आदि मध्यममार्गानुसारी रोग है । ॥ 56 ॥

कोष्ठानुसारी रोग–ज्वर, अतिसार, छर्दि (कै), अलसक, विसूचिका (हैजा), कास (खाँसी) श्वास, हिक्का (हिचकी), आनाह, उदररोग, प्लीहा (तिल्ली) आदि रोग तथा अन्तर्मार्ग से उत्पन्न होने वाले विसर्प, शोथ, गुल्म, अर्श, विद्रधि आदि रोग कोष्ठानुसारी है । ॥ 57 ॥

तीन प्रकार की औषध है–

(१) दैवव्यपाश्रय,

(२) **युक्तिव्यपाश्रय,**
(३) **सत्वावजय ।**

दैवव्यपाश्रय–मन्त्र, औषधिधारण, मणिधारण, मंगलकर्म, बल्युपहार (भूतज), होम (अग्निहोत्र, हवन), नियम (शोचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः) प्रायश्चित्त (पाप को रोकना), उपवास (अन्नत्याग, व्रत, अथवा गुणों का सहवास), स्वस्त्ययन (कल्याणकारक मार्ग अर्थात वेदोक्त कर्म), अपने से बडों एव पूज्यो को नमस्कार, तीर्थगमन आदि दैवव्यपाश्रय चिकित्सा कहाती है। यहाँ नियम के साथ यमो का पालन भी आवश्यक है। ॥ 63 ॥

धर्मशास्त्र मे भी कहा गया है कि यमों का सेवन न करते हुए केवल नियमो के पालन से मनुष्य उच्च आदर्श से गिर सकता है। "अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः" अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना) ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह; इनका नाम यम है। यह दैवव्यपाश्रयचिकित्सा प्रायशः कर्मजव्याधियो की होती है।

तन्त्रान्तर में भी कहा गया है कि यह चिकित्सा दैव (प्राक्तन कर्म) पर आश्रित है, अतः इसे दैवव्यपाश्रय कहते है।

युक्तिव्यपाश्रय चिकित्सा–आहार, विहार तथा औषध द्रव्यों के यथावत् प्रयोग से रोगों को नष्ट करना युक्तिव्यपाश्रय चिकित्सा कहाती है। यह चिकित्सा प्रायशः दोषजव्याधियो की होती है।

सत्त्वावजय (मनोविजय)–अहितकर विषयो से मन को रोकना सत्त्वावजय कहाता है। यह मानस रोगो की चिकित्सा है। मन की विजय ज्ञान विज्ञान आदि द्वारा होती है।

समाधि का अर्थ है योग। योग का अर्थ है चित्त की वृत्तियो का निरोध। योगदर्शन मे कहा भी है "योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः"। ॥ 64 ॥

शरीर सम्बन्धी दोषो अर्थात् वात, पित्त, कफ के प्रकुपित होने पर शरीर को ही आश्रय करके प्रायश. तीन प्रकार की औषध होती है–

(१) **अन्तःपरिमार्जन,**
(२) **बहिःपरिमार्जन,**
(३) **शस्त्रप्रणिधान ।**

अन्त परिमार्जन का लक्षण- जो औषध शरीर के अन्दर प्रविष्ट होकर आहार से उत्पन्न होने वाले रोगो को नष्ट करती है वह अन्त परिमार्जन कहाती है। अर्थात् सशोधन या सशमन रूप जो औषध मुख से दी जाती है उसे अन्त परिमार्जन कहते है—अन्त परिमार्जन का अर्थ है अन्दर से शुद्धि।

बहि:परिमार्जन का लक्षण—जो औषध अभ्यग, स्वेद, प्रदेह, (प्रलेप या liniments), परिषेक (fomentation आदि), उन्मर्दन (जैसे शोथ को विलीन करने के लिये अगूठे आदि से मर्दन करते है) आदि रूप मे बाहर के स्पर्श द्वारा रोगो का निराकरण करती है, वह बहि — परिमार्जन कहाती है।

शस्त्रप्रणिधान का लक्षण—छेदन (दो टुकडे करना), भेदन (चीरना), व्यधन (बीधना), दारण (फाडना), लेखन (छीलना), उत्पाटन (उखाडना), प्रच्छन (पछना), सीवन (सीना), एषण (Probing directing), क्षार प्रयोग (दाह आदि), जलौक प्रयोग (जोको का लगाना); इन्हे शस्त्रप्रणिधान कहते है। ॥ 65 ॥

रोग के उत्पन्न होने पर बुद्धिमान पुरुष को बाह्य चिकित्सा (बहि· परिमार्जन), आभ्यन्तर चिकित्सा (अन्त·परिमार्जन) अथवा शस्त्रचिकित्सा (Surgery) से सुख (आरोग्य) प्राप्त होता है। ॥ 66 ॥

इसलिये जो अपने सुख अथवा आरोग्य की आकाक्षा रखता है, उसे चाहिये कि वह रोगो से पूर्व ही (Preventive) अथवा रोगो की तरुणावस्था, (बाल्यावस्था जब तक बहुत बढा नही) मे ही औषधो से प्रतिकार करे।

स्वास्थ्य, रोगोत्पत्ति और चिकित्सा

सुश्रुत सहिता सूत्र स्थानम् के एकादश अध्याय मे भगवान धन्वन्तरी का कथन है 'वात, पित्त और श्लेष्मा ये तीनो ही शरीर की उत्पत्ति के कारण है। इन्ही अकुपित तथा नीचे, मध्य और ऊपर यथाक्रम से रहने वाले वात, पित्त और कफ से यह शरीर धारण किया जाता है। जिस तरह तीन खम्भो से मकान धारण किया जाता है, इसलिये कई आचार्य इस शरीर को त्रिस्थूण कहते है। मिथ्या आहार—विहारो से प्रकुपित हुए ये ही वातादि दोष शरीर के प्रलय (विनाश) मे कारण होते है। वात, पित्त और कफ ये तीन तथा चौथा रक्त ये चारो शरीर

की उत्पत्ति, स्थिति, (धारण या पोषण) और प्रलय (नाश) मे अविरहित (वर्तमान) रहते है या ये ही कारण है।

उपरोक्त प्रसग मे आयुर्वेद के मूलभूत सिद्धान्तों का कथन है । समूचे आयुर्वेदिक साहित्य की रचना इसी मूल आधार चिन्तन शिला के क्रमिक खण्ड–उपखण्डो और अंग–उपागो पर की गई है । यद्यपि चरक और सुश्रुत दोनो ही वात, पित्त श्लेष्मा तीन हीं दोष मानते है किन्तु शल्य प्रकरण है वहाँ सुश्रुत ने रक्त को भी दोष माना है। क्योंकि वातादि दोष भी रक्त के साथ मिलकर ही सब स्थानो मे जाते है अथवा रोगोत्पत्ति करते है। बिना रक्त के इनके द्वारा व्रण स्थान की दुष्टि, शोथ, पूय भवन और रोहण नही हो सकते ।

इसके अनन्तर वातादि दोषो के स्थानो का वर्णन है। वायु, श्रोणि और गुदा मे रहता है । श्रोणि और गुदा के ऊपर किन्तु नाभि के नीचे पक्वाशय है। पक्वाशय और आमाशय श्लेष्मा का स्थान है। जिस तरह चन्द्रमा सूर्य और वायु क्रम से विसर्प, आदान और विक्षेप इन क्रियाओ से जगत का धारण करते है, उसी तरह सोमाँश कफ, सूर्य समान पित्त तथा वायु देह का धारण करते है ।

दोषो का सचय होने से, आहार विहारादि कारणो से दोषो के प्रकुपित होने से, प्रसार से उत्पन्न परिस्थितियो को चिकित्सा के प्रथम द्वितीय और तृतीय काल मे बाँटा गया है । प्रकुपित दोष शरीर के भिन्न २ प्रदेशो मे पहुँचकर भिन्न भिन्न रोग उत्पन्न करते है, जैसे उदर मे प्रवेश करके गुल्म, विद्रधि विसूचिका, आदि वस्ति प्रदेश मे प्रविष्ठ होकर प्रमेह अश्मरि तथा मूत्र के रोग, वृषण मे वृद्धि रोग, त्वचा, मास और रक्त मे मिलकर क्षुद्र रोग, कुष्ठ और विसर्प तथा मेदो धातु मे प्रविष्ठ होकर ग्रन्थि, अपची अर्बुद, गलगण्ड, अलजी आदि रोगो को उत्पन्न करते है। अस्थि मे प्रविष्ठ होकर विद्रधि, अनुसयी आदि रोगो को उत्पन्न करते है । इस अवस्था मे जो चिकित्सा की जाती है वह चौथा क्रियाकाल है ।

अब इसके अनन्तर रोग के दर्शन या उत्पत्ति (रूप) को कहते है। शोफ, अर्बुद ग्रन्थि विद्रधि, विसर्प, प्रभृति तथा ज्वर अतिसार आदि रोगो के लक्षणो का व्यक्त हो जाना ही रोग है । उस दशा मे चिकित्सा करना पचम क्रियाकाल कहलाता है ।

अब इसके पश्चात इन शोफादिको के अवदीर्ण होकर व्रणावस्था को प्राप्त होने पर जो चिकित्सा की जाती है, वह छठा क्रियाकाल है । ज्वर अतिसार आदि का अधिक समय तक

अनुबन्ध बना रहना भी छठा क्रियाकाल है। यह भेदावस्था है। इस अवस्था मे चिकित्सा नही करने से रोग असाध्य हो जाते है।

विमर्श :.इस छठी भेदावस्था मे दोप शोफादिक की त्वचा को भेद कर बाहर निकल आते है किन्तु जहाँ ज्वरादिक सर्वांगरोगों का इस तरह भेद होना असम्भव हो जाता है, वहाँ दीर्घकालानुबन्धी (Chronic) हो जाते है।

वातादि दोषो का संचय, प्रकोप, प्रसर, स्थान सश्रय, व्यक्ति और भेद को जानता है वही यथार्थ वैद्य होता है। ॥ 36 ॥

सचयावस्था मे यदि दोपो का विनाश कर दिया जाये तो वे उत्तरगति (प्रकोपप्रसरादि) को प्राप्त नही होते है। उत्तरगति प्राप्त होने पर ये उत्तरोतर अधिक बलवान हो जाते हैं। ॥ 37 ॥

* * * * *

अथर्ववेद=ब्रह्मवेद

का महत्व

यो वै ब्रह्मवेदेषूपनीतः स सर्ववेदेषूपनीत,
यो वै ब्रह्मवेदेष्वनुपनीत स सर्ववेदेष्वनुपनीत· ॥
अन्य वेदे द्विजो यो ब्रह्मवेदमधीतुकामः स
पुनरुपनेय·। देवाश्च ऋषयच ब्रह्माणमूचु·, को
नो (स्तौ) जैष्ठ·, क उपनेता, क आचार्यः, को
ब्रह्मत्व चेति। तान् ब्रह्माऽब्रवीत् – अथर्वा
वा जेष्ठोऽथर्वोपनेताऽथर्वाचार्योऽथर्वा ब्रह्मत्व चेति ॥

–चरणव्यूह

जो ब्रह्मवेद मे उपनीत है वह सब वेदो मे उपनीत है और जो इसमे उपनीत नही है वह सभी मे अनुपनीत है। अन्य वेदो का अध्ययन करने के पश्चात् जो अथर्ववेद का अध्ययन करना चाहे उसे पुन उपनयन कराना होगा।

(अथर्ववेद को ब्रह्मवेद कहा गया है, इसी से इसका महत्व स्पष्ट है।)

इतिहास के काल खण्ड

(संक्षिप्त विवेचन)

इतिहास को प्राय: तीन कालाँशो या युगो मे बाँटा जाता है:-

(१) **आदि काल,**
(२) **मध्य काल,**
(३) **वर्तमान काल ।**

आयुर्वेद का इतिहास लिखते समय भी ज्यादातर इतिहासकार इसी रूपरेखा का सहारा लेते है । वेदिक काल और संहिता काल को समाहित करके प्रथम युग या आदि युग या उत्कर्ष काल शीर्षक प्राचीन काल । प्राचीन सीमित क्षेत्रो वाली अलग-थलग सभ्यताओ के पराभव, अपेक्षाकृत कम सभ्य, बर्बर जातियो के आक्रमण, अव्यवस्था, अशान्ति, लूटमार, युद्धो और जल्दी-जल्दी बदलने वाली राजनैतिक व्यवस्थाओ से डाँवाडोल मध्य युग या मध्य काल । कठोर धार्मिक पाबन्दियो, कट्टरपथी सकुचित चितन के विरुद्ध विद्रोह में उभरा उदार चितन; विस्तृत साहसिक जल स्थल अभियानो और नवीन यान्त्रिक आविष्कारो के सहारे विस्तृत होते ज्ञान के क्षितिज; ससार के अधिकाधिक भागो की अधिकाधिक प्रत्यक्ष जानकारी से बदलते वैचारिक आयामो से प्रारम्भ होकर वर्तमान को अपने मे समोता आधुनिक काल, वर्तमान युग या नवजागरण काल ।

इसी प्रचलित परिपाटी से युगो का विभाजन करते हुए अधिकतर आयुर्वेद के इतिहासकार वैदिक काल और सहिता काल को प्राचीन काल मे रखते है । इस काल को कुछ विद्वान सातवी आठवी ईसवी शताब्दी तक और अन्य ग्यारहवीं शताब्दी तक मानते है। इसके पश्चात पन्द्रहवी, सोलहवी और कुछ इतिहासकार तो उन्नीसवी शताब्दी तक के काल को मध्यकाल मानते है। पन्द्रहवी-सोलहवी शताब्दी के योरोपीय नवजागरण काल से वर्तमान काल तक को कुछ इतिहासकार आयुर्वेद का नवजागरण काल या वर्तमान युग मानते है ।

यान्त्रिक युग के नवीन आविष्कारो का सहारा लेकर आगे बढती नव्यचिकित्सा (ऐलोपैथी, Surgery) अपना क्षेत्र बढाकर विश्वव्यापी बनी, पूर्वी देशो मे प्रचलित आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति नव्यचिकित्सा से आमने-सामने हुई । परिणामत. सघर्ष, टकराहट और तुलनात्मक अध्ययन हुए, आदान प्रदान हुआ और कट्टर पुरातनपथी लोग चाहे वर्तमान से आँख मूँदकर अब भी अतीत मे जीने

का प्रयास करते हो, अधिकतर आयुर्वेद के विद्वान अपनी प्रस्थापनाओ और नवीन खोजो को वैज्ञानिक उपकरणो, परीक्षणो से सम्पुष्ट करवाने और नव्यचिकित्सा के प्रामाणिक तौर-तरीको को अपनाने के लिए तत्पर है। इसलिए क्या आयुर्वेद के वर्तमान युग को सशोधन काल नही कहा जा सकता ?

(१) उदय और उत्कर्प–अधिकतर हिन्दू दर्शन "एकोह वहुस्याम प्रजायाय" के आधार पर सृष्टि की उत्पत्ति सर्वशक्तिमान परमात्मा से मानते है। प्रत्येक शास्त्र और ज्ञान विज्ञान की प्रत्येक शाखा का प्रारम्भ भी ईश्वर से ही जोडा जाता है। हिन्दू शास्त्रो के अनुसार प्रजा यानि सृष्टि की रचना ब्रह्मा ने की। सुश्रुत का कथन है कि ब्रह्मा ने प्राणियो की रचना से पूर्व आयुर्वेद की रचना की, जिसमे प्रजा उत्पन्न होने पर इसका उपयोग कर सके। चरक आयुर्वेद को अनादि एव शाश्वत मानते है। क्योकि जब से आयु का प्रारम्भ हुआ और प्रजा को ज्ञान हुआ तभी से आयुर्वेद का प्रारम्भ हुआ। सभी सहिताकारो ने ब्रह्मा से आयुर्वेद का प्रारम्भ बताया है। ब्रह्मा से आयुर्वेद का ज्ञान दक्ष प्रजापति ने प्राप्त किया। प्रजापति से अश्विनी कुमारों ने और उनसे इन्द्र ने। इन्द्र ने भरद्वाज को सूत्र रूप मे आयुर्वेद का ज्ञान दिया। आत्रेय ने अपने छ शिष्यो–अग्निवेश, भेल, जतूकर्ण, पराशर, हारीत, क्षारपाणि को यह ज्ञान दिया। इन शिष्यो ने अपनी–२ सहिताएँ बनाई। इसमे अग्निवेश सहिता की रचना सर्वप्रथम हुई। किसी विषय के समस्त अग जिसमे समाहित हो, उसे सहिता कहते है। ये सहिताएँ उस समय तन्त्र के नाम से प्रसिद्ध थी। अग्निवेश की मूल रचना अग्निवेश तंत्र ही चरक द्वारा परिवर्द्धित होकर चरक सहिता के नाम से प्रसिद्ध हुई।

आचार्यो ने परम्परा से प्राप्त ज्ञान को लिपिवद्ध करके सहिताओ और अन्य ग्रन्थो की रचना की। वैदिक वागमय मे आयुर्वेद के सभी अगो के विपय उपलब्ध है, किन्तु आयुर्वेद को आगे चलकर इन आठ अगो (अष्टाँग) मे बाँटा गया है। उनके नामो का उल्लेख नही है। इससे जाहिर होता है कि अष्टाँग विभाजन वैदिक काल के बाद की बात है। चिकित्सा शास्त्र का वर्णन मुख्यत. अथर्ववेद मे है। अथर्ववेद की 9 शाखाएँ है–पेप्पलाद, तौद, मौद, शौनकीय, जाजल, जलद, ब्रह्मवेद, देवदर्श और चारणवैद्य। वर्तमान मे शौनकीय तथा पैप्पलाद केवल दो शाखाएँ ही उपलब्ध है। अथर्ववेद मे रोगी की चिकित्सा का अधिक विस्तार से वर्णन किया गया है और भेपज के द्वारा अमृततत्त्व की प्राप्ति का भी विधान है। इसीलिए आयुर्वेद का सम्बन्ध अथर्ववेद से माना जाता है। अथर्ववेद का ब्राह्मण गोपथ ब्राह्मण है। इसमे अथर्वन् और आगिरस् नाम के दो जुडवाँ भाइयो की कथा है जो अश्विनि कुमार बन्धुओ की भाँति उच्च कोटि के चिकित्सक माने जाते थे। अथर्वन मुख्यत:

दैवव्यपाश्रय चिकित्सा करते थे और आंगिरस् अगो के रस से-सम्बन्ध रखने के कारण युक्ति-व्यपाश्रय चिकित्सा करते थे । अथर्व शान्ति, पौष्टिक आदि सौम्य कर्म करते थे जबकि आगिरस् घोर कर्मो मे प्रवृत्त थे । वे सोम और अग्नितत्त्व का प्रतिनिधित्व करते थे । धनुर्वेद को ऋग्वेद का; गाँधर्ववेद को यजुर्वेद का; स्थापत्यवेद को सामवेद का और आयुर्वेद को अथर्ववेद का उपवेद माना गया है । वैदिक वाग्मय—सहिता, ब्राह्मण, उपनिषद् और वेदाग इन चार खण्डो मे विभक्त है । सहिताओ की अनेक शाखाएँ है और इन शाखाओ के विशिष्ट ब्राह्मण आरण्यक और उपनिषद् है । चरणव्यूह (38) तथा प्रस्थान भेद (4) मे आयुर्वेद शब्द का प्रयोग किया गया है और वह ऋग्वेद का उपवेद माना गया है । चरक, सुश्रुत आदि सहिताकार आयुर्वेद का सम्बन्ध अथर्ववेद से मानते है । लोकमान्य तिलक ने कृत्तिका नक्षत्र के आधार पर शतपथ ब्राह्मण का काल 4000 वर्ष पूर्व और मृगशिरा तथा पुनर्वसु नक्षत्र के आधार पर ऋग्वेद का काल 6000 वर्ष पूर्व निर्धारित किया है । ऋग्वेद मे अथर्वा का अग्नि के आविष्कारक के रूप मे निर्देश मिलता है। इस आधार पर कुछ विद्वान अथर्ववेद को ऋग्वेद से भी पुराना मानते है । कुछ विद्वान अथर्ववेद की सामग्री ऋग्वेद के समकालीन मानते है । ऋग्वेद मे रुद्र, अग्नि, वरुण, इन्द्र, मरुत व अश्विनि कुमार बन्धु देवताओ के चिकित्सक माने गये है । इनके चिकित्सा सम्बन्धी जिन चमत्कारो का ऋग्वेद मे वर्णन है उससे प्रतीत होता है कि आयुर्वेद उस समय बहुत उन्नत स्थिति मे था । ऋग्वेद मे औषधि सूक्त (10 । 47 । 1–23) मे औषधियो के स्वरूप, स्थान, वर्गीकरण तथा उनके कर्मो और प्रयोगो का उल्लेख है । युक्तिव्यपाश्रय और दैवव्यपाश्रय दोनो प्रकार की चिकित्साओ और त्रिदोष का उल्लेख भी ऋग्वेद मे मिलता है । इसके अलावा इस प्रथम वेद मे पशु चिकित्सा, सूर्य चिकित्सा, जल चिकित्सा तथा वायु चिकित्सा का भी उल्लेख है ।

यजुर्वेद मे भी कुछ औषधियो की प्रशसा और उनके द्वारा अर्श, श्लीपद, हृद्रोग, कुष्ठ आदि की चिकित्सा तथा मनुष्यो की शरीर रचना का उल्लेख है और त्रिदोष—कफ, वात, पित्त का स्पष्ट सकेत है ।

अथर्ववेद मे आयुर्वेद सम्बन्धी पर्याप्त सामग्री विस्तार से उपलब्ध है । ऋग्वेद मे आयुर्वेद सम्बन्धी जिन विषयो का सूत्र रूप मे उल्लेख है, अथर्ववेद मे उनकी विशद् व्याख्या की गई है । त्रिदोष का सिद्धान्त आयुर्वेद का मूल सिद्धान्त है । ऋग्वेद मे इस सिद्धान्त का सूक्ष्म रूप मे और अथर्ववेद मे विस्तृत रूप से विवेचन किया गया है ।

अष्टाँग

(१) कौमार भृत्य,
(२) काय चिकित्सा,
(३) शल्यापहर्तृक,
(४) शालाक्य,
(५) विषतत्र,
(६) भूततत्र,
(७) अगदतत्र और
(८) रसायनतत्र ।

(काश्यप संहिता)

चरक ने आयुर्वेद के इन आठ तत्रो के नाम निम्नलिखित रखे हैं :-

(१) काय चिकित्सा,
(२) शालाक्य,
(३) शल्यापहर्तृक,
(४) विष-गर-वैरोधिक प्रशमन,
(५) भूत विद्या,
(६) कौमार भृत्यक,
(७) रसायन और
(८) वाजीकरण।

(सूत्र 30/28)

आयुर्वेद के प्राचीन अधिकृत शास्त्रीय ग्रन्थो मे छ. ग्रन्थो को बहुत अधिक मान्यता दी गई है । इनमे से 3 अधिक महत्वपूर्ण और प्राचीन ग्रन्थो को बृहत्त्रयी कहा जाता है । ये है-

(१) **चरक,**
(२) **सुश्रुत व**
(३) **वाग्भट ।**

(१) **चरक**- आत्रेय के छ शिष्यो अग्निवेश, भेल, जतूकर्ण आदि ने अपने-अपने तत्र रचे । ऋषियो के एक सघ के समक्ष सबने अपने-अपने तत्र प्रस्तुत किये । इनमे से अग्निवेश तत्र को सर्वाधिक मान्यता मिली और यही अग्निवेश तत्र चरक और दृढबल के परिश्रम से हमे "चरक सहिता" के नाम से उपलब्ध हे । चरक सहिता मे आठ खण्ड है जिनमे से पत्येक को स्थान कहते है। ये है-

(१) सूत्र स्थान,
(२) निदान स्थान,

(३) विमान स्थान, (४) शारीर स्थान,
(५) इन्द्रिय स्थान, (६) चिकित्सा स्थान,
(७) कल्प स्थान और (८) सिद्धि स्थान।

प्रत्येक खण्ड के अत मे जो 'इतिवाक्य" आते है, उनसे स्पष्ट है कि **चरक संहिता** मूलत· अग्निवेश कृत एक तत्र था जिसका प्रति सस्करण **चरक** ने किया। कालान्तर मे ऐसा प्रतीत होता है कि **चरक सहिता** के कुछ अश खण्डित हो गये, जिनकी सपूर्ति दृढवल ने की। चिकित्सा स्थान के नवम् अध्याय से आगे के जो "इतिवाक्य" है, उनमे दृढवल का नाम भी सम्मिलित कर लिया गया है। इस प्रकार जो सहिता इस समय प्राप्त है वह अग्निवेश, चरक और दृढवल इन तीन के परिश्रम का फल है। चरक सहिता मे 8 स्थान, 120 अध्याय, तथा 25014 पक्तियाँ है।

चरक सहिता की रचना हिमालय की तलहटी मे हुई। हिमालय ही ऐन्द्री, ब्राह्मी, पयस्या, क्षीरपुष्पी, श्रावणी आदि अनेक औषधियो का भडार है। गगा और पचनद प्रदेश का भी चरक मे उल्लेख आया है। इससे स्पष्ट है कि हिमालय के निकट उत्तर भारत मे चरक सहिता की रचना हुई थी। चरक का रचनाकाल निश्चित किया जाना अत्यत कठिन है। यह 500 से 1000 साल तक की अवधि मे फैला हुआ हो सकता है। यह अवधि शतपथ ब्राह्मण के कुछ वाद से लेकर पाणिनी और बौद्ध युग से कुछ पूर्व तक फैली है। चरक सहिता के 120 अध्यायो मे से 79 के आखिर मे इति वाक्यो मे "अग्निवेशकृते तत्रे प्रतिसस्कृते" लिखा है और शेष 41 अध्यायो मे "अप्राप्ते दृढवल सपूरिते" ।इससे प्रकट है कि अग्निवेश के लिखे तत्र का प्रति सस्कार और सशोधन चरक ने किया। वाद मे किसी कारणवश चरक सहिता के कुछ अश खो गये जिनकी पूर्त्ति दृढवल ने की।

चरक से पूर्व चिकित्सा का कार्य परम्परागत तरीको से होता था। चरक ने ज्ञानपूर्वक कर्म का उपदेश दिया। चिकित्सक के लिए सैद्धान्तिक ज्ञान के आधार पर व्यावहारिक दक्षता प्राप्त करना आवश्यक वताया। चरक ने प्रमाणो मे युक्ति को स्थान दिया। निदान की वैज्ञानिक पद्धति का विकास किया और चिकित्सा को प्राकृतिक रूप दिया। चरक ने वताया कि औषध रोग को दवाने के लिए नही, वल्कि प्रकृति को सहायता देने के लिए प्रयुक्त होती है। इस प्रकार चरक की प्रणाली प्राकृतिक चिकित्सा की प्रणाली है। इसी दृष्टिकोण से चरक द्वारा लघन, सशोधन और वलाधान का विधान किया गया। आयुर्वेद को परम्परा की अन्धी गली मे निकालकर सुदृढ वैज्ञानिक आधार की वेदी पर प्रतिष्ठित करने का श्रेय चरक को है।

चरक सहिता–सूत्र स्थानम् के अध्याय 17 मे विद्रधी दो प्रकार की बताई गई है।

(१) बाह्य विद्रधि **(२) अन्तर्विद्रधि**

बाह्य विद्रधि शरीर के बाहर त्वचा, स्नायु एव मास मे पेदा होती है। यह कण्डरा सदृश तथा अतिवेदना युक्त होती है। सुश्रुत निदान अध्याय 9 मे विद्रधि की सम्प्राप्ति के लक्षण यह है —

अस्थि मे आश्रित अत्यन्त प्रवृद्ध हुए २ दोप त्वचा, रक्त, मास एव मेद को दूपित करके शनै शनै घोर शोथ (Inflammation) को पेदा कर देते है। यह शोथ वहुत जगह को घेरे गोल अथवा लम्वा होता हे, इसमे पीडा होती है। इसे बुद्धिमान चिकित्सक विद्रधि कहते हैं। इसी के साथ ही वातिक, पैत्तिक, श्लेष्मिक, सन्निपातिक, अभिघातज तथा रक्तज भेद से ६ प्रकार की विद्रधि कही है।

अन्तर्विद्रधि का निदान और सम्प्राप्ति–ठण्डे हुए व वासी भोजन के खाने से एव विदाहि, उष्ण वीर्य व अत्यन्त गरम रूक्ष, सूखे हुए द्रव्यो के अति भोजन से वीर्यादि मे तथा विरुद्ध भोजनो के खाने से, अर्जीण पर भोजन करने से, दोपकर भोजन, विपम भोजन तथा असात्म्य भोजन से, विकृत मद्य के अत्यधिक पीने से, वेगो को रोकने से, थकावट से कुटिल रूप मे व्यायाम करने से (नियमानुसार व्यायाम न करना–उलटा सीधा व्यायाम करने से), कुटिल रूप मे (टेढा होकर) सोने से, अत्यधिक भार के उठाने से, अत्यधिक चलने से, अति मैथुन से कुपित हुए २ दोप जव शरीर के अन्दर (के अवयवो मे) मास तथा रक्त मे प्रविष्ट होते है तव गम्भीर देश मे (अन्दर छिपी हुई) अति कष्टकर ग्रन्थि (गॉठ) उत्पन्न हो जाती हे। इसमे वेदना अत्यन्त तीव्र होती है।

अन्तरवयव जिनमे प्रायश विद्रधि होती है– हृदय, क्लोम (Pharynx), यकृत (जिगर, प्लीहा) (तिल्ली), कुक्षि, दोनो वृक्क (गुर्दे) नाभि दोनो वक्षण (ऊरुमूल की सधि अथवा वस्ति (Bladder, मूत्राशय) मे विद्रधि हो जाती हे।

यह विद्रधि दुष्ट हुए २ रक्त के अत्यधिक मात्रा मे होने से, शीघ्र विदाह को प्राप्त होती है। शीघ्र विदाह को प्राप्त होने के कारण ही इसे विद्रधि कहा जाता है।

वातिक विद्रधि के लक्षण–व्यध (विद्ध होने के सदृश पीडा), छेद (दो टुकडे करने के

सदृश पीडा), भ्रम (चक्कर आना), आनाह (मलवन्ध होने से मल वायु का अन्दर रूक जाना), शब्द, स्फुरण (अन्दर फुरकना), सर्पण (फैलना): इन लक्षणो से विद्रधि को वातिक जानना चाहिये।

पैत्तिक विद्रधि के लक्षण–जिस विद्रधि के होने पर तृष्णा, दाह, मोह (मूर्च्छा), मद तथा ज्वर हो जाय उसे पैत्तिक जाने।

श्लैष्मिक विद्रधि के लक्षण–जिस विद्रधि के होने पर जम्भाई, उत्क्लेश (जी मचलाना), अरूचि, स्तम्भ (जडता), शीतता हो उसे श्लैष्मिक जानना चाहिये।

सम्पूर्ण विद्रधियो का सामान्य लक्षण– सम्पूर्ण ही विद्रधियो मे शूल अत्यधिक हुआ करता है।

पच्यमान विद्रधि के लक्षण– विदाह वा पच्यमानावस्था को प्राप्त हुई २ विद्रधि मे ऐसा अनुभव होता है जैसे कोई तपाये हुए शस्त्र से मथता हो, अगारो से जलाता हो, या जेसे बहुत से विच्छू काटते हो।

प्रधान मर्म हृदय मे उत्पन्न हुई २ विद्रधि मे हृदय मे धडकन व वेदना, तमक श्वास, प्रमोह (मूर्च्छा) तथा खाँसी होती है।

नाभि मे उत्पन्न हुई विद्रधि मे हिचकी होने लगती है। सुश्रुत मे भी इसका उल्लेख है कि "नाभ्या हिक्का तथाटोप"।

बस्ति या मूत्राशय मे विद्रधि के उत्पन्न होने से मूत्र एव मल कष्ट से आता है तथा उनमे अत्यन्त दुर्गन्धि होती है। सुश्रुत मे भी उल्लेख है कि बस्ति मे उत्पन्न हुई विद्रधि मे मूत्र थोडा २ और कष्ट से आता है।

ऊर्ध्वदेश मे उत्पन्न होने वाली विद्रधि जब पककर फूट जाती है, तब उनका स्राव मुख द्वारा बाहर आता है। निम्नदेश मे होने वाली विद्रधियो के पक कर फूटने पर स्राव गुदा से बाहर आता है। नाभिदेश मे उत्पन्न होने वाली विद्रधियो का स्राव मुख और गुदा दोनो मार्गो से बाहर आता है।

चरकसहिता मे यह स्पष्ट किया गया है कि यदि विद्रधि क्लोम (Pharynx) मे हो

तो प्रायश: उसका स्राव मुख द्वारा ही बाहर आयेगा। परन्तु यदि रोगी उस स्राव को निगल जायेगा तो स्राव मुख और गुदा दोनो मार्गों से निकलेगा। इसी प्रकार यकृत, प्लीहा तथा हृदय की विद्रधियो के स्राव प्रायश: दोनो मार्गों से ही निकला करते हैं, यदि उनका सम्बन्ध अन्न प्रणाली आमाशय या आन्त्र के साथ हो गया हो। अन्यथा अन्दर ही स्राव निकल २ कर आसपास को जगह को गलाता जायेगा और ज्योही गलते २ इसका सम्बन्ध अनुसार ऊपर नीचे व दोनो ओर से बाहर निकलेगा। यदि हृद्विद्रधि का सम्बन्ध फेफडो से हो गया तो खांसी के साथ मुख से बाहर निकलेगा। यदि आमाशय के साथ हो जाये तो वमन द्वारा मुख से और मल के साथ मिश्रित होकर गुदा से बाहर आयेगा। इसी प्रकार दूसरो को भी जान लेना चाहिये। जो नाभि से नीचे छोटी आँतो मे व सम्पूर्ण बडी आँतो मे कही भी विद्रधि होगी तो गुदा से स्राव बाहर आयेगा। वृक्क की विद्रधि मे उसका स्राव प्रायश: मूत्रमार्ग द्वारा ही बाहर आयेगा। इसी प्रकार बस्ति मे अन्दर उत्पन्न हुई २ का भी मूत्रमार्ग से ही प्रायश स्राव बाहर आयेगा। वक्षणदेश मे उत्पन्न हुई विद्रधि फूटने पर वही स्राव निकलने लगेगा अथवा आंतो मे सम्बन्ध होने पर गुदा से व शुक्रमार्ग से सम्बन्ध होने पर मूत्रमार्ग से स्राव बाहर आयेगा।

इन विद्रधियो मे से हृदय, नाभि एव वस्ति मे उत्पन्न हुई विद्रधिया यदि पक जायँ और सान्निपातिक (त्रिदोपज) विद्रधि (चाहे पके या न पके) मृत्यु का कारण होती है।

हृदय आदि मर्मो से चाहे एकदोषज विद्रधि हो यासान्निपातिक वह पकने पर मृत्यु का कारण होती ही है। परन्तु सान्निपातिक विद्रधि चाहे कही पर भी मर्मो मे या अन्यत्र हो वह पके या न पके असाध्य होती है। अवशिष्ट विद्रधियाँ कुशल वा शीघ्र प्रतिकार करने वाले चिकित्सक के पास पहुँचकर शान्त हो जाती है। अर्थात् यदि कुशल वैद्य से शीघ्र ही चिकित्सा करा ली जाये तो अवशिष्ट विद्रधियाँ शान्त हो जाती है। इस सहिता के अनुसार हृदय आदि मर्मो मे उत्पन्न हुई विद्रधियो को (सान्निपातिक से अतिरिक्त) पकने न दिया जाये व पकने से पूर्व ही चिकित्सा से शान्त कर लिया जाये तो रोगी मृत्युमुख से बच सकता है। इसी प्रकार क्लोम, वक्षण, यकृत आदि मे उत्पन्न हुई विद्रधियाँ (सान्निपातिक से अतिरिक्त) पकी हो या न पकी हो कुशल वैद्य की चिकित्सा से साध्य होती है।

सुश्रुत मे विद्रधि की साध्यासाध्यता के सम्बन्ध मे उल्लेख है कि जिन मे विद्रधियो का स्राव अधोमार्ग से होता है। वह पुरुप जीता है और ऊर्ध्वमार्ग से स्राव हो तो जीवित नही रहता। हृदय, नाभि एव वस्ति को छोडकर शेष अन्तरवयवो मे उत्पन्न होने वाली विद्रधियाँ

यदि वही बाहर त्वचा मे फूट जायँ तो कदाचित् पुरुष जीता रह सकता है, परन्तु यदि अन्दर ही फूट जायँ तो अवश्य मृत्यु होती है । इससे यह भी ज्ञात हो गया कि यदि कुशल शस्त्र चिकित्सक शस्त्रकर्म द्वारा अन्तर्विद्रधि का मुख (विस्रावण नली, (Drainage tube आदि लगाकर) बाहर खोल दे तो रोगी मृत्युमुख से बच सकता है । बाहर फूटने से चिकित्सा मे अत्यत सुगमता हो जाती है । भोज ने तो कहा है कि मर्म मे उत्पन्न हुई विद्रधि चाहे पक्व हो या आम, असाध्य होती है । इसी प्रकार जहाँ कही उत्पन्न हुई सान्निपातिक विद्रधि भी । नाभि मे उत्पन्न पक्व विद्रधि असाध्य होती है । त्वचा मे (बाह्य विद्रधि का उपलक्षण), नाभि से नीचे या मर्म के समीप मे उत्पन्न हुई पक्व वा अपक्व विद्रधि असाध्य होती है । नाभि से ऊपर उत्पन्न हुई विद्रधि असाध्य होती है ।

इसीलिये शस्त्र, साप विजली एव अग्नि के तुल्य विद्रधि को जो देर की पैदा हुई न हो स्नेह, स्वेद एव विरेचन द्वारा तथा सर्वथा गुल्म की तरह शीघ्र ही चिकित्सा करे। शस्त्र आदि चार दृप्टातो के देने का क्रमश अभिप्राय यही है कि विद्रधि मर्मभेदी संज्ञालोप करने वाली, शीघ्र मृत्युमुख मे पहुँचाने वाली तथा अत्यन्त दाहकर होती है।

ग्रन्थि

ग्रन्थि–देह के किसी एक देश मे वात आदि के कारण अपने २ लक्षणो से युक्त ग्रन्थि हो जाती है । यदि वातज ग्रन्थि होगी तो वात के लक्षण होगे । यदि पित्त की हो तो पित्त के और यदि श्लेष्मिक होगी तो कफ के लक्षण होते है, वात, ग्रन्थि का लक्षण माधवनिदान मे इस पकार है कि वातज ग्रन्थि मे नाना प्रकार की वेदनाये होती है, वर्ण काला होता है। स्पर्श मे मृदु और बहुत जगह घेरे हुए होती है। यदि इस ग्रन्थि का भेदन हो तो इसमे से पतला स्वच्छ स्राव निकलता है ।

पित्तज ग्रन्थि का लक्षण–सुश्रुत निदान अध्याय 11 में यह उल्लेख है कि पैत्तिक ग्रन्थि मे अत्यधिक दाह, जलन व वेदना होती है। यह पक भी जाती है । यह वर्ण मे लाल-पीली होती है और भेदन होने पर निकलने वाला स्राव अत्यन्त उष्ण होता है ।

कफ ग्रन्थि का लक्षण–सुश्रुत निदान अध्याय 11 मे यह है कि श्लैष्मिक ग्रन्थि शीतल तथा देह के समान वर्णवाली होती है । इसमे वेदना कम होती है । कण्डू अधिक होती है । स्पर्श

मे पाषाणवत् कठिन होती है। यह बहुत धीमे २ बढती है और भेदन होने पर जो पूयस्राव होता है वह श्वेत और घना होता हे।

जो ग्रन्थि सिराओ से होतो हे उसमे स्फुरण (Pulsation) होता है। यह स्फुरण कम्पन रक्त की गति के कारण हुआ करता है। सुश्रुत निदान अध्याय 11 मे सिराज ग्रन्थि के निम्नोक्त लक्षण कहे हे–

अपनी शक्ति से अधिक व्यायाम के कार्य करने पर कुपित वायु सिरा जाल मे व्याप्त हो उसे सकुचित सपीडित और विशुष्क करके निर्वल व्यक्ति मे शीघ्र ही गोलाकार ग्रन्थि को उत्पन्न करती है। यदि यह सिराज ग्रन्थि वेदनायुक्त और चल हो तो कष्टसाध्य है। यदि यही वेदनारहित व अचल भी हो परन्तु बहुत जगह को घेरे हो या मर्मदेश मे हो तो असाध्य ही जाननी चाहिये।

मासज ग्रन्थि–मास मे उत्पन्न ग्रन्थि महान् होती हे। तन्त्रान्तर मे कहा है कि मासरक्तज ग्रन्थि मे अर्वुद के लक्षणो के समान ही लक्षण होते है। अर्वुद गोल स्थिर अत्यन्त अल्प वेदना वाला व वेदनारहित महान् महामूल और देर से बढने वाला होता हे।

मेदोज ग्रन्थि–मेदोज ग्रन्थि अत्यधिक स्निग्ध और चल होती है। सुश्रुत निदान के अध्याय 11 मे कहा है कि मेदोज ग्रन्थि देह की मेद की वृद्धि और क्षय के साथ घटती बढती है। स्निग्ध, कण्डूयुक्त, महान् और अल्पवेदना युक्त होती है। भेदन होने पर इसमे तिल, कल्क व घी के समान मेद निकलता है।

असाध्य ग्रन्थि–कुक्षि, उदर, गला तथा अन्य मर्मदेश मे आश्रित ग्रन्थि असाध्य है तथा च ग्रन्थि यदि कुक्षि आदि देश मे न भी उत्पन्न हुई हो परन्तु स्थूल (मोटी) और खर हो तो उसे भी असाध्य ही जाने। वालक वृद्ध वा निर्वल पुरुषो को उत्पन्न हुई ग्रन्थियाँ असाध्य होती हैं।

अर्वुद चिकित्सा–यत ग्रन्थि और अर्वुदो के देश (उत्पत्ति स्थान) हेतु लक्षण दोष और दूष्य (रक्त, मास, मेद) प्रायश समान होते है, अत विधानज्ञ वैद्य ग्रन्थि चिकित्सा के अनुसार ही अर्वुदो की चिकित्सा करे।

अलजी–जो ताम्रवर्ण की और शूल युक्त पिडका होती है उसे अलजी कहते है। इसके अग्रभाग से स्राव निकला करता है।

विसर्प

चरक संहिता के चिकिस्सित स्थान के 21 वे अध्याय मे विसर्प चिकित्सा की व्याख्या की गई है। विसर्प को एक दारुण रोग बताया गया है जो प्राणियो के शरीर मे सर्पविष के समान शरीर के एक हिस्से से दूसरे हिस्से मे फैलता है। विसर्प को शीघ्रकारी (शीघ्र मृत्यु का कारण) बताया गया है और कहा गया है कि तत्काल चिकित्सा न होने पर विसर्प का रोगी काल कवलित हो जाता है। विसर्प का दूसरा नाम परिसर्प है। विविध प्रकार से सर्पण करने के कारण विसर्प और चारो और सर्पण करने के कारण उसे परिसर्प कहा जाता है। विसर्प सात प्रकार का होता है।

१. वातिक,
२. पैत्तिक,
३. कफज,
४. सान्निपातिक,
५. वात, पित्त से आग्नेय नामक विसर्प
६. कफ वात से ग्रन्थि विसर्प और
७ पित्त कफ से घोर कर्दभक नामक विसर्प।

सात धातु–रक्त, लसीका (Lymph), त्वचा, मास, ये चार दूष्य और वात, पित्त, कफ ये तीन मूलभूत दोष मिलाकर सात धातु विसर्पो की उत्पत्ति मे कारण है।

कुष्ठ मे भी यही सात धातु होते है किन्तु कुष्ठ मे दोष, विसर्पणशील तथा इतने शीघ्रकारी एव इतने रक्त, पित्त प्रबल नही होते।

अहितभोजी पुरुष मे मिश्रित निदानो से कुपित हुए वातादि दोष रक्तादि (लसीका, त्वचा, मास) दूष्यो को दूषित करके विसर्पण करते है–विसर्प रोग को उत्पन्न करते है। आश्रय अथवा आश्रित की भिन्नता से विसर्प तीन प्रकार के होते है।

(१) बाहरआश्रित,
(२) अन्तराश्रित और
(३) उभयाश्रित, अर्थात बाहर और अन्दर दोनो देशो मे आश्रित।

वहिराश्रित से अन्तराश्रित अधिक बलवान होता है और उभयाश्रित इन दोनो मे भी अधिक।

जो विसर्प वहिर्मार्ग मे आश्रित होता है वह साध्य है। जो वाहर और अन्दर दोनो मार्गो मे आश्रित होता है वह दारुण एव असाध्य है, जो केवल अन्तर्मार्ग मे आश्रित होता है उसे अतिकष्ट साध्य जानना चाहिये।

अन्तराश्रय विसर्प मे दोप अन्दर ही कुपित होकर अन्दर विसर्पण करते है। वाहर प्रकुपित दोष वाहर त्वचा आदि पर विसर्पण करते है। जव दोष वाहर अन्तर दोनो स्थानो पर आश्रित होते है तव सर्वत्र विसर्प होता है।

अन्तर्मार्गाश्रित विसर्प के लक्षण-मर्मपीडा, सम्मोह (मूर्च्छा), श्वास और आहार आदि के मार्गो वा स्रोतो का विघट्टन अर्थात रुद्ध होकर कष्ट होना, अत्यधिक प्यास का लगना (प्यास के अतियोग से जो मुख, तालू तथा क्लोम शोप आदि अन्य उपद्रव होते है उन सवसे युक्त) और मल, वात, मूत्र आदि के वेगो का विषम रूप से प्रवृत्त होना (यथावत् प्रवृत्त न होना) तथा अग्नि के वल अथवा अग्नि और वल को क्षीणता होना, इन लक्षणो से अन्तराश्रित विसर्प ज ना जाता है।

वहिर्मार्गाश्रित विसर्प के लक्षण-इससे विपरीत वाह्य विसर्प मे ये लक्षण नही होते। उसे दोप के अनुसार अपने अपने अन्य लक्षणो से पहिचाना जाता है।

विसर्प की असाध्यता-जिस विसर्प मे अपने सव लक्षण उपस्थित हो, जिसका कारण अत्यन्त वलवान हो और जिसमे अत्यन्त कष्टकर उपद्रव हो गये हो, और जो हृदय आदि मर्म तक पहुँच गया हो वह मृत्यु का कारण होता है।

ग्रन्थि विसर्प की सम्प्राप्ति और लक्षण-स्थिर, गुरु, कठिन, मधुर, शीतल तथा स्निग्ध अन्नपान के सेवन से, अभिष्यन्दी भोजन से, व्यायाम वा कोई परिश्रम का कार्य न करने से, तथा प्रतिकर्म (चिकित्सा) न कराने से अथवा उचितकाल मे पचकर्म विशेषत कफनाशक वमन और वायुनाशक वस्ति आदि का प्रयोग न करने से कफ और वायु प्रकुपित हो जाते है। वे दुष्ट होकर प्रवृद्ध हुए अति वलवान दोनो दोप रक्त आदि दूष्यो को दूषित करके विसर्प को उत्पन्न करते है।

कफ द्वारा वायु के मार्ग के रुक जाने पर वह वायु और भी अधिक प्रवल होकर उसी कफ को अनेकधा विदीर्ण करके कफाशय (विशेषत छाती) मे क्रमश ग्रन्थियो की माला को प्रकट करता है। ये ग्रन्थियाँ देर से एव कोई २ ही पकती है और कष्टसाध्य होती है।

अथवा जिसमे रक्त अत्यन्त प्रवृद्ध होता है उसके रक्त को दूषित करके वातकफ दोष, सिरा, स्नायु, मांस एव त्वचा मे आश्रित ग्रन्थियो की माला को उत्पन्न करते है। इनमे वेदना अत्यन्त तीव्र होती है। ये ग्रन्थियाँ छोटी बडी लम्बी वा गोल दोनो प्रकार की हो सकती है। इनका वर्ण लाल होता है।

ग्रन्थिविसर्प के उपद्रव–इन ग्रन्थियो के उपताप से ज्वर, अतीसार, कास, हिक्का, श्वास, शोष, प्रमेह, विवर्णता, अरुचि, अपचन कै, मूर्च्छा, अगभग (अगो का टूटना), निद्रा, किसी कार्य मे मन न लगना, शिथिलता, ये उपद्रव हो जाते है। इन उपद्रवो से युक्त रोगी की कोई चिकित्सा नही हो सकती, वह असाध्य हो जाता है।

सान्निपातिक विसर्प–सान्निपातज विसर्प सब उक्त निदानो से उत्पन्न, सब, (उक्त तीनो दोषो) के लक्षणो से युक्त, सर्वागव्यापी, सब धातुओ मे अनुसरण करने वाला, शीघ्रकारी तथा महात्ययकारी (मृत्युकर) होता है। इसे असाध्य जानना चाहिये।

चरक–चिकित्सित स्थान अध्याय 11 मे विसर्प की चिकित्सा मे लघन, वमन, तिक्तरस द्रव्य वा औषध आदि का सेवन, प्रलेप, विरेचन, क्वाथ पिलाना, वमन कराना, शान्ति के लिए अनेक प्रकार की पेय औषधियाँ पिलाना आदि का उल्लेख करने के पश्चात् रोग निवृत्ति के लिए पथ्य–अन्नपान आदि का उपदेश करने के पश्चात् भी उक्त विविध प्रकार की सिद्ध क्रियाओ से प्रवल, स्थिर तथा पत्थर के सदृश कठोर ग्रन्थि शान्त न हो तो उसे क्षार से, शर से अथवा लोह निर्मित अन्य शस्त्र से दाह करना हितकर बताया गया है। शर वा अन्य लोहमय शस्त्र को आग मे तपाकर ग्रन्थि पर दाह किया जाता है। अथवा पकाने वाले लेप आदि से ग्रन्थि को पकाकर शस्त्र से पाटन कर बाहर निकाल देना चाहिये। चरक के पश्चात् के पुरातन आयुर्वेद ग्रन्थो मे भी वमन, विरेचन आदि क्रियाओ, प्रलेप, औषधि, पथ्य अनुपान आदि के अलावा विसर्प, ग्रन्थि आदि की चिकित्सा मे प्रदाहन और शल्य क्रिया के भेदानुभेद सहित अनेक विवरण है।

❋ सुश्रुत ❋

आयुर्वेदिक चिकित्सा के सम्बन्ध मे उपलव्ध प्राचीनतम ग्रन्थो मे चरक सहिता और सुश्रुत सहिता मुख्य है। चरक का विपय मुख्यत काय चिकित्सा और सुश्रुत का शल्य चिकित्सा है। चरक और सुश्रुत के समय मे कितना अन्तर था इसका निर्धारण कठिन है। एक तरफ दोनो ग्रन्थो के कुछ प्रसगो के आधार

पर कुछ विद्वान इन्हे ब्राह्मण ग्रन्थो के समकालीन वैदिक युग के मानते है। दूसरी ओर सुश्रुत के कुछ प्रसगो के आधार पर इसे बौद्ध युग और वासुदेव धर्म के युग का माना जाता है। कहा जाता है कि सुश्रुत दो थे– वृद्ध सुश्रुत और सुश्रुत। सम्भव है काशिराज दिवोदास का शिष्य वृद्ध सुश्रुत था। जिसने मूल ग्रन्थ की रचना की और कालान्तर मे (द्वितीय) सुश्रुत ने उसे परिवर्द्धित परिमार्जित कर नवीन रूप दिया। यह भी कहा जाता है कि सुश्रुत सहिता का एक और प्रतिसस्कार नागार्जुन द्वारा किया गया था। इस प्रकार सुश्रत सहिता की रचना के भी अनेक स्तर है किन्तु ग्रन्थ के विपय विभाजन, अध्याय रचना आदि मे चरक सहिता के साथ विचित्र साम्य है—

सूत्र स्थान मे	46 अध्याय
निदान स्थान मे	16 अध्याय
शारीर स्थान मे	10 अध्याय
चिकित्सा स्थान मे	40 अध्याय
और कल्प स्थान मे	8 अध्याय
कुल	120 अध्याय

चरक सहिता मे भी इतने ही अध्याय है। प्राय प्राचीन सहिताओ मे विभाजन का यही क्रम है। प्रतीत होता है कि सुश्रुत सहिता मे उत्तर तत्र वाद मे जोडा गया है जिसमे 66 अध्याय है।

उत्तरतन्त्र किसने जोडा इसका प्रामाणिक निर्णय करना कठिन है। सम्भवत. नागार्जुन नाम के आचार्य ने यह कार्य किया। वाग्भट ने अपनी रचना मे उत्तरतत्र सहित सुश्रुत सहिता का अनुसरण किया है। अरवी भाषा मे सुश्रुत सहिता का जो अनुवाद हुआ उसमे भी उत्तर तत्र सम्मिलित है। ऐसा प्रतीत होता है कि मूल सुश्रुत शल्य प्रधान थी जिसे प्रतिसस्कर्ताओ ने अन्य अग सम्मिलित करके अष्टॉग पूर्ण बना दिया। सुश्रुत सहिता से उस युग मे शल्य तत्र (Surgery) की समुन्नत स्थिति का पता चलता है। इसमे यन्त्र, शस्त्रो और शस्त्र कर्मो की विधियो का विस्तार से वर्णन है। अश्मरी, मूढगर्भ, अर्श आदि मे शस्त्र कर्म मूत्रवृद्धि और दकोदर मे वेधन कर जल निकालने, शस्त्र कर्म के वाद अन्त्रो के सीवन और शल्य कर्म के अतिरिक्त क्षार, अग्नि, जलौका के विस्तृत वर्णन है। इस ग्रन्थ का सबसे पुराना अनुवाद अरवी भाषा मे उपलब्ध है जो नौवी शताब्दी का है। सूत्र स्थान के 12 वे अध्याय मे अग्निकर्म विधि

का विस्तृत विवरण है । निदान स्थान के नवम् अध्याय मे विद्रधि के भेद और लक्षण दिये गये है । दशम् अध्याय मे विसर्प और एकादश अध्याय मे ग्रन्थि, अपची व अर्बुद के लक्षण, सम्प्राप्ति, निदान बताये गये है । चतुर्दश अध्याय मे त्वक्पाक, शोणातिर्बुद, मासार्बुद और विद्रधि के लक्षण बताये गये है । चिकित्सा स्थान के प्रथम अध्याय मे द्विव्रणीय चिकित्सा दी गई है । इसमे वर्णित अनेक व्रण, कैन्सर के व्रणो से विचित्र साम्य रखते है । सत्रहवे अध्याय मे विसर्प की चिकित्सा दी गई है । ऐलोपैथी मे व्रण दो प्रकार के बताये गये है—नवीन (Acute) और दीर्घस्थायी (Chronic) । सार्कोमा और कार्सीनोमा दीर्घस्थायी व्रणो मे सम्मिलित है । हालाँकि विभाजन का तरीका भिन्न है किन्तु उत्पादक हेतुओ के बारे मे दोनो चिकित्सा पद्धतियाँ एक ही निर्णय पर पहुँचती है ।

वर्तमान युग के आयुर्वेदिक लेखको, विद्वानो द्वारा कैन्सर के लिए कर्कटार्बुद शब्द का प्रयोग किया जाता है । चिकित्सा शास्त्र के पुरातन प्रामाणिक ग्रन्थो मे सर्वप्रथम कर्कटक शब्द का प्रयोग सुश्रुत सहिता निदान स्थान के 15 वे अध्याय मे भग्न निदान मे जहाँ अस्थि भग्न (Fracture) के विभेदो का वर्णन किया गया है, वहाँ श्लोक 10 मे **"भग्न ग्रन्थिरिवोन्नत कर्कटक"** =ग्रन्थि के समान उन्नत जो हो उसे कर्कटभग्न कहते है । इस अर्थ मे कर्कट शब्द का प्रयोग किया गया है । सुश्रुत के कल्पस्थान अध्याय 2 मे विषो के विभेदो मे कन्द विषो के लक्षणो मे **"कर्कटनोत्पतत्यूर्ध्व हसन् दन्तान् दशव्यपि"**=कर्कटक विष के प्रभाव मे आकर मनुष्य ऊपर की ओर उछलता तथा कूदता है और हँसता हुआ दाँतो को काटता है ।

कैन्सर एक रोग का नाम नही बल्कि रोगो के समूह का नाम है । शरीर के बाहर भीतर किसी भी अग मे कैन्सर हो सकता है। जिस २ अग या प्रणाली विशेष जैसे मुखगह्वर, त्वचा, रक्त मे कैन्सर होता है । तद्तद् स्थान भेद से इसके लक्षण, प्रकार व मोटे २ विभेदो का वर्णन वर्तमान और पुरातन ग्रन्थो मे बडे विशद् रूप मे उपलब्ध है । नव्य चिकित्सा के विद्वान मोटे तौर पर कैन्सर को 100 से अधिक रोगो का एक समूह मानते है । आयुर्वेद के प्राचीन प्रमाणिक ग्रन्थो मे भी लाक्षणिक दृष्टि से बडे सूक्ष्म विभेद किये गये है । भिन्न २ अगो मे होने वाले कैन्सरो के भेदो और लक्षणो को आयुर्वेदिक तथा ऐलोपैथिक विवेचना मे विचित्र साम्य है। उदाहरणार्थ –

अष्ठीला, प्रत्यष्ठीला=Cancer of the Rectum or Prostate

वर्तमान चिकित्सक पीडिका से भी कैन्सर की उत्पत्ति की सभावना मानते है। सुश्रुत भी प्रमेह जन्य पीडिकाओ से दसवाँ भेद विद्रधिका को असाध्य मानते है । आन्तरिक विद्रधियो के

वर्णन मे (1) वस्ति विद्रधि, (2) वक्षरण विद्रधि, (3) नाभि व कुक्षि विद्रधि, (4) दक्षिण वक्षरण विद्रधि (5) वृक्क विद्रधि, (6) यकृद्विद्रधि, (7) प्लीह विद्रधि, (8) गुद विद्रधि, (9) हृदय विद्रधि और (10) क्लोम विद्रधि। शास्त्र का निर्देश है कि विज्ञवैद्य को चिकित्सा प्रारम्भ करने से पहले यह निदान कर लेना चाहिये कि यह विद्रधि पकने वाली प्रकृति की है या न पकने वाली। न पकने वाली प्रकृति की विद्रधि को चाकू लगाना रोगी की मृत्यु को आमत्रण देना है। पकने वाली विद्रधि को पकाने के भी विस्तृत निर्देश उपलब्ध हैं। यही सकेत ग्रन्थियो (Cyst) के लिए है। ग्रन्थि को परिभाषित करते हुए बताया गया है कि "ग्रन्थि एक छोटी, गोल, परिमित आकार की द्रवगर्भ गाठ प्रतीत होती है तथा चारो ओर कोष होता है। चरक मे उस पर शस्त्र से चीरा लगाकर कोष सहित निकालना लिखा है। लेकिन मर्म-स्थान की ग्रन्थि पर शस्त्र प्रयोग करने से प्राणान्त हो सकता है। ये ग्रन्थियाँ भी वातज, पित्तज, कफज, मेदोज, शिराज और मास ग्रन्थि, रक्त ग्रन्थि, अस्थि ग्रन्थि और व्रण ग्रन्थि शीर्षको के अन्तर्गत बाँटी गयी है। जबकि अष्टॉग हृदय मे कण्ठ, मन्या, अक्ष, कक्षा, वक्षरण की ग्रन्थियो का भी विकृत होना लिखा है और भेद बताते हुए हन्वस्थि ग्रन्थि, कक्षा ग्रन्थि, अक्षक ग्रन्थि, बाहुसधि ग्रन्थियो, मन्या ग्रन्थियो, गल ग्रन्थियो व वक्षरण ग्रन्थियो के भेदो का विस्तार से वर्णन है। इसी तरह शरीरमेजो सात धातुएँ है सारे अर्बुद उन्ही मे से बनने से तदनुसार उनका नामकरण किया गया है। ये निम्नलिखित है —

(1) श्लेष्मार्बुद = Myxoma
(2) त्वगङ्कुरार्बुद = Papilloma
(3) मेदोर्बुद = Lipoma
(4) अस्थ्यर्बुद = Osteoma
(5) तरूणास्थ्यर्बुद = Chondroma
(6) दन्तार्बुद = Odontoma
(7) मज्जार्बुद = Myeloma
(8) नाड्यर्बुद = Neuroma
(9) मासार्बुद = Myoma

सुश्रुत द्वारा उल्लिखित निम्नलिखित व्याधियो के लक्षणो और विभेदो में भी वर्तमान कैन्सरो से विचित्र साम्य दिखाई देता है। सुश्रुत के क्षुद्र रोगाधिकार मे शर्करार्बुद का वर्णन है। शूक दोष मे भी शिश्न पर शोणितार्बुद, मासार्बुद, विद्रधि और तिलकालक का वर्णन है।

मुख दूषिका मे पद्मिनी कंटक (यह एक प्रकार का त्वचा का सौम्य अर्बुद है।) अर्बुद का उल्लेख है। ओष्ठ मे रक्तज और मासज ये दोनो ओष्ठ के ओष्ठार्बुद तथा जलार्बुद बताये है। वाग्भट ने दतविद्रधि का वर्णन किया है। वाग्भटाचार्य ने कठ रोगो मे मास कच्छपार्बुद, मास सघात एव गल विद्रधि तीनो का जो वर्णन किया है, उन पर विचार करना चाहिये। स्त्री रोगो मे नष्टार्तव स्वाभाविक और वैकारिक दो प्रकार है। वैकारिक कारणो मे रक्तक्षय, राजयक्ष्मा, मधुमेह दुष्टाद्वेग, चित्तोद्वेग, उन्माद तथा मानसिक व्याधियो की गणना की गयी है तथा स्तन विद्रधि का वर्णन है और स्तन विद्रधि का सम्वन्ध गर्भाशय से दिखाया गया है। नव्यचिकित्सा के विशेषज्ञो का मत इस प्रस्थापना से वहुत अधिक मेल खाता है। नेत्र की सन्धियो मे जो नौ रोग गिनाये गये है उनमें अश्रवाशय विद्रधि और कृमि ग्रन्थि का वर्णन है तथा पलको पर वर्त्मार्बुद का वर्णन है। नासारोग मे सात प्रकार के अर्बुद का वर्णन है। अधोगरक्तपित्त मे, गुदा, मूत्रेन्द्रिय एव योनि मे दुष्ट व्रण का उल्लेख है तथा मूत्राघात में भी मूत्रग्रन्थि का वर्णन है। कर्ण रोगो मे दो प्रकार की कर्ण विद्रधि तथा सात प्रकार के कर्णार्बुद का वर्णन है।

वाग्भट–अष्टाँग संग्रह

आयुर्वेद के मूल तीन शास्त्रीय ग्रन्थो मे से तीसरा ग्रन्थ है– वाग्भट कृत अष्टांग सग्रह। वाग्भट ने आयुर्वेद के आठो अगो का सार सग्रहित करके अपनी सहिता की रचना की जिसका नाम अष्टॉग सग्रह रखा गया। इसको और थोडा सक्षिप्त कर वाग्भट द्वितीय ने अष्टाँग हृदय की रचना की। वाग्भट का काल पाँचवी–छठी शताब्दी के आसपास माना जाता है। वाग्भट ने अपने ग्रन्थ के अत मे अपना परिचय स्वय दिया है। इसमे अपने पितामह का नाम भी वाग्भट और पिता का नाम सिहगुप्त बताया गया है। जन्म सिन्धु प्रदेश का और गुरू का नाम अवलोकित वताया है। कुछ विद्वान इन्हे वैदिक धर्मानुयायी और कुछ बौद्ध मानते हैं। वाग्भट ने अष्टाँग सग्रह को 6 स्थानो और 150 अध्यायो मे बाँटा है। इसमे कल्प स्थान के पश्चात् उतर स्थान के 50 अध्याय और दिये गये है जिनमें कौमारभृत्य, भूतविद्या, मानसरोग, शालाक्य, शल्य, क्षुद्ररोग, गुह्यरोग, अगदतन्त्र, रसायन व वाजीकरण का वर्णन है। चरक, सुश्रुत आदि प्राचीन सहिताओ का अनुसरण करते हुए भी अष्टाँग सग्रह मे कुछ मौलिक तथ्यो का उल्लेख किया है। विषो का चिकित्सा के लिए उपयोग सर्वप्रथम वाग्भट ने ही बताया और स्त्री पुरुषो के यौन विकारो की निदान चिकित्सा का वर्णन स्वतत्र दो अध्यायो मे किया। वाग्भट के काल मे विषो और धातुओ का प्रयोग चिकित्सा मे होने लगा। द्वितीय वाग्भट के अष्टाँग हृदय का अरबी और तिब्बती मे भी आठवीं सदी मे अनुवाद हुआ।

मध्यकाल

आठवीं शताब्दी के मध्य मे सिन्ध पर किया गया अरबो का आक्रमण हिन्दुस्तान के इतिहास को एक नया मोड देने वाली घटना थी। इससे पहले शक, हूण, कुषाण आदि जो आक्रमणकारी बाहर से आये वे अपने से उच्चतर स्तर की भारतीय सभ्यता को अपनाकर इसके अविच्छिन्न अग बन कर रह गये। अरब और अरबो के बाद आने वाले अफगान, मुगल आदि अन्य आक्रमणकारियो के साथ या उनका राज्य जम जाने के बाद अरब, पश्चिम एशिया और मध्य एशिया के उस युग के चिकित्सक भी भारत मे आये। उनके साथ नये विचार, औषध द्रव्य और चिकित्सा क्रम भी भारत मे आये। जिन्हे आयुर्वेद द्वारा अपना लिया गया। इस युग मे अनेक कारणो से शल्य तत्र की विकास गति अवरुद्ध होकर समाप्त हो गयी और आयुर्वेद का क्षेत्र सिर्फ काय चिकित्सा रह गया। सैद्धान्तिक पक्ष कमजोर हो गया और चिकित्सकीय पक्ष प्रबल हो गया। कालान्तर मे पुर्तगाली, डच आदि अन्य जातियो के भारत आगमन और सम्पर्क से भी अनेक परिवर्तन आये और चिकित्सा के क्षेत्र मे भी अनेक आदान-प्रदान हुए। जैसे फिरग रोग (सिफलिस) भारत मे फिरगियो ने फैलाया और सर्वप्रथम भावमिश्र ने रसकपूर द्वारा इसकी चिकित्सा का निर्देश दिया।

इस युग मे अनेक द्रव्य औषधियो के रूप मे समाविष्ट किये गये जो पहिले से ही भारत मे आने वाले विदेशी आक्रमणकारी औषधि के रूप मे प्रयोग किया करते थे। जैसे अहिफेन (अफीम), भगा, पिण्डखजूर, खरबूज, सुलेमानी, पुदीना, छुहारा, आलुख (अरबी), गर्जर (गाजर), ईसबगोल सनाय, आलू, कुम्हडा, चाय, सालममिश्री, गाँजा व रूमीमस्तगी (धुनराज)।

कहा जाता है कि निदान के क्षेत्र मे नाडी परीक्षा का समावेश भी मध्यकाल मे हुआ। रस शास्त्र का विकास बडी तेजी से हुआ और इससे चिकित्सा के क्षेत्र मे क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए।

लघुत्रयी

मध्यकाल के तीन सर्वाधिक महत्वपूर्ण आयुर्वेदिक ग्रन्थो-

(१) **माधव निदान,**

(२) **शार्ङ्गधर सहिता,**

(३) **भावप्रकाश**

को लघुत्रयी कहते है।

(१) **माधव निदान** -इस ग्रन्थ के रचनाकार माधवकर है। माधव नाम के अनेक आयुर्वेद ग्रन्थो के लेखक हुए है जिनके काल अलग-अलग थे। दुर्भाग्य का विषय है कि आयुर्वेद

के प्राय सभी प्रमुख ग्रन्थो के रचनाकारो और उनके काल के विषय मे बहुत अधिक मत-भेद है। माधव निदान के रचनाकार का काल छठी से आठवी शताब्दी के बीच का माना जाता है। अरब के खलीफा हारून-अल-रशीद (768-809ई०) के शासनकाल मे अरबी भाषा मे कई आयुर्वेदिक ग्रन्थो का अनुवाद हुआ था जिनमे माधव निदान भी था। अरब मे 850 ई० मे इस ग्रन्थ के प्रचार का प्रमाण मिलता है। प्राचीन सहिताओ मे सक्षिप्त रूप में दिये गये अनेक प्रसगो का माधव निदान मे विस्तृत विवरण दिया गया है। रोग निदान के क्षेत्र मे चिकित्सको को व्यावहारिक मार्ग दर्शन कराना इस ग्रन्थ की मुख्य विशेषता है। इस ग्रन्थ की अनेक टीकाएँ लिखी गई और विदेशी भाषाओ मे अनुवाद भी हुए। आयुर्वेद मे चिकित्सा सम्बन्धी ग्रन्थो में यह सर्वप्रथम है। निदान चिकित्सा सम्बन्धी ग्रन्थ लिखने की नीव माधवकर ने ही डाली।

(२) **शार्ङ्गधर संहिता** -के रचयिता दामोदर के पुत्र शार्ङ्गधर थे। इनका काल तेरहवी शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना जाता है। शार्ङ्गधर सहिता अपने युग की प्रतिनिधि रचना है। उस युग मे रसायन चिकित्सा की प्रधानता थी और शार्ङ्गधर मे रसौषधो का विस्तृत विवरण है। नाड़ी परीक्षा का सर्वप्रथम वर्णन इसी ग्रन्थ मे मिलता है। यह ग्रन्थ बहुत अधिक लोकप्रिय हुआ और इसकी अनेक टीकाएँ लिखी गई।

भाव प्रकाश :- के रचयिता भावमिश्र थे। इनके पिता का नाम लटकन मिश्र था। ये ब्राह्मण कुलोत्पन्न थे। इनका निवास स्थान वाराणसी या गया माना जाता है। इनका काल सोलहवी शताब्दी माना जाता है। मुसलमानो के सम्पर्क से आयुर्वेद मे सम्मिलित किये गये द्रव्यो का उल्लेख सर्वप्रथम मदनपाल ने अपने निघण्टु मे किया था। इसके पश्चात् भावप्रकाश म अनेक नवीन द्रव्यो का समावेश किया गया। इसमे कपूर, कस्तूरी, कुकुम, तगर आदि के भेद और विवरण भी दिये है। शार्ङ्गधर का अनुसरण करते हुए रोगी परीक्षा के तीन तरीके दर्शन, स्पर्शन व प्रश्न बताये है। भावमिश्र के युग मे चिकित्सा एक व्यवसाय बन चुकी थी और चिकित्सा द्वारा इस व्यवसाय से अर्थ प्राप्ति का उल्लेख किया गया है। आयुर्वेदिक ग्रन्थो मे फिरग रोग का वर्णन सर्वप्रथम भावमिश्र ने किया। उनका कथन है कि यह फिरग देश में बहुलता से होता है। यह आगन्तु रोग है। इसकी चिकित्सा के लिए चोब चीनी का आयात चीनी व्यापारियों द्वारा हुआ, इसका वर्णन भावप्रकाश मे है। भावप्रकाश का निघण्टु भाग सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। चिकित्सा के क्षेत्र मे प्रयुक्त होने वाली अनेक वनस्पतियो के गुण-कर्मों का परिचय निघण्टु भाग मे दिया गया है। यह व्यावहारिक और अत्यन्त लोकोपयोगी है। इसी कारण यह पिछले चारसौ वर्षो से अत्यन्त लोकप्रिय है।

रसो वै सः

सुश्रुत सहिता के उत्तरतन्त्र मे अनेक प्रकार के रोग सम्पूर्ण रूप मे अलग 2 बताये गये है। प्रथम अध्याय के श्लोक 5 से 8 मे कहा गया है :–

विदेह देश के स्वामी निमि नामक आचार्य द्वारा बताये गये शालाक्य तन्त्र के रोग (आँखो, दाँतो और कान, नाक के रोगो) तथा पार्वतक, जीवक, बन्धक आदि आचार्यो द्वारा विस्तार से वर्णित बच्चो को पीडा पहुँचाने वाले स्कन्ध, ग्रहादिक जन्य रोग, इसी तरह अग्निवेश, भेल आदि छ ऋषियो द्वारा बताये गये काय चिकित्सा सम्बन्धी रोग, उपसर्गादिक रोग, आगन्तुक रोग और मधुरादि रसो के 63 प्रकार के सयोग, स्वस्थवृत युक्तार्थ युक्तियाँ, दोपो के भेद और रोगो को ठीक करने के अनेक साधन तथा रोगो के कारण उत्तरतन्त्र मे बताये गये है ।

नोट – जिस तन्त्र मे शलाका (सलाई) का प्रयोग अधिक होता है उसे शालाक्य तन्त्र कहते है।

उत्तरतन्त्र के 63 वे अध्याय का शीपक रस भेद विकल्प है। साहित्य शास्त्र मे शृ गाररस, वीररस, करुणरस आदि नो रस माने गये है। आयुर्वेद मे रस शब्द मुख्यत. निम्नलिखित चार अर्थों मे प्रयुक्त होता है ·–

(1) रस शास्त्र मे रस शब्द से पारद का ग्रहण किया गया है–

"रसनात् सर्वधातूना रस इत्यमिधीयते. जरामृत्यु विनाशाय रस्यते तो रसः स्मृतः ।।

(2) शारीर शास्त्र मे जो चौबीसो घण्टे शरीर की प्रणालियो मे बहता रहता है उसे शरीर का आद्यधातु रस कहते हैं।

(3) रस कल्पना में "रसति शरीरे आशु प्रसरतीति रस·" – इस निरुक्ति के अनुसार वनस्पतियो को पीस निचोडकर जो द्रव निकाला जाता है उसे रस या स्वरस कहते है क्योकि शरीर मे प्रयुक्त होने पर वह शीघ्र फैल जाता है ।

(4) द्रव्य गुण विज्ञान या निघण्टु शास्त्र मे रस शब्द से द्रव्य मे रहने वाले मधुर, अम्ल, लवण, कटु तिक्त और कपाय इन षड्रसो का ग्रहण किया जाता है जिनका कि ग्रहण या ज्ञान रसनेन्द्रिय (जिह्वा) के द्वारा होता है और जिनका गुणो मे समावेश होता है।

आयुर्वेद के भिन्न–भिन्न अगो मे सन्दर्भ भेद से रस शब्द को उपरोक्त भिन्न–भिन्न अर्थों मे ग्रहण किया जाना चाहिये। चरक मे "रसनार्थो रस ' यानि रसना इन्द्रिय के विषय को रस कहा गया है ।

"रसनेन्द्रिय ग्राह्यो योऽर्थ. स रसः" ।।
"रसस्तु रसनाग्राह्यो मधुरादिरनेकधा"

जीभ से औषधियो का जैसा स्वाद चखने मे आता है उसके अनुसार सारी औषधियाँ मधुर, अम्ल, लवण आदि छः रसो मे विभक्त की गई है । हालाँकि औषधियो के रसो का ग्रहण जिह्वा के अतिरिक्त अन्य अगो से भी होता है । किन्तु जिह्वा अधिक सवेदनशील होती है । रस अपना कार्य शरीर के किसी भी अग से सम्पर्क होते ही करने लगता है । उसे अन्य किसी रूप मे परिवर्तित होने की आवश्यकता नही होती । जैसे फिटकरी का उपयोग त्वचा पर करने से रक्तस्राव बन्द हो जाता है । आँखो मे प्रयोग करने से पानी का स्राव बन्द होता है । यह रस के प्रत्यक्ष ज्ञान का तरीका है। ज्ञान प्राप्ति के दो अन्य तरीको अनुमान और आप्तोपदेश से भी रस का ज्ञान होता है । सुवर्ण के कषाय रस और मधुर रस का ज्ञान आप्तोपदेश से तथा शरीर पर उनके कर्मो को देखकर अनुमान से किया जाता है । कुछ विद्वानो का यह भी कथन है "कि प्रत्यक्ष से रस का सामान्य ज्ञान, अनुमान से विशिष्ट ज्ञान तथा आप्तोपदेश से प्रयोगिक ज्ञान होता है । " रस जल का प्राकृतिक धर्म है ।" इसलिए रस की उत्पत्ति का मुख्य कारण जल है । पृथ्वी, जल के अनुप्रवेश होने से गौण कारण है । "क्षितेस्तु अवनुप्रवेशकृते', तेन रसस्य योनिरापः, क्षितिश्चाधार. ।" आकाश, वायु और अग्नि ये तीन महाभूत रस की सामान्य अभिव्यक्ति तथा वैशिष्ट मे निमित्त कारण होते है । इस प्रकार पाँचो महाभूत रस के कारण रूप मे सम्वद्ध है । यद्यपि रसोत्पत्ति मे जल को प्रधान कारण माना है किन्तु आकाश मे स्थित शुद्ध जल अव्यक्त रस वाला होता है । वही जल पृथ्वी पर गिरकर नदी, तालाब, झील आदि स्थानो की विशेषता से अथवा लाल, पीली, सफेद मिट्टी मे गिरकर मधुर, अम्ल आदि षट्रसो से युक्त हो जाता है । चरक तथा वाग्भट भी विशेष रग वाली मिट्टी मे जल के सयोग से मधुर आदि रसो की उत्पत्ति मानते है । "श्वेते कषाय भवति पाण्डुरे चैव तिक्तकम् । कपिले क्षार ससृष्टे मूषरे लवणान्वितम् ।। कटु पर्वतविस्तारे मधुर कृष्णभृत्तिके ।।" सुश्रुताचार्य ने षड्रसो की उत्पत्ति केवल पृथिवी सम्पर्क से होती है इस बात का खण्डन कर पृथिवी आदि पच महाभूतो के अन्योऽन्यानु प्रवेशरूपी पचीकरण से उत्पन्न जल मे भूमिगत पच महाभूतो के उत्कर्ष या अपकर्ष के अनुसार रसोत्पत्ति हुआ करती है ऐसा माना है । उनमे से पृथिवी के गुण अधिक होने वाली भूमि मे अम्ल या लवण रसयुक्त जल होता है । जल के अधिक गुण वाली भूमि मे मधुर जल, अग्नि-गुणाधिक्य भूमि मे कटु या तिक्त रसयुक्त जल, वायु–गुणाधिक्य भूमि मे कषाय रस युक्त जल होता है और आकाश–गुणाधिक्य भूमि मे जल का रस अव्यक्त होता है । चरक का कथन है कि आकाश का जल एक ही प्रकार का अव्यक्त रस वाला होता है ।

ग्रौर कपाय ये तीन रस सौम्य है तथा कटु, ग्रम्ल ग्रौर लवरण ये तीन रस ग्राग्नेय है । इसी प्रकार मधुर, ग्रम्ल ग्रौर लवरण ये तीन रस स्निग्ध ग्रौर गुरु है तथा कटु तिक्त ग्रौर कपाय तीन रस रूक्ष ग्रौर लघु है। सौम्य रस शीत तथा ग्राग्नेय रस उष्ण होते है–

	वर्ग	रस	गुरण	कर्म
१	सौम्य	मधुर, तिक्त, कपाय,	शीत,	पित्तशमन मूर्च्छाशमन, ग्रविदाही ।
२	ग्राग्नेय	कटु, ग्रम्ल, लवरण ।	उष्ण	पित्तवर्द्धक, मूर्च्छाजनक, विदाही ।

ग्रग्नि ग्रौर वायु की ग्रधिकता वाले रस प्राय. ऊपर की तरफ गति करने वाले ग्रर्थात् वमनादि क्रिया से दोष को निकालने वाले होते है क्योकि वायु लघु ग्रौर ऊपर की ग्रोर गति करने वाला है तथा ग्रग्नि ऊर्ध्वज्वलन स्वभाव वाला है । जल ग्रौर पृथिवी की ग्रधिकता वाले रस प्राय नीचे की ग्रोर गति करने वाले ग्रर्थात् मल–मूत्रादि का विरेचन कराने वाले होते है क्योकि जल स्वभाव से नीचे की ग्रोर गति करने वाला ग्रौर पृथिवी गुरु होने से नीचे की ग्रोर गति करने वाली होती है । जो रस ऊपर कहे हुए दोनो प्रकारो वाले होते है वे उभयतो भाग (वमन ग्रौर विरेचन दोनो) कार्य करने वाले होते है ।

रसो के लक्षरण–द्रव्यो का रसनेन्द्रिय के साथ सयोग होने पर ग्रास्वाद के रूप मे मधुर ग्रादि विशिष्ट रसो की जो ग्रभूमति होती है वह स्वसवेद्य है, उसका शव्दो मे कथन सम्भव नही । मिष्टान्न खाने पर "वह वहुत मीठा है" इसके ग्रतिरिक्त ग्रौर क्या कहा जा सकता है ? उस माधुर्य का विश्लेपरण सम्भव नही । ग्रत साहित्यको के 'रस' के समान ये पड्स भी ग्रास्वाद के रूप मे स्वसवेद्य मात्र ही है किन्तु विज्ञान के क्षेत्र मे यह दृष्टिकोरण पर्याप्त नही है। वहाँ तो ग्रसीम को स्थूल रेखाग्रो मे वॉधना ही होगा जिससे वह प्रत्यक्षगम्य हो सके। ग्रत मधुर ग्रादि रसो का प्रयोग करने पर मुख मे स्थानीय भौतिक या प्रत्यावर्तित क्रियाये होती हे उन सवका समष्टिरूप से सकलन कर रसो के लक्षरण निर्धारित किये गये हे।

मधुररसलक्षरणानि-- मधुर रस मुख मे जाते ही सारे मुख मे व्याप्त हो जाता है ग्रौर मुख को लिप्त सा कर देता है। शरीर का स्नेहन, सर्व इन्द्रियो की प्रसन्नता, ग्राह्लाद, मृदुता, भोजनकाल मे ग्रानन्द ग्रौर तृप्ति उत्पन्न करता है, मूर्च्छित को सज्ञा प्रदान करता है, कफ को वढाता है तथा भ्रमर, चीटियो ग्रौर ग्रादि शव्दात् मक्षिका प्रभृति को ग्रत्यन्त प्रिय

गिरता हुआ और गिरा हुआ वह जल देश तथा काल के अनुसार एव सोम, वायु और अर्क (सूर्य) से सस्पृष्ट होता हुआ पृथ्वी के गुणो से भी युक्त होकर षड्गुण युक्त हो जाता है। चरक, सुश्रुत और वाग्भट इन तीनो आचार्यो का एक मत है कि रस की मुख्यतया उत्पत्ति जल मे होती है, किन्तु वह उसमे अव्यक्त रहता है किन्तु जल का सम्पर्क पृथिवी आदि शेष चार भूतो के साथ होने पर एव देश और काल के प्रभाव से उसमे मधुरादि षड्रस व्यक्त हो जाते है।

(१) **मधुर रस**–घृत, गुड, चीनी, द्राक्षा आदि मधुर रस वाले द्रव्य है। यह मधुर रस पृथ्वी और जलभूत की बहुलता से द्रव मे उत्पन्न होता है।

(२) **अम्ल रस**–इमली, नीबू, नारगी आदि अम्ल रस वाले पदार्थ है। जल और अग्नि की बहुलता से अम्ल रस द्रव्य मे उत्पन्न होता है।

(३) **लवण रस**–सामुद्र और विडादि–पचलवण लवणरस प्रधान द्रव्य है। पच-लवणानि सैन्धवचाथ सामुद्र विड सौवर्चल तथा। रोमकचेति विज्ञेय बुधैर्लवणपचकम्। यह रस भूमि और अग्नि रस की बहुलता से द्रव्य मे उत्पन्न होता है।

(४) **कटुक रस** सोठ काली मिर्च, लाल मिर्च, पिप्पली आदि कटुक रस प्रधान द्रव्य है। यह रस वायु और अग्नि गुण बाहुल्य से द्रव्य मे उत्पन्न होता है।

(५) **तिक्त रस**–चिरायता, कुटकी, गिलोय, नीम, करेला आदि तिक्त रस प्रधान द्रव्य हैं। यह तिक्त रस वायु और आकाश गुण की बहुलता से द्रव्य मे उत्पन्न होता है।

(६) **कषाय रस**–हरीतकी, बबूल, धातकी आदि कषाय रस प्रधान द्रव्य है। यह रस पृथ्वी और वायु की बहुलता से द्रव्य मे उत्पन्न होता है।

प्रमाण–विरुद्ध महाभूतो से उत्पन्न दोषो के क्षय और समान महाभूतो से उत्पन्न दोषो की वृद्धि को देखकर यह रस अमुक महाभूतो की अधिकता से उत्पन्न हुआ है। यह अनुमान किया जाता है–जैसे मधुर रस से आप्य कफ की वृद्धि और आग्नेय पित्त का क्षय होता है। यह देखकर मधुर रस सोमगुणातिरेक से उत्पन्न हुआ है यह अनुमान होता है।

रसो का रूपान्तर (रसानामन्यथानिरूपणम्)–निम्नाकित कारणो से एक रस दूसरे रस म बदल जाता है–(१) किसी द्रव्य को कुछ काल तक पडा रखने से उसका रस विकृत हो जाता

है, जैसे चावलो का बना हुआ भात मधुर होता है किन्तु उसे जल के साथ मिलाकर कुछ समय तक पडा रखने से उसमे अम्लता उत्पन्न हो जाती है या धान्याम्ल (काजी) बन जाती है। इस तरह स्थान का अर्थ पडा रखना है किन्तु इसका दूसरा अर्थ पात्र भी होता है–पात्र विशेष मे रखने से भी रस वदल जाता है। जैसे मधुरस्वभावी दुग्ध अम्लपात्र मे रखने से अम्ल हो जाता है अथवा कास्यपात्र मे दधि रखने से यह कटु हो जाती है। (२) किसी द्रव्य विशेष के सयोग से रसान्तर की उत्पत्ति हो जाती है जैसे चूने के सयोग से अम्ल चिचाफल (इमली) मधुर हो जाता है। (३) अग्नि के सयोग से पाक पर अनेक द्रव्यो का रस बदल जाता है। जैसे इमली के फल अग्नि मे पकाने से मीठे हो जाते है। इसी प्रकार जामुन के खट्टे फल अग्नि पर पकाकर हवा मे सुखाने से मीठे हो जाते है। (४) सूर्य के ताप (धूप) मे सुखाने से भी द्रव्यो का रस बदल जाता है, जैसे कषाय रस वाले तुम्वरु धूप मे सुखाने से मीठे हो जाते है। तुम्वरु को तेजवल के फल (तोमर) कहते है। (५) भावना देने से भी द्रव्यो का रस बदल जाता है जैसे तिलो का स्वाभाविक रस कपाय, तिक्त और मधुर है किन्तु उन्हे यष्टिमधु के क्वाथ द्वारा भावित करने से मधुर हो जाते है। (६-७) देश विशेप से कुछ द्रव्यो का रस दूसरा होना है, जैसे कुछ देशो मे आमले के फल मीठे होते है। इसी प्रकार काल के प्रभाव से भी द्रव्यो के रसो का रूपान्तर हो जाता है। जैसे कच्चा कदलीफल कपाय रस होता है किन्तु कुछ काल तक पडा रखने से वह पक कर मधुर रसयुक्त हो जाता है। (८) रूपान्तर को प्राप्त होना– इससे द्रव्य का रस बदल जाता है जैसे दुग्ध दधि मे परिणत होने पर अम्ल हो जाता है। इसी प्रकार फलो मे भी काल के अधिक होने पर अति परिणाम होने से उनमे अम्लता उत्पन्न हो जाती है जैसे पनस फल (कटहलफल) तथा तालफल पक्वावस्था मे मधुर होता है किन्तु अधिक समय तक पडा रहने के परिणाम से अत्यन्त क्लिन्न होकर अम्ल रस युक्त हो जाता है। (९) कृमि आदि के उपसर्ग (सक्रमण) से द्रव्य का रस बदल जाता है जैसे इक्षु (साठे) मे कृमि लग जाने पर तिक्तता या अम्लता उत्पन्न हो जाती है। (१०) विरुद्ध क्रिया करने से द्रव्यो मे रसान्तर की उत्पत्ति हो जाती है जैसे तालफल को अग्नि मे पका कर भूमि पर रगडने से वह तिक्त हो जाता है।

रसो का वर्गीकरण–विदाही और अविदाही भेद से रसो को दो भागो मे विभक्त किया गया है–कटु, अम्ल और लवण ये विदाही रस है तथा स्वादु, तिक्त और कषाय ये विदाहरहित रस है। विदाही रस अधिक सेवन करने से मूर्च्छाजनक होते है तथा अविदाही रस मूर्च्छा का शमन करते है। कई आचार्य कहते है कि जगत् अग्नीपोमीय (अग्निगुण उष्णता–प्रधान या सोमगुण शीतता–प्रधान) होने से रसो के सौम्य और आग्नेय ये दो भेद होते है। मधुर तिक्त

और कषाय ये तीन रस सौम्य है तथा कटु, अम्ल और लवण ये तीन रस आग्नेय है । इसी प्रकार मधुर, अम्ल और लवण ये तीन रस स्निग्ध और गुरु है तथा कटु तिक्त और कषाय तीन रस रूक्ष और लघु है। सौम्य रस शीत तथा आग्नेय रस, उष्ण होते है–

	वर्ग	रस	गुण	कर्म
१.	सौम्य	मधुर, तिक्त, कषाय,	शीत,	पित्तशमन, मूर्च्छाशमन, अविदाही ।
२	आग्नेय	कटु, अम्ल, लवण ।	उष्ण	पित्तवर्द्धक, मूर्च्छाजनक, विदाही ।

अग्नि और वायु की अधिकता वाले रस प्राय ऊपर की तरफ गति करने वाले अर्थात् वमनादि क्रिया से दोष को निकालने वाले होते है क्योकि वायु लघु और ऊपर की ओर गति करने वाला है तथा अग्नि ऊर्ध्वज्वलन स्वभाव वाला है । जल और पृथिवी की अधिकता वाले रस प्राय नीचे की ओर गति करने वाले अर्थात् मल–मूत्रादि का विरेचन कराने वाले होते है क्योकि जल स्वभाव से नीचे की ओर गति करने वाला और पृथिवी गुरु होने से नीचे की ओर गति करने वाली होती है । जो रस ऊपर कहे हुए दोनो प्रकारो वाले होते है वे उभयतो भाग (वमन और विरेचन दोनो) कार्य करने वाले होते है ।

रसो के लक्षण–द्रव्यो का रसनेन्द्रिय के साथ सयोग होने पर आस्वाद के रूप मे मधुर आदि विशिष्ट रसो की जो अनुभूति होती है वह स्वसवेद्य है, उसका शब्दो मे कथन सम्भव नही । मिष्टान्न खाने पर "वह बहुत मीठा है" इसके अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है ? उस माधुर्य का विश्लेषण सम्भव नही । अत साहित्यको के 'रस" के समान ये षड्स भी आस्वाद के रूप मे स्वसवेद्य मात्र ही है किन्तु विज्ञान के क्षेत्र मे यह दृष्टिकोण पर्याप्त नही है। वहाँ तो असीम को स्थूल रेखाओ मे बाँधना ही होगा जिससे वह प्रत्यक्षगम्य हो सके। अत मधुर आदि रसो का प्रयोग करने पर मुख मे स्थानीय भौतिक या प्रत्यावर्तित क्रियाये होती है उन सबका समष्टिरूप से सकलन कर रसो के लक्षण निर्धारित किये गये है।

मधुररसलक्षणानि-- मधुर रस मुख मे जाते ही सारे मुख मे व्याप्त हो जाता है और मुख को लिप्त सा कर देता है। शरीर का स्नेहन, सर्व इन्द्रियो की प्रसन्नता, आह्लाद, मृदुता, भोजनकाल मे आनन्द और तृप्ति उत्पन्न करता है, मूर्च्छित को सज्ञा प्रदान करता है, कफ को बढाता है तथा भ्रमर, चीटियो और आदि शब्दात् मक्षिका प्रभृति को अत्यन्त प्रिय

प्रिय होता है। जैसे प्रमेह मे मूत्र के माधुर्य के कारण उसमे चीटियाँ लगती है और शरीर की मधुरता के कारण शरीर पर मक्खियाँ बहुत बैठती है। इन लक्षणो से किसी वस्तु या द्रव्य मे मधुर रस की उपस्थिति का ज्ञान करना चाहिये। रसवैशेषिककार ने भी इसके आह्लादन, कफजनन कण्ठतर्पण और हृद्य लक्षण लिखे है।

अम्लरस लक्षणानि–अम्ल रस खाते ही दन्तहर्ष, मुख मे लालास्राव, शरीर मे स्वेद, मुख की शुद्धि, मुख और कण्ठ का विदाह, अन्न खाने के प्रति रुचि, जिह्वा का उत्तेजन, छाती और कण्ठ का विदाह, नेत्र और भौहो का सकोच, रोमाच और क्लेदन करता है तथा हृदय को प्रिय होता है। इन लक्षणो से अम्ल रस का ज्ञान करना चाहिये।

लवणरसलक्षणानि–लवण रस खाते ही मुख मे घुल जाता है तथा क्लेद, लालास्राव, मृदुता, मुख मे विदाह, अन्न मे रुचि, कफ का स्राव और कण्ठ तथा कपोल मे जलन करता है। सारे मुख मे शीघ्र फैल जाता है और उष्णता उत्पन्न करता है। इन लक्षणो से लवण रस पहचाना जाता है।

कटुरसलक्षणानि–कटु रस जीभ पर लगते ही जिह्वा पर उद्वेग, सूई चुभाने की सी वेदना, विदाह के साथ मुख, नसिका और नेत्र मे स्राव, सिर मे वेदना, कण्ठ और कपोलो मे चिमचिमाहट तथा अन्न मे रुचि उत्पन्न करता है। इन लक्षणो से कटु रस को जानना चाहिये।

तिक्तरसलक्षणानि–तिक्त रस जिह्वा पर रखते ही उसकी अन्य रस–ग्रहण शक्ति को नष्ट करता है, जिह्वा को अप्रिय लगता है, मुख मे स्वच्छता लाता है, मुख शोष तथा प्रह्लाद का जनक है एव इससे गले मे खैचने की सी पीडा, अन्न मे रुचि तथा रोमहर्ष करता है। कण्ठ को शुद्ध करता है, मुँह मे ठण्डापन लाता है और गले को सुखाता है, इन लक्षणो से तिक्त रस को जानना चाहिए।

कषायरसलक्षणानि–कषायरस जिह्वा मे विशदता, स्तब्धता और जडता उत्पन्न करता है। कण्ठ को जकडता सा है, मुख सुखाता है, हृदय मे खीचने की सी पीडा करता है, मुख के कफ को गाढा करता है और मुख मे भारीपन लाता है। इन लक्षणो से कषाय रस को जानना चाहिये।

रसाना गुणकर्माणि–यद्यपि रस स्वयं एक गुण है और गुण मे गुण नही रहता है अतएव मधुरादि रसो के जो गुरु, लघु आदि गुण है वे वास्तव मे रस के आश्रयभूत पृथिवी आदि द्रव्यो के ही गुण है। मधुरादि रस और गुर्वादि गुणो का नित्य साहचर्य (साथ रहने का सम्बन्ध)

होने से गुर्वादि गुण यद्यपि मधुरादि रस वाले द्रव्यो के है तथापि औपचारिक भाषा मे वे रसो मे आरोपित किये जाते है । जिन गुड आदि द्रव्यो मे मधुर आदि रस रहते है उनमे गुरु आदि गुण भी साथ ही रहते हैं जैसे कि रसो के गुणकर्म मे लिखा गया है कि–मधुररस स्निग्ध, शीत और गुरु है, अम्ल रस लघु, उष्ण और स्निग्ध है इत्यादि । इस प्रकार मधुर आदि रस और गुरु आदि गुणो का सहचर भाव होने से मधुर आदि रस और गुरु आदि गुणो का आश्रया–श्रयिभाव न होने पर भी मधुरादि रसो मे गुर्वादि गुणो का आरोप करके औपचारिक भाषा मे मधुर रस गुरु है, अम्ल लघु है, इत्यादि प्रयोग किया जाता है । जिस प्रकार कोई व्यक्ति उष्ण घृत मे स्थित अग्नि से दग्ध होने पर अग्नि–दग्ध न कहाते हुए घृत–दग्ध ही कहाता है ।

महर्षि कणाद ने भी गुण का लक्षण द्रव्य मे रहता हो किन्तु गुणरहित हो ऐसा ही किया है। सुश्रुताचार्य ने भी गुणो को निर्गुण ही माना है।

मधुररसगुणाः–मधुर रस जल और पृथिवी महाभूतो से बना है अतएव इसमे जल तत्त्व के कारण स्निग्ध और शीत तथा पृथिवी तत्त्व के कारण गुरु गुण होते है तथा जल के कारण यह मृदु भी होता है ।

अम्लरसगुणा–यह जल और अग्नि महाभूतो से बना होने से इसमे जल तत्त्व के कारण स्निग्ध तथा अग्नितत्त्व के कारण उष्ण और लघुगुण होते हैं ।

लवणरसगुणा–लवण रस पृथिवी और अग्नि महाभूतो से बना होने से इसमे पृथिवी तत्त्व के कारण गुरु तथा किंचित स्निग्ध और अग्नितत्त्व के कारण उष्ण गुण होते है तथा यह अग्नि के कारण तीक्ष्ण गुण वाला भी होता है ।

कटुरसगुणा–कटुरस वायु और अग्नि महाभूतो से बना होने से इसमे वायु के कारण रूक्षता और लघुता तथा अग्नि के कारण उष्णता और तीक्ष्णता होती है ।

तिक्तरसगुणा–यह वायु और आकाश महाभूतो से निष्पन्न होने से इसमे वायु के कारण रूक्षता और शीतता और आकाश के कारण लघुता गुण होते है ।

कषायरसगुणा–वायु और पृथ्वी महाभूतो से बना होने के कारण इसमे वायु की रूक्षता और शीतता तथा पृथ्वी की गुरुता के गुण होते है ।

इस प्रकार व्यवस्थित करने पर गुणो की दृष्टि से रसो के स्निग्ध, रूक्ष, शीत, उष्ण, गुरु और लघु ये ६ वर्ग हो जाते हैं तथा प्रत्येक वर्ग मे तीन तीन रसो का समावेश होता है। स्निग्धवर्ग मे मधुर, अम्ल और लवण रस, रूक्षवर्ग मे कषाय, कटु और तिक्त, शीत वर्ग मे कषाय, मधुर और तिक्त, उष्णवर्ग मे लवण, अम्ल और कटु, गुरूवर्ग मे मधुर, कषाय और लवण तथा लघुवर्ग मे तिक्त, कटु और अम्ल। एक वर्ग तीन रसो मे भी गुण के तारतम्य की दृष्टि से उत्तम, मध्यम और अवर ये तीन कोटियाँ स्थापित की गई है।

रसगुणकर्माणि–मधुर रस जन्म से ही मानव को सात्म्य होने से उसके रस–रक्तादि धातुओ तथा ओज का वर्द्धक है अतएव बल्य, जीवन, आयुष्य एव स्तन्यजनक माना गया है।

अम्लरसगुणकर्माणि–अम्लरस रूचिवर्द्धक, अग्निदीपक, मन को उत्तेजित करने वाला, मूढ वात का अनुलोमक, हृद्य, लालास्त्रावक और तृप्तिकारक है। नागार्जुन ने ऐसे बृहणीय, बल्य, वृष्य और जीवनीय लिखा है। चरकमत से यह शुक्रनाशक माना गया है।

लवणरसगुणकर्माणि–लवण रस दीपन, पाचन, भेदन, रोचन, रक्तकोपक, छेदन, कफनि:सारक, मूत्रल, शुक्रघ्न, धातुनाशक, शैथिल्यकारी है।

कटुरसगुणकर्माणि–इस प्रकार कटुक रस इन्द्रियोत्तेजक. सज्ञास्थापक, दीपन, पाचन, रोचक, ग्राही हृदयोत्तेजक, कफनाशक, अवृष्य, स्तन्यशोधक, धातुनाशक, कर्षक, लेखक और विषघ्न है। सुश्रुताचार्य ने इसे दुग्ध, शुक्र और मेद (चर्बी) का नाशक भी लिखा है। अष्टॉगसग्रहकार ने इसे स्नेह, कफ और अन्न का शोपक लिखा है।

तिक्तरसगुणकर्माणि–यह रस रोचक. दीपन, पाचन है तथा तृष्णानाशक और पुरीष का शोपक है एव कफघ्न अवृष्य व लेखन है तथा क्लेद, मेद, वसा, मज्जा, लसीका, पूय और विष का नाशक है एव स्वेद, कण्डू, कुष्ठ, ज्वर और दाह को भी नष्ट करता है।

कषायरसगुणकर्माणि-कषायरस स्तम्भक, सन्धानीय, कफघ्न, शोषक, ग्राही, रोपण, सवर्णीकरण तथा मूत्रसग्राही है। अब इन रसो का धातुओ, मलो तथा दोषो पर जो कर्म या प्रभाव होता हे उसे सक्षेप मे लिखते हे—

धातु कर्म

रस	धातुकर्म
(१)	मधुर–सर्वधातुवर्धन, बल्य, जीवन, आयुष्य स्तन्यवर्धन ।
(२)	अम्ल–बृंहण, बल्य किन्तु शुक्रनाशन ।
(३)	लवण-धातुनाशन, दौर्बल्यकर, अवृष्य, शैथिल्यकर ।
(४)	कटु–धातुनाशन, लेखन, अवृष्य ।
(५)	तिक्त–धातुनाशन अवृष्य, मेदो–वसा–मज्जा–लसीकाशोषक ।
(६)	कषाय–सर्वधातुशोषण, लेखन

मल कर्म

	रस	मल कर्म
(१)	मधुराम्ललवण	सृष्टविण्मूत्रमारुत
(२)	कटुतिक्तकषाय	बद्धविण्मूत्रमारुत

दोषकर्म–रसो का शारीर दोषो पर कर्म सामान्य–विशेष के नियमानुसार ही होता है, अर्थात् महास्रोत मे रसदोष–सन्निपात होने पर रस अपने समान गुण-दोषो को बढाते है तथा विपरीत गुण-दोषो को शान्त करते है ।

मधुर रस--यह जल और पृथ्वी महाभूतो से निष्पन्न है तथा कफ दोष भी पृथिवी और जल से निष्पन्न है। अत. कारण की दृष्टि से दोनो समान है तथा दोनो मे माधुर्य, स्नेह गौरव, शैत्य, मार्दव और पैच्छिल्य गुण भी समान है अत मधुर रस कफवर्द्धक है तथा इन्ही गुणो के कारण वात और पित्त का शमन करता है ।

अम्ल रस--यह पृथिवी और अग्नि महाभूतो से निष्पन्न है तथा स्निग्ध, गुरु तीक्ष्ण एव उष्ण गुणो से युक्त है । पित्त दोष भी अग्निभूत की प्रधानता वाला है एव तीक्ष्ण और उष्ण गुणो वाला है अत दोनो समानगुणधर्मी होने से पित्त को इसी प्रकार अम्ल रस मे स्निग्ध और गुरु गुण होने से कफ को भी कुपित करता हे। किन्तु वात दोष रूक्ष लघु एव शीत होने के कारण विपरीत गुण वाला है अत यह वात का शमन करता है।

लवण रस–यह जल और अग्नि महाभूतो से निष्पन्न है तथा स्निग्ध, उष्ण एव गुरु गुणो से युक्त है। अतः अम्ल रस के समान यह भी कफ प्रकोपक, पित्तप्रकोपक तथा वात-शामक है।

कटुरस–यह वायु और अग्नि महाभूतो से निष्पन्न है तथा रूक्ष, उष्ण एव लघु गुणो से युक्त है तथा इसमे तीक्ष्ण और विशद् गुण भी है। पित्त के गुणो से समानता होने से यह पित्त का वर्धक है तथा कफ के गुणो से विपरीत होने से कफ का शामक एव रूक्ष, लघु एव कटुत्व गुणो के कारण वायु के समान–गुण–भूयिष्ठ होने से वातवर्धक है।

तिक्त रस-यह वायु और पृथिवी महाभूतो से निष्पन्न है तथा रूक्ष, शीत और लघु गुणो से युक्त है एव मृदु तथा विशद् गुण भी इसमे है। इन गुणो से वायु के समान गुण होने से यह वायु को वढाता है। यह रस पित्त तथा कफ के गुणो से विपरीत होने से पित्त तथा कफ को शान्त करता है।

कषायरस–यह वायु और पृथिवी महाभूतो से निष्पन्न है और रूक्ष, शीत तथा लघु गुणो से युक्त है तथा विशद् और विष्टम्भी गुण भी इसमे होते है। इन गुणो से वायु के समान-गुणभूयिष्ठ होने के कारण यह वातवर्द्धक है। पित्त के विपरीत-गुण-भूयिष्ठ होने से यह पित्तशामक है तथा ऐसे ही कफ के विपरीत गुण-भूयिष्ठ होने से उसका भी शमन करता है।

इस प्रकार वातशामक रस मधुर, अम्ल और लवण है। पित्तशामक रस कषाय, तिक्त और मधुर है। कफशामक रस कटु, तिक्त और कषाय है। वातकोपक रस कटु, तिक्त और कषाय है। पित्तकोपक रस कटु, अम्ल और लवण है। कफकोपक रस मधुर, अम्ल और लवण हैं।

अपवाद (१) प्राय मधुर रस यद्यपि कफवर्धक है किन्तु शहद, मिश्री, जाँगलमास, पुराना चावल, यव, गेहूँ और मुग्द कफ नही वढाते। (२) अम्लरस पित्तवर्द्धक है किन्तु अनार और आमलक नही। (३) लवणरस पित्तवर्धक नेत्र के लिए हानिकारक है किन्तु सैन्धव को छोडकर (४) कटुरस वातवर्धक तथा शुक्रनाशक है किन्तु शुण्ठी, पिप्पली और रसोन इसके अपवाद है। (५) तिक्तरस वातवर्धक और शुक्रनाशक है किन्तु वेत्राग्र, गुडूची और पटोलपत्र को छोड़कर। (६) कषायरस शीत और स्तम्भक है किन्तु हरीतकी इसके विपरीत है।

रसो वै सः श्रुतिः प्राह, यस्माद्भूतं जगत्त्रयम् ।
ध्यायन्ति योगिनो नित्य, त नमामि रसेश्वरम् ॥१॥

—तैत्तिरीयोपनिषद्, ब्रह्मानन्दी ।

जिससे भू भुंव·स्व: तीनो जगत् की उत्पत्ति हुई वह रस शब्द वाच्य है ऐसा श्रुति ने कहा है । यह पूर्वार्द्ध का अन्वय है । रस ही सम्पूर्ण जगत् का कारण है । रस ओंकार शब्द का वाच्य है जिसे परमेश्वर कहते है। जैसे इन सम्पूर्ण प्राणियो का पृथ्वी रस शब्द से अभिप्रेत है । पृथ्वी का जल रस शब्द ने अभिप्रेत है और जल का रस ओषधियाँ कहलाती हैं । औषधियो का पुरुप रस है और पुरुप का वाणी रस है और वाणी का ऋग्वेद रस है और ऋग्वेद का सामवेद रस है, सामवेद का उद्गीथ रस है। वह सभी रसो का रसतम परम श्रेष्ठ आठवा उद्गीथ रस है । ऐसा छन्दापनिपद् मे कहा है । वही उद्गीथ (रस) का उपास्य उपदेष्टा कहा गया है । जैसे—"ओमीत्येतदक्षर मुग्दीथ मुपासित" अर्थात् ओम् जो अक्षर है यह उद्गीथ शब्द वाच्य है । इसकी उपासना करनी चाहिये। इसी प्रकार अनेक स्थानो मे रस शब्द से अध्यात्मवादी लोग श्रुति के माध्यम मे स्तुति करते है । उससे ही जगत् की उत्पत्ति हुई है।

तैत्तिरीय उपनिपद् मे कहा है—' जिनसे ये प्राणी पैदा होते हैं और महाभारत मे भी कहा है कि युग के प्रारम्भ मे जिनमे प्राणी पैदा होना है और युग के क्षीण होने पर जिनमे लय हो जाते हैं, उसी रस का योगीजन ध्यान करते है। ॐकार वाच्य ब्रह्म ही रस शब्द से वाच्य है । ऐसा छन्दोपनिपद् मे उल्लेख है । योगीजन उसी प्रणव वाच्य परमात्मा का ध्यान करते है । जैसा योग दर्शन मे भी उपदिष्ट है कि उसका (रस) प्रणव (ॐ) वाचक है जो ध्यान मात्र गम्य है ।

उस रसेश्वर (रसतम) को जो परमात्म शब्द से अभिप्रेत है यद्यपि पृथ्व्यादि तत्त्व भी रस शब्द से उपनिपद् मे व्यवहृत है । परन्तु यहाँ रसेश्वर से प्रणव वाच्य रसतम है । वही नमस्कार योग्य है । ओकार का रस वाचक सांख्यायन के गृह सूत्र मे भी देखना चाहिये अथवा जो गमनशील हो उसे भी रस कहते है। (सृ+गती) जैसे महाभाष्य "वर्णव्यत्ययापायोपजन विकारा अपिदृश्यन्ते" भी देखे जाते है । जैसे कृतिका—तर्क हिंसा का सिंह आदि इसलिए सरति अर्थात सर्वन्तगतिमान होने से परमात्मा की सर्वव्यापकता दिखाई गई है अथवा रस यह शब्द अन्न के नाम से भी निघण्टु मे बतलाया गया है । इसलिये कि अन्नरूप रस से जीवो की उत्पत्ति और स्थिति होती है । वही पुरुप अन्नरसमय है। ऐसा तैत्तिरीय उपनिपद् के 1, 1, 2, मे कहा

गया है । गीता मे भी भगवान कृष्ण ने कहा है कि अन्न से प्राणी उत्पन्न होते है अथवा ब्रह्म ही रस है ऐसा भी तैत्तिरीय उपनिषद् मे कहा है। जैसे असत् स्वरूप से ही यह आगे था इसके बाद सत्रूप से यह पैदा हुआ । इसलिये अपने आपको स्वय उसने बनाया इसीलिये उसे सुकृत भी कहा गया है । यह सुकृत ही रस है। इस रस को पाकर मनुष्य आनन्दित हो जाता है । ऐसा भी तैत्तिरीय उपनिषद् मे कहा गया है । यहाँ सुकृत शब्द ब्रह्म शब्द से अभिप्रेत है। उसे ही ब्रह्मरस कहा गया है । वही पहले अव्यक्त रूप से थे । उसी अव्यक्त से व्यक्त जाति की उत्पत्ति हुई ऐसा भी कहा गया है। इसलिये जिससे तीनो जगत् की उत्पत्ति हुई वही रस शब्द से अभिप्रेत है । अथवा विश्वनाथ पण्डित ने भी साहित्य दर्पण कृति मे कहा है। रसात्मक वाक्य ही काव्य है सम्पूर्ण विद्याओ के मूलभूत वेदरूपी काव्य के रचयिता परमेश्वर ही कवि शब्द से कहे जाते है। जैसा कि श्रुति (यजुर्वेद) मे भी कहा गया है । कवि मनीषि, परिभू , स्वयभू आदि पर्यायवाची गीता मे भी भगवान ने कहा है । कवि पुराण अनुशासितम् आदि । उसी कवि के द्वारा वेद रूपी काव्य बनाया गया है । काव्य के रसात्मक होने से रसात्मक रस ही रस शब्द से अभिप्रेत है । जैसा कि वेद की रसत्व सज्ञा छान्दोपनिषद् मे भी देखी जाती है कि रसो के रस वेद ही रस शब्द से कहे जाते है। उसी वेद रूपी काव्य से जिसे शब्द ब्रह्म भी कहते है । तीनो जगत् की उत्पत्ति हुई । पाणिनीय ने भी रस शब्द कहकर धातु का बोध किया है । योगीजन उसी का नित्य ध्यान करते है । उनको मैं नमस्कार करता हूँ। यहाँ पर रस शब्द ब्रह्म विद्या के रूप मे दिखलाया गया है। साहित्य मे भी रस और ब्रह्म को एक बतलाया गया है। जैसे सत्व के उद्रेक (वृद्धि) से अखण्ड स्वप्रकाश आनन्द और चिन्मय की प्राप्ति होती है वह अन्तर्वेद्य है । वह स्पर्श से शून्य है । वही रस ब्रह्म आस्वाद का सहोदर भी है । लोकोत्तर चमत्कृत प्राण शब्द से अभिप्रेत है । इसलिये यह प्रत्यक्ष मे आस्वादित नही होवे जैसा कि वेदो मे कहा है कि प्रजापति ने लोको का सृजन किया । फिर तपस्या के द्वारा रसों को फिर अग्नि को, पृथ्वी से वायु को, अन्तरिक्ष से आदित्य को सृजित किया । अग्नि से ऋक्, वायु से यजु भी सृजित हुये ततः यजु से भुवर्लोक, ऋक् से भूर्लोक, साम से स्वरलोक सृजित हुये ऐसा भी वेदो मे कहा है। यजन करने वाला भुव स्वाहा इस आहुति से दक्षिणाग्नि मे यजन करे । स्वः स्वाहा यह आहवनीय अग्नि मे यजन करे ऐसा निर्दिष्ट है अथवा लवण के सयोग से स्वर्ण का सधान करे, स्वर्ण से रजत का, रजत से राँगे का, रागे से शीशे का शीशे से लोहे का, लोहे से काष्ठ का और चर्म से भी काष्ठ का। इस प्रकार इन लोको और देवताओ का इन त्रयी विद्या के वीर्य से ही यज्ञ का सधान होता है । यहाँ सभी रस क्रम को दिखला कर लवण से स्वर्ण को सधानित बतलाया है । इस विधि से रस क्रिया ज्ञान (मेस्ट्री) उद हरण रूप से बतलाया है । अन्त मे सभी यज्ञ भेषज कृत है । यह

भी दिखलाया गया है । औपधोपचार से रोगियो की तरह यज्ञो के क्षत रस से सघानित होते है । रस ही यज्ञ मे प्रायश्चित का साधन है । प्राकृत अवस्था मे प्रत्यक्ष ही रस का उपचार है और क्रिया है । तात्रिक मत से रम ही अग्नि वोज है । सम यह सोम वीज है । इसलिये अग्नि और सोम दोनो का सघात (एकता) रस कहलाता है । लक्ष्य के एक देश ग्रहण मे लक्ष मात्र का ग्रहण होता है । वही अग्नि सोमात्मक रस जगत् का कारण है । जैसा कि "अग्नि सोममय जगत्" कहा है । आधुनिक विज्ञानवेत्ता भी बहुत चमत्कार वाली अनेक वस्तुओ की स्थिति होने पर भी विजली और अग्नि के आकर्षण (ऋण) और विकर्पण (घन) दो प्रकार के प्रभाव मानते है । इसलिये ही आकर्पण और विकर्पण जनित जगत् है । वही अग्नि और सोम का एकीभूत रस जगत् का कारण है ।

योगीजन नाना (विज्ञान) कर्मो मे दक्ष वैज्ञानिक होते है । जैसा भगवान ने गीता में कहा है कर्मो की कुशलता ही योग है । जिनसे तीनो जगत् और वेद पैदा होते हैं वह रस पारद कहलाता है । उसे सूत भी कहते है । योगीजन अनेक तरह की औपधियो के प्रयोगो से और वैद्य लोग जिनका चिन्तन करते है उस रसेश्वर को मै नमस्कार करता हूँ ।

रस का स्वामी ब्रह्म वाच्य परमेश्वर है । उस रस मे सिद्धयोगी जन जिन्होने योग सिद्धियो की उपलब्धि हस्तगत कर ली है अर्थात् ब्रह्मत्व प्राप्त कर लिया है । रस, र=अग्नि, स=साम, ईश=परमेश्वर, इन तीनो के ज्ञान मे जो सिद्ध है अर्थात् अग्निविद्या भौतिक, सोम विद्या, दैविक, परमेश्वर ज्ञान, आत्मिक ज्ञान इन तीनो के विद्वान अथवा असत् यह पहले था उसे सत् हुआ अर्थात् अपनी आत्मा को स्वय सृजित किया उससे वे सुकृत कहलाने लगे । इसलिये सुकृत ही रस है । सुकृत का स्वामी नाना रूप वाले परमेश्वर शब्द से वाच्य है । उनकी उपासना मे जो सिद्ध है वे भगवत् भक्त कहलाते हैं । अथवा रस का स्वामी पारद उस विद्या मे जो सिद्ध है । व्यालाचार्य आदि रसविद्या के आचार्यो की सख्या 27 है ।

"व्यालाचार्यश्चन्द्रसेनः सुवुद्धिर्नरवाहन । नागार्जुनो रत्नघोष. सुरानन्दो यशोधन ।।१।।
इन्द्रवूमश्च माण्डव्यश्चर्पटि शूरसेनक । आगमो नागवुद्धिश्च खण्ड कापालिको मत ।।२।।
कामारिस्तान्त्रिक शम्भुर्लङ्कोलम्पटशारदौ । वाणासुरो मुनिश्रेष्ठो गोविद. कपिलोवलि. ।।३।।
ऐते सर्वे तु राजेन्द्रा रस–सिद्धा महावला । चरन्ति सर्वलोकेपु नित्या भोगपरायणाः ।।४।।

(१) व्यालाचार्य, (२) चन्द्रसेन, (३) सुवुद्धि, (४) नरवाहन, (५) नागार्जुन, (६) रत्नघोप, (७) सुरानन्द, (८) यशोधन, (९) इन्द्रधूम, (१०) माण्डव्य (११) चर्पटि, (१२) शूरसेनक,

(१३) आगम, (१४) नागबुद्धि, (१५) खण्ड, (१६) कापालिक, (१७) कामारि, (१८) शम्भू, (१९) लेक, (२०) लपट, (२१) शारद, (२२) बाणासुर, (२३) मुनिश्रेष्ठ, (२४) गोविन्द, (२५) कपिल, (२६) बलि और (२७) तान्त्रिक । ये सभी राजेन्द्र रस सिद्ध थे । महाबलि थे । सम्पूर्ण लोको मे रस सिद्धि देने वाले विचरण करने वाले थे । नित्य भोग परायण थे। 27 संख्या मे रस सिद्धि देने वाले थे अथवा रस पारद उनके ईश रसेश उनको जो बस मे करने वाले रस विद्या के जानकार उनमे सिद्ध अत्यन्त ज्ञान से पूर्ण सिद्धि प्राप्त अथवा रस सिद्धि=ब्रह्म ज्ञान । वैदिक आदि स्वानुष्ठित कर्म सिद्धि प्राप्त अच्छी तरह उपदिष्ट होकर जिन्होने सिद्धि प्राप्त की है । ऐसे तत्त्ववेत्ताओ को गीता मे भी भगवान ने अर्जुन से कहा कि तत्वदर्शी योगीजन तेरे को ज्ञान का उपदेश देगे अर्थात गुरूजन ही ज्ञान का उपदेश देते है । वे गुरूजन कैसे है जो ज्ञानोपदेश मे समर्थ होते है, तत्त्वदर्शी है । यदि गुरूजन ही स्वय विद्या के पारदर्शी नही हो तो उपदेश देने मे कैसे समर्थ होगे । इसलिये "रसेश सिद्धान्त" ये विशेषण बतलाया गया है । क्योकि असिद्ध=अतत्त्वदर्शी की उनके उपदेश से अन्ध परम्परा का प्रचलन हो जाता है । इन अज्ञान जनित अन्यथा प्रयोग से सभी पदार्थ अपने गुणादान मे (लक्ष्यार्थ बोधन) असमर्थ सिद्ध होते है। इसलिये कहा है कि उपदेशो मे उपदिष्ट योग्य जो विवरण है यह सिद्धि-प्रद है। इससे अतिरिक्त अन्ध परम्परा कहलाती है। अतैव प्रकृत ग्रन्थकार ने रसेश सिद्धो को अर्थात् रस सिद्धि प्राप्त करने वाले गुरूओ को नमस्कार किया है । फिर उन्ही गुरूओ की विशिष्टता बतलाते है । आगम के अर्थात सम्पूर्णविद्याओ के मूलभूत वेद के पारदर्शक रस प्रधान अर्थात् देव चिकित्सा प्रधानो को तथा च आसुरी मानसी और दैवी चिकित्सा बतलाई है। आसुरी शस्त्रो से चिकित्सा की जाने वाली शल्य चिकित्सा और क्वाथ आदि द्वारा की जाने वाली चिकित्सा मानसी कहलाती है । लोह आदि द्वारा की जाने वाली चिकित्सा दैवी कहलाती है । इनमे उत्तरोत्तर श्रेष्ठ मानी जानी चाहिये अर्थात् रस आदि के द्वारा की जाने वाली चिकित्सा देवी और फलादि द्वारा की जाने वाली चिकित्सा आसुरी कहलाती है। शस्त्र छेदन, शस्त्रो द्वारा की जानी वाली चिकित्सा कहलाती है। चूर्ण आदि से की जाने वाली चिकित्सा मानवी कहलाती है और दिव्य रसायनो द्वारा की जाने वाली चिकित्सा दैवी कहलाती है। जो कल्पद्रु के समान सिद्धि देने वाली है जिस प्रकार दीपक वस्तुओ आदि को प्रकाश मे ला देता है उसी प्रकार पारद अर्थात् रस द्वारा की जाने वाली चिकित्सा प्रकाशित कर देती है । सम्पूर्ण ग्रन्थो को सकलित कर यह रस योग सागर नाम का ग्रन्थ रस, पारद उनसे निर्मित अनेक तरह के योग-उनके सागर की तरह अथवा रस ब्रह्म उनका योग (सायुज्य मुक्तिदायक) अथवा यम, नियम आदि अष्टॉग योग उकना सागर (पूर्णता देने वाला) है। ननु शरीर मे उत्पन्न होने वाले रोगो के निराकरण करने वाले चिकित्सा

शास्त्र का ब्रह्म ज्ञान और योग शास्त्र के साथ क्या सम्बन्ध है। ऐसी बात नही है क्योकि यह आत्मा (आत्म तत्त्व) बलहीन पुरुष के द्वारा प्राप्य नही है। साथ यह भी धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चतुरवर्ग प्राप्ति का मूल कारण आरोग्य ही है। एतावता रोग रहित एव बलवान व्यक्ति ही ब्रह्म का साक्षात्कार कर सकता है। अध्यात्म विद्या की यह मुख्य अगभूत विद्या है। अतएव ब्रह्म एव कर्म उपदेश देने वाले भगवान कृष्ण ने भी गीता ज्ञान मे विज्ञान आस्तिक्य यह कहकर ज्ञान के साथ विज्ञान का अर्थात् रस जीवन के उपाय भूतविद्या की ब्रह्म कर्म मे गणना की है। कहा भी है जिनसे अभ्युदय और निःश्रेयस सिद्धि प्राप्त हो वही धर्म है। (वैशेषिक धर्म) यहाँ भी नि श्रेयस को दिखाते हुए ऋषि ने अभ्युदय और उसके अग को दिखाया है। अभ्युदय शब्द से यहाँ शारीरिक स्वास्थ्य को समझना चाहिये। उसके बिना नि श्रयस सिद्धि दुर्लभ है। इसलिये यजुर्वेद और उपनिषद् मे भी कहा है अर्थात् अविद्या अर्थात् चिकित्सा शास्त्र के द्वारा मृत्यु को जीत कर तद् उपदिष्ट विद्या के द्वारा अमरत्व को प्राप्त कर लेता है।

.. .. (रसयोग सागर)

सुश्रुत ने शल्य की 32 क्रियाओ का उल्लेख किया है उनमे से मुख्य ये है –

निर्घटन=इधर उधर हिलाकर बाहर निकालना।

व्यूहन=घाव के दोनो ओठो को एक साथ मिलाकर ऊँचा उठाकर एक हिस्से को धार दार औजार से काटना।

वर्तन=इकठ्ठा करना या मोड देना। चालन=किसी विदेशी द्रव्य को हिलाना

विवर्तन=गोल घुमाना। पीड़न=दवा कर बाहर निकाल देना।

विकर्षण=ढीला करना। आहरण=ऊपर खीचना।

उन्नमन=खोपडी की नीचे वैठी हुई हड्डियो को ऊपर उठाना।

उन्मथन=सलाई से घाव की परीक्षा करना।

आचूषण=चूसना। दारण=फाडना।

छेदन=शरीर के किसी हिस्से को काटकर हटा देना।

भेदन=चीरा देना। लेखन=व्यवच्छेद।

व्यधन=नुकाले औजार से घाव को छेदना।

विस्रावण=घाव से मवाद निकालना। सीवन=सिलाई करना, टाँका लगाना।

—: रसेन्द्र :—

नाम :—

संस्कृत–पारद, रसधातु, रसेन्द्र, चपल, शिववीर्य, मृत्युनाशक, दिव्यरस, रसायन श्रेष्ठ इत्यादि । हिन्दी–पारा । बंगाल–पारा । मराठी–पारा । गुजराती–पारो । तेलंगू–पारद रसम । फारसी–सिमाब । अरबी–जीवक । अंग्रेजी-Mercury । लेटिन–Hydrargyrum (हैड्रारजीरम्) ।

पारद भारतीय चिकित्सा शास्त्र और भारतीय रस शास्त्र की एक सबसे अधिक महत्व-पूर्ण वस्तु है । इसके मिश्रण से आयुर्वेद के अन्दर अत्यन्त प्रभावशाली और तत्काल असर पैदा करने वाले रस तैयार किये जाते है ।

आयुर्वेदिक ग्रन्थों मे पारे की बहुत अधिक प्रशसा की गई है । कहा गया है कि पारा मूर्च्छित होने से मनुष्य के सभी रोगो का हरण करता है। शरीर को सुन्दर, स्थिर और काति-युक्त वनाता है । शरीर को नष्ट करने वाले रोगो का नाश करने वाली ऐसी कोई दूसरी औषधि नही है । पारे के सेवन से आयु, द्रव्य, आरोग्य, जठराग्नि बुद्धि, अतिशय बल तथा रूप और लावण्य प्राप्त होते है। प्रथम कचुकी रहित शुद्ध पारद को गधकजारण विधि से जारण कर जारित पारद को मारण करना चाहिये। द्रुति और सत्व से पारे को बद्ध करना चाहिये । इस प्रकार पारे की तीन प्रकार की गति कही है। निर्दोष पारा ब्रह्मा है, मूर्च्छित विष्णु और मारा हुआ पारा रुद्र है । जो पारा बद्ध है वह साक्षात सदाशिव का स्वरूप है।

भारतीय चिकित्सको का चिन्तन जो कि पारद की प्रशसा से यह प्रगट करता है कि केवल मात्र व्याधि को हटाना ही चिकित्सा नही थी बल्कि जीवन को सर्वोच्च स्थिति तक पहुँचाने के लिए शोध की गई ।

पारे की उत्पत्ति और उद्देश्य के कुछ श्लोक रसेन्द्रपुराण से अविकल उद्धृत किये जा रहे है :–

भूतानुकप' प्रवणो महेश. कैलासवासी जगदादिनाथः ।
स्ववीर्ययुक्तागदयोगरत्नै कीर्णानि तत्राणि बहूनि चक्रे ।। ३१ ।।

सम्पूर्ण प्राणियो पर कृपा की इच्छावाले कैलासवासी जगत् के आदिदेव महादेव ने रस सम्बन्धी अनेक अगद और रस के योगो से अनेक ग्रन्थ रोगो को नष्ट करने के लिए बनाये ।

रसविद्या पराविद्या त्रिपु लोकेपु दुर्लभा ।
भुक्तिमुक्तिकरी यस्मात्तस्माज्ज्ञेया गुणान्वितै ॥ ३२ ॥

रस विद्या सब विद्याओ मे परम श्रेष्ठ है और परम दुर्लभ है । ससार के सब सुखो को और मोक्ष को देने वाली है । इसलिये सर्वगुणसम्पन्न विद्वानो को अवश्य सीखनी चाहिये ।

हरति सकलरोगान्मूर्च्छितो यो नराणा
वितरति किल बद्धः खेचरत्व जवेन ।
सकलसुरमुनीन्द्रैर्वन्दित. शम्भुवीज
स जयति भवसिन्धो पारद पारदोऽयम् ॥ ३५ ॥

जो पारा मूर्च्छित होने से मनुष्यो के सभी रोगो का हरण करता है तथा बद्ध हुआ वेग से आकाश मे विचरने की शक्ति देता है तथा सकल सुर मुनियो करके पूजित शिवबीज सागर सागर से पार करने वाला ऐसा यह पारा है ।

श्रीमान्सूतनृपो ददाति विलसल्लक्ष्मी वपु शाश्वत
स्वाना प्रीतिकरीमचचलमनो मातेव पुसा यथा ॥
ह्यन्यो नास्ति शरीरनाशकगदप्रध्वसकारी तत
कार्य नित्यमहोत्सवै. प्रथमत सूताद्वपु साधनम् ॥ ३६ ॥

श्रीमान् सूतराज (पारा) शरीर को सुन्दर, स्थिर, कान्तियुक्त और अविनाशी देह बना देता है। माता के समान रक्षा करता है, शरीर को नष्ट करने वाला रोगो का नाश करने वाला ऐसा दूसरा औषध नही है, इससे नित्य प्रति प्रात.काल बडे उत्साह के साथ पारे के सेवन से शरीर का साधन करना चाहिये ।

साक्षादक्षयदायको भुवि नृणा पचत्वमुच्चै. कुतो
मूर्च्छा मूर्च्छितविग्रहो गदवता हन्त्युच्चकै प्राणिनाम् ॥
चन्द्र प्राप्य सुरासुरेन्द्रचरिता ता ता गति प्रापयेत्
सोऽय पातु परोपकारचतुर श्रीसूतराजो जगत् ॥ ३७ ॥

पारद—मनुष्य के शरीर को अमर बना सकता है, अकाल मृत्यु को जीत ले तो बात ही क्या है । मूर्च्छित पारद मूर्च्छा और सपूर्ण रोगो को दूर करता है । यदि ठीक स्वर्णभक्षी बनकर

चद्रोदय वन जावे या जलौका वद्ध हो जाये तो सुर और असुरो की सी आकाश गमनादि की गति को देता है। ऐसा यह सूतराज ससार के ऊपर उपकार करने मे चतुर जगत् की रक्षा करे ।

यो न वेत्ति कृपाराशि रस हरिहरात्मकम् ।
वृथा चिकित्सा कुरुते स वैद्यो हास्यता व्रजेत् ॥ ३८ ॥
शुष्केन्धनमहाराशि यथा दहति पावक ।
तद्वद्दहति सूतोऽय रोगान्दोपत्रयोद्भवान् ॥ ३९ ॥

विष्णु और शिव स्वरूप दयालु पारे को जो नही जानता वह व्यर्थ चिकित्सा करता है और उसकी हँसी होती है । जैसे सूखी लकडियो के समूह को अग्नि भस्म करती है उसी प्रकार तीनो दोषो से होने वाले रोगो को यह पारा जलाता है ।

मोहयेद्य: परान्वद्धो जीवयेच्च मृत· परान् ।
मूर्च्छितो बोधयेदन्यास्त सूत को न सेवते ॥ ४० ॥

स्वय बँध कर जो औरो को मोहवश करे और मरकर दूसरो को जिलावे तथा स्वय मूर्च्छित होकर औरो को जगाता है ऐसे पारे को कौन नही सेवन करता है ।

आयुर्द्रविणमारोग्य वह्निर्मेधा महद्वलम् ।
रूपयौवनलावण्य रसोपासनया भवेत् ॥ ४१ ॥

पारे के सेवन से आयु, द्रव्य आरोग्यता जठराग्नि, बुद्धि, अतिशय वल, तथा रूप यौवन और लावण्यता होते है ।

अल्पमात्रोपयोगित्वादरुचेरप्रसगत ।
क्षिप्रमारोग्यदायित्वादौषधेभ्योऽधिको रस· ॥ ४३ ॥

थोडी सी ही मात्रा (खुराक) होने से इसको खाने मे अरुचि न होने से और शीघ्र आरोग्यदाई होने से सम्पूर्ण औषधियो से रस की श्रेष्ठना है। (क्योकि इसके सेवन से योग सिद्धि और मोक्ष तक हो सकता है।)

अचिराज्जायते पुत्र शरीरमजरामरम्
मनसश्च समाधान रसयोगादवाप्यते ॥ ४४ ॥

सत्त्व च लभते सद्यो विज्ञान ज्ञानपूर्वकम् ।
सत्त्व मन्त्राश्च सिद्धयन्ति योऽश्नाति मृतसूतकम् ।। ४५ ।।

यावन्न शक्तिपातस्तु न यावत्पाशकृन्तनम् ।
तावत्तस्य कुतो बुद्धिर्जायते भस्मसूतके ।। ४६ ।।

यावन्न हरवीज तु भक्षयेत्पारद रसम् ।
तावत्तस्य कुतो मुक्ति कुत पिडस्य धारणम् ।। ४७ ।।
स्वदेहे खेचरत्व च शिवत्व येन लक्ष्यते ।। ४८ ।।

हे पुत्र ! इस पारद के सेवन करने से जल्दी देह अजर अमर होता है, तथा मन का समाधान होता है, सत्त्व और ज्ञान विज्ञान की प्राप्ति होती है । वल और मन्त्रसिद्धि प्राप्त करता है । जब तक शक्तिपात और फाँसो का कटना नही होता तव तक इस प्राणी की पारे के भस्म को खाने मे कव बुद्धि होती है । जब तक जन पारे को नही खाता तव तक इसकी रोगो से मुक्ति और देह का धारण कैसे हो सकता है, जिस पारे को खाने से यह प्राणी इस अपने देह से ही आकाश मे गति तथा शिवत्व को प्राप्त होता है ।

दोषहीनो रसो ब्रह्मा मूर्च्छितस्तु जनार्दन ।
मारितो रुद्ररूपी स्याद्वद्ध साक्षात्सदाशिव ।। ४९ ।।

निर्दोष पारा ब्रह्मा है, मूर्च्छित विष्णु और मारा पारा रुद्र है और जो पारा वद्ध है वह साक्षात् सदाशिव का स्वरूप है ।

साध्येषु भेषज सर्वमीरित तत्त्ववेदिना ।
असाध्येष्वपि दातव्यो रसोऽत श्रेष्ठ उच्यते ।। ५० ।।
हतो हन्ति जराव्याधि मूर्च्छितो व्याधिघातकः ।
वद्ध खेचरता धत्ते कोऽन्यः सूतात्कृपाकर. ।। ५१ ।।

प्राय वैद्यो ने साध्य रोगो मे सम्पूर्ण औषधे कही है, असाध्य रोगो मे कोई नही कही, परन्तु पारा असाध्य रोगो मे देना कहा है इसी से पारे की श्रेष्ठता है । मरा हुआ पारा बुढापे और रोगो को दूर करता है, मूर्च्छित पारा रोगो को हरता और वद्ध पारा आकाश मे जाने की शक्ति देता हे, वताओ पारे को छोड कौन ऐसा दयालु है ।

एता रससमुत्पत्ति यो जानाति स धार्मिक: ॥
आयुरारोग्यसतानरस सिद्धि च विदति ॥ ८८ ॥

इस रस की उत्पत्ति को जो धार्मिक मनुष्य जानता है वह दीर्घायु होता है और नीरोग रहकर अच्छी सन्तानवाला होता है, तथा सिद्धि को प्राप्त होता है।

रसनात्सर्वधातूना रस इत्यभिधीयते।
जरारुड्मृत्युनाशाय रस्यत वा रसो मत ॥ ८९ ॥
रसोपरसराजत्वाद्रसेन्द्र इति कीर्तित:।
देहलोहमयी सिद्धि सूते सूतस्तत: स्मृत ॥ ९० ॥
रोगपकाब्धिमग्नाना पारदानाच्च पारद:।
सर्वधातुगत तेजो मिश्रित यत्र तिष्ठति ॥ ९१ ॥
तस्मात्स मिश्रक प्रोक्तो नानारूपफलप्रद. ॥ ९२ ॥

यहाँ रसादि शब्दो की निरुक्ति कहते है, सब धातुओं के भक्षरण करने से इस पारे को रस कहते है। अथवा वृद्धता, रोग और मृत्यु के नाश करने से इसको भक्षरण करते है इस काररण इसको रस कहते है। तथा रस और उपरसो का राजा होने से इसको रसेन्द्र कहते है और देह को लोहे के समान उत्पन्न करता है इससे इसको सूत कहते है। रोगरूप कीचड के समुद्र मे डूबे हुए मनुष्यो को पार लगाने से इसको पारद कहते है, और समस्त धातुओ का मिश्रित तेज इस पारे मे रहता है इस काररण इसको मिश्रक कहते है। यह अनेक प्रकार के फल देता है।

प्रत्यक्षेरण प्रमाणेन यो न जानाति सूतकम्।
अदृष्टविग्रह देव कथ ज्ञास्यति चिन्मयम् ॥ ९६ ॥

जो मनुष्य प्रत्यक्ष प्रमारण करके पारे को नही जाने वह अदृष्ट शरीर परमात्मा चैतन्य मय को कैसे जानेगा? अर्थात जो पारे को जानता है वही परब्रह्म को जानेगा।

एक एव रसो ज्ञेयो बहुधोपरसा स्मृता ॥ ९७ ॥
रस केवल एक (पारद) ही है परन्तु उपरस बहुत प्रकार के कहे हैं।

पारद की श्रेष्ठता

काष्ठौपध्यो नागे नागो वगेऽथ वंगमपि शुल्वे ।
शुल्व तारे तार कनके कनक च लीयते सूते ।। ६८ ।।
अमृतत्व हि भजते हरमूर्त्तौ योगिनो यथा लीनाः ।
तद्वत्कवलितगगने रसराजे हेमलोहाद्याः ।। ६६ ।।
परमात्मनीत्र सतत भवति लयो यत्र सर्वसत्त्वानाम् ।
एकोऽसौ रसराज शरीरमजरामर कुरुते ।। १०० ।।
स्थिरदेहाभ्यासवशात्प्राप्य ज्ञान गुणाष्टकोपेतम् ।
प्राप्नोति ब्रह्मपद न पुनर्वनवासदु खेन ।। १०१ ।।

काष्ठौषधि शीशे मे मिल जाती है, शीशा वग मे, वग तावे मे तावा चादी मे, चादी साने मे तथा सोना पारे मे मिल जाता है जिस प्रकार योगी श्री शिवजी की मूर्त्ति मे मोक्ष के समय लीन होते हैं उसी प्रकार अभ्रक को भक्षण करने वाले पारे मे लौहादि धातु मिल जाती हैं अथवा जैसे परमात्मा मे सर्वप्राणी लीन होते हैं उसी प्रकार पारे मे सब धातुओ का लय होता है । यह एक हो रसराज (पारा) देह को अजर अमर करता है। देह स्थिर होने पर अभ्यास करते २ अष्टसिद्धि सपन्न ज्ञान की प्राप्ति होती है, उससे मनुष्य ब्रह्मपद को प्राप्त होता है परन्तु वनवास के कष्ट से ब्रह्मपद की प्राप्ति नही हो सकती।

एकाशेन जगद्यु गपदवष्टभ्य स्थित पर ज्योति ।
पादैस्त्रिभिस्तदमृत सुलभ न विरक्तिमात्रेण ।। १०२ ।।
नहि देहेन कथ चिद्व्याधिजरामरणदु खविधुरेण ।
क्षणभगुरेण सूक्ष्म तद्ब्रह्मोपासितु शक्यम् ।। १०३ ।।
नामापि देहसिद्धं. को गृह्णीयाद्विना शरीरेण ।
तद्योगगम्यममल मनसोपि न गोचर तत्त्वम् ।। १०४ ।।
यज्ज्ञानात्तपसो वेदाध्ययनाद्मात्सदाचारात् ।
अत्यन्तभूयसी किल्ययोगवशादात्मसवित्ति ।। १०५ ।।

जो परब्रह्म ज्योति एक कला से जगत् को धारण कर एक काल मे ही सत्त्व, रज तम इन तीन गुणो से जगत् मे व्यापक है । वह ब्रह्म केवल वैराग्यमात्र से ही प्राप्त नही हो सकता । अनेक व्याधि बुढापा, मरण आदि दु खो से दु खित क्षणभगुर शरीर से उस सूक्ष्म

ज्योति की उपासना नही हो सकती और स्थूल शरीर के बिना सूक्ष्म भी साधन मे असमर्थ है क्योकि योग बिना शरीर के नही हो सकता और योग के बिना वह तत्त्व मन से भी नही जाना जाता । यज्ञ ज्ञान तप, वेदाध्ययन, दम, सदाचार आदि से श्रेष्ठ जो आत्मदर्शन है वह योग से ही प्राप्त हो सकता है, सो योग बिना पारद भक्षण के नही हो सकता।

आयतन विद्याना मूल धर्मार्थकाममोक्षाणाम् ।
श्रेय पर किमन्यच्छरीरमजरामर विहायैकम् ।। १११ ।।
प्रत्यक्षेण प्रमाणेन यो न जानाति सूतकम् ।
अदृष्टविग्रह देव कथ ज्ञास्यति चिन्मयम् ।। ११२ ।।
यज्जरया जर्जरित कासश्वासादिदुखविवशं च ।
योग्य तन्न समाधौ प्रतिहतबुद्धीन्द्रियग्रामम् ।। ११३ ।।
बाल' षोडशवर्षो विषयरसास्वादलपट: परत' ।
यातविवेको वृद्धा मर्त्य' कथप्नाप्नुयान्मुक्तिम् ।। ११४ ।।
अस्मिन्नेव शरीरे येषा परमात्मनो न सवेद: ।
देहत्यागादूर्ध्वं तेषा तद्ब्रह्मदूरतरम् ।। ११५ ।।
ब्रह्मादयो यतते तस्मिन्दिव्या तनु प्राप्य ।
जीवन्मुक्ताश्चान्ये कल्पान्तस्थायिनो मुनय' । ११६ ।।
तस्माद्ब्रह्मप्राप्ति समीहमानेन योगिना प्रथमम् ।
दिव्या तनुर्विधेया हरगौरीसृष्टिसयोगात् ।। ११७ ।।

सम्पूर्ण विद्याओ का स्थान धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इनका मूल कारण शरीर को अजर और अमर करने वाला कल्याणकारी रस को छोडकर और क्या पदार्थ है ? अर्थात कोई नही । जो मनुष्य प्रत्यक्ष प्रमाण से अजरामर कर्त्ता पारद को नही जान सकता वह चिन्मय अदृष्ट ब्रह्म को कैसे जान सकता है । जिस शरीर मे बुढापा आ गया हो, कास श्वासादि रोगो से व्याकुल हो, इन्द्रिया शिथिल हो गई हो वह समाधि के योग्य नही । पहले मनुष्य 16 वर्ष की अवस्था तक तो बालक ही रहता है । फिर विषयो के स्वाद लेने मे लीन रहता है । जब कुछ विवेक उत्पन्न हुआ तब वृद्धावस्था ने आ घेरा फिर मनुष्य मुक्ति का साधन कैसे कर सकता है । जिनको इसी शरीर मे परमात्मा का दर्शन न हुआ, मरने के अनतर उन बिचारो को कहाँ प्राप्त हो सकता है । ब्रह्मादिक देवता दिव्य शरीर को प्राप्त हो कर भी जिसके लिये यत्न करते है और कल्पो तक रहने वाले जीवन्मुक्त मुनि भी यत्न करते है । इसलिये ब्रह्म प्राप्ति की इच्छा वाले योगी

को पारद, गंधक, अभ्रक इनके सयोग से पहले दिव्य शरीर बना लेना चाहिये।

मूर्च्छित्वा हरति रुज बधनमनुभूय मुक्तिदो भवति ।
अमरीकरोति हि मृत: कोऽन्य करुणाकर सूतात् ।। ११८ ।।

मूर्च्छित हुआ पारा सपूर्ण रोगो को हरता है। बँधा पारद मुक्ति देता है। मरा हुआ पारद अमर कर देता है। इस पारे के समान और करुणा करने वाला कौन है? अर्थात कोई नही।

रसतन्त्र और रसायन विद्या के आदि प्रवर्तक भगवान शिव है। ऐसा कहा जाता है कि पारद के द्वारा देह की सिद्धि और लोह सिद्धि (लोह मे सोना बनाना) का ज्ञान सबसे पहले महादेव ने पार्वती को कराया। वैदिक साहित्य मे पारे का कोई उल्लेख नही मिलता। ऋग्वेद मे सोना, चादी और तावा इन तीन धातुओ का; यजुर्वेद मे कृष्ण आयस नाम से लोहे का और अथर्ववेद मे इनके अलावा कास्य, पीतल आदि मिश्रित धातुओ का उल्लेख मिलता है। चरक मे भी पारे का उल्लेख नही है। सुश्रुत सहिता मे लेप वर्ग की औषधियो मे एक स्थान पर पारद का वर्णन है। पारद के प्रयोग के प्राचीनतम विशेषज्ञो मे आचार्य नागार्जुन का नाम सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। केवल पारद के सम्बन्ध मे लिखे गये ११८ ग्रन्थो की सूचि उपलब्ध है। पारद के महत्वपूर्ण प्रयोगो मे से अनेक को विधियाँ लुप्त हो चुकी हैं। लेकिन फिर भी पारद के औषधिय गुण–धर्मों का जितना ज्ञान आयुर्वेदिक ग्रन्थो मे उपलब्ध है, वह अत्यन्त चमत्कारिक है। शरीर के कायाकल्प या धातु परिवर्तन के लिए पारद अद्वितीय है न जाने किस कारण औषधि के रूप मे पारद पर आधुनिक चिकित्सको वैज्ञानिको द्वारा पर्याप्त खोज नही की गई है और आधुनिक चिकित्सा पद्धति मे पारद का महत्वपूर्ण चिकित्सा मे प्रयोग नही किया जाता है। जबकि हमारे वैद्य आज भी पुरातन ग्रन्थो के आधार पर पारे के प्रयोग द्वारा अनेक असाध्य रोगो में चमत्कारिक उपलब्धियाँ प्राप्त करते हैं।

पारद के खनिज

भूगर्भ के अन्दर से पारद अपने विशुद्ध रूप मे कही २ यत्किंचित ही पाया जाता है। प्राय विशेषकर यह दूसरे यौगिक तत्त्वो के द्वारा ही निकाला जाता है। इन यौगिक खनिजो मे प्रधान खनिज सिंगरफ प्रवालाभ (Coralline), चर्मार (metacinnabar) हीरक द्युति (Calomel), प्राकृतिक पारद (Native mercury), रजत पारद (Silver Amalgam), इत्यादि खनिजो मे यह पारद पाया जाता है। इसके सिवाय और भी कई गौण खनिज ऐसे रहते है जिनमे

भी पारद का अंश रहता है मगर इन सब द्रव्यो मे सिगरफ या हीगल ही एक ऐसा प्रधान खनिज है जिस से विशेष रूप से पारद प्राप्त किया जाता है।

प्राचीन और आधुनिक पारद में भेद

आज से कुछ वर्षो पूर्व जो पारद बाजारों मे मिलता था वह आज मिलने वाले पारद की अपेक्षा अधिक अशुद्ध रहता था। क्योकि उस समय पारद से खनिज अंशो को दूर करने की विधियाँ विशेष दोषपूर्ण थी। इसलिए उसमे खनिज द्रव्यो का अंश विशेष रूप से रहता था। लेकिन आजकल जिन कारखानो मे पारद को खनिज द्रव्यो से भिन्न किया जाता है, वहा खनिज से भिन्न करने के पश्चात् उसको शोरे के हलके तेजाब मे डाला जाता है जिससे उसमे रहने वाले वंग, नाग, अंजन इत्यादि खनिज तत्व उस तेजाब मे घुलते चले जाते है और पारा धीरे २ उन धातुओ के मिश्रण से मुक्त होता चला जाता है। पूर्व काल मे शोरे के तेजाब का पता न होने से पातन विधि के सिवाय पारद को शुद्ध करने की दूसरी विधि अप्राप्य थी। इसलिये उस समय जो पारद बाजारो मे बिकता था वह आज के पारद से बहुत अधिक अशुद्ध रहता था।

पारद के गुण–दोष

आयुर्वेदिक मत–भावप्रकाश के मत से पारा मधुर, अम्ल, कटु, तिक्त, कषाय, लवण रसान्वित स्निग्ध, त्रिदोषनाशक, रसायन, योगवाही, महावृष्य और दृष्टि तथा बल को बढाने वाला होता है। यह सर्व रोग नाशक और विशेष करके कुष्ट रोग नाशक होता है। ऐसे असाध्य रोग जो दूसरी चिकित्सा से आराम नही होते पारे के सेवन से जरूर दूर हो जाते है।

पारा देह शुद्धि कारक, रोग विनाशक, पौष्टिक, मृत्युहारक और दीर्घजीवी करने वाला होता हे। यह राजयक्ष्मा रोग को दूर करता है और पान के साथ भक्षण करने से सब रोगो को दूर करता है।

मूर्च्छित पारा–रोग नाशक और आकाश गमन को शक्ति देने वाला होता है। बधा पारा अर्थदायक होता है। पारे की भस्म यौवन, कान्ति और दृष्टि को बढाने वाली होती है। यह वीर्यवर्धक, मृत्युनाशक, स्त्रियो को आनन्द जनक और योगवाही है।

अशुद्ध पारे के दोष–अशुद्ध पारे मे मल, विष, अग्नि, गिरिदोष और चपलता ये पाच दोष स्वभाव से रहते हैं और रागा तथा सीसा ये दो दोष इसमे उपाधिज होते हैं। इस प्रकार इसमे ७ दोष रहते हैं। मल के दोष से मूर्च्छा, विष के दोष से मृत्यु, अग्नि के दोष से दाह और शरीर पीडा, गिरिदोष से जडता, चचलता के दोष से वीर्यनाश, वग दोष से कुष्ट और नाग दोष से नपुमकता पैदा होती है। इस कारण इसको विधिपूर्वक शुद्ध करना चाहिये। जो मनुष्य अशुद्ध पारे का सेवन करता है वह अनेक प्रकार की व्याधियो का शिकार होता है।

पारद प्रशसा–निघण्टु रत्नाकर मे लिखा है कि मिट्टी के गुणो से अधिक करोड गुण सुवर्ण के दर्शन करने मे है। सुवर्ण के गुणो से अधिक करोड गुण मणि के दर्शन करने मे हैं मणि के गुणो से अधिक करोड गुण वाण के दर्शन करने मे है और वाण के गुणो से अधिक करोड़ गुण पारे के दर्शन करने मे है, पारे से अधिक गुण वाला पदार्थ न हुआ और न होगा।

मानव शरीर के ऊपर पारद के प्रभाव

मनुष्य शरीर के अन्दर जाकर पारद किस प्रकार अपनी क्रिया करता है और शरीर के भिन्न २ अवयवो पर उसके क्या २ असर होते है। इस बात पर भी प्रकाश डालना यहाँ पर आवश्यक है।

पाक स्थली, आँत और महास्रोत पर पारद का प्रभाव--पारद से बनाये जाने वाले रस कपूर इत्यादि क्षार पाकस्थली मे जाकर मुँह, मसूडे और दाँतो की जडो के द्वारा बाहर निकलते है। यही कारण है कि जो वैद्य उपदश के रोगियो को बडी मात्रा मे रसकपूर खिलाते हैं, उनके रोगियो के मसूडे सूज जाते है। दाँत हिलने लग जाते हैं और मुँह मे अविरत लार बहने लगती है। पारद के क्षार आमाशय मे पहुँचने पर विशेष जटिल यौगिक के रूप मे परिवर्त्तित होकर पहले अघुलनशील हो जाते है लेकिन फिर आमाशय के अन्दर जो नमक का अश होता है उसकी अधिकता से घुलनशील होकर शीघ्र सारे शरीर में प्रवेश कर जाते है। यही कारण है कि वैद्य लोग पारद या रसकपूर का प्रयोग करते समय रोगी से नमक का परहेज कराते है। लघु आत के ऊपरी भाग और गृहणी मे खनिज पारद, कज्जली, रसपर्पटी, ग्रपाउडर, अथवा केलोमल जाकर स्थानीय ग्रथिरस (Grandular Accretions) और आँत की गति (Perist Alsis) को बढाते हैं। इस प्रभाव का फल यह होता है कि आत्रिक द्रव इतनी शीघ्रता से नीचे की ओर गति करने लगते है कि जिसमे साधारण पित्त जो स्वाभाविक दशा मे शरीर मे पुन शोषित हो जाता है वह नही हो पाता और दस्त गहरा हरा होने लगता है। इसीलिये पारदीय क्षारो को रेचक

माना जाता है। यह रेचक शक्ति दूसरे क्षारविरेचनो के योग से अधिक हो जाती है और यही कारण है कि पाश्चात्य चिकित्सक रात्रि मे ब्ल्यूपिल, अथवा केलोमल खिला कर प्रात.काल रोगी को मेगनेसिया सलफाज या और कोई क्षार विरेचन पिलाते है। । जिससे साफ विरेचन हो जाता है। अगर किसी व्यक्ति को केलोमल आदि वस्तुएँ लेने पर किसी शारीरिक क्षमता की वजह से विरेचन न हो तो यह चीजे शरीर मे दूसरे प्रकार की विकृति पैदा कर देती है। इसलिये रोगी की पारदीय क्षमता का पूरा विचार कर सावधानी से इसका प्रयोग करना चाहिये। पारद के यौगिक लघु आत मे होने वाली सडाइन को भी दूर करते है। इसलिये रस चिकित्सक रसपर्पटी, पचामृत पर्पटी, स्वर्ण पर्पटी आदि प्रयोग व्यवहार मे लाते है। ऐसे प्रयोगो से फूले हुए दस्त बन्द हो जाते है। पेट फूलना बद हो जाता है और रोगी के शरीर मे शक्ति पैदा होती है। मगर इन प्रयोगो के साथ नमक वाले भोजन बद कर देना चाहिये।

रक्त पर पारद के प्रभाव–रक्त के अन्दर लालकणो की वृद्धि करने के लिए और रक्त की शक्ति बढाने के लिये पारद के आयुर्वेदिक यौगिक बहुत सफल माने जाते है। मकरध्वज, चद्रोदय, रससिदूर, स्वर्णसिदूर, मल्लसिदूर इत्यादि वस्तुएँ इस कार्य के लिये काम मे ली जाती है और इनका बहुत उत्तम प्रभाव देखा जाता है। पारद के अधिक मात्रा मे सेवन करने से कभी कभी विपरीत असर होकर पाडुरोग हो जाया करता है। यह प्रभाव पाचन शक्ति की विकृति होने के कारण होता है या उन्नति होने के कारण इसका ठीक ठीक निर्णय अभी तक नही होने पाया है।

गुर्दे पर पारद का प्रभाव केलोमल या बल्यूपिल का प्रयोग करने से उसका गुर्दे पर मूत्रल प्रभाव देखा जाता है। यह प्रभाव डिजिटेलिस के योग से और भी अधिक हो जाता है। गुर्दे के रोगो मे सावधानी के साथ केलोमल इत्यादि वस्तुओ का प्रयोग करना चाहिये। हृदय की दुर्बलता के कारण यदि जलोदर रोग हो जावे तो उसका इसका प्रयोग लाभदायक हो सकता है।

उपदश रोग के लिये पारद एक विशिष्ट औषधि मानी जाती है। विशेष कर उपदश की प्रथम और दूसरी अवस्था मे इसके प्रभाव विशेप अनुकूल होते है। पारद के अन्दर रक्त मे फैले हुए उपदश के कीटाणुओ को नष्ट करने की शक्ति है। इसीलिये उपदश के ऊपर इसके यौगिक विशेप रूप से लाभ पहुँचाते है।

मनुष्य की आयु, शक्ति, प्रकृति और स्वभाव के भेद से पारद के प्रभाव मे भी भेद पड जाता है। युवा की अपेक्षा बालक और स्त्रियो की अपेक्षा पुरुप इसको विशेप रूप से सहन कर सकते है। गुर्दे के रोग, कठमाल, रक्तपित्त इत्यादि के रोगियो पर इसके प्रभाव बहुत शीघ्र मालूम देते है।

* ऋग्वेद में आयुर्वेद *

आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद्रपः ।
त्वं हि विश्वभेषजो देवानां दूत ईयसे ॥

—ऋग्वेद १० । १३७ । ३

Hither, O Wind, blow healing balm, blow all disease away, thou Wind, For thou who hast all medicine comest as envoy of the Gods.

जुजुरुषो नासत्योत वव्रिं प्रामुञ्चतं द्रापिमिव च्यवानात् ।
प्रातिरतं जहितस्यायुर्दस्रादित्पतिमकृणुतं कनीनाम् ॥

—ऋग्वेद १ । ११६ । १०

Ye from the old Chyavana, O Nasatyas, Stripped as twere mail, the skin upon his body,

Lengthened his life when all had left him helpless, Darras [1] and made him lord of youthful maidens.

शतं मेषान्वृक्ये चक्षदानमृज्राश्वं तं पितान्धं चकार ।
तस्मा अक्षी नासत्या विचक्ष आधत्तं दस्रा भिषजावनर्वन् ॥

—ऋग्वेद १ । ११६ । १६

His father robbed Rijrasva of his eye-sight who for the she wold slew a hundred wethers.

Ye gave him eyes, Nasatyas Wonder-workers, Physicians, that he saw with sight uninjured.

*

CANCER VADE MECUM

VOLUME II

तृतीय - सोपान

* चिकित्सा *

असाध्य रोगों की चिकित्सा

नास्ति रोगो विना दोषैर्यस्मात्तस्माद्विचक्षण ।
अनुक्तमपि दोषाणा लिगैर्व्याधिमुपाचरेत् ।। २३ ।।

–सुश्रुत सूत्र स्थान, अध्याय ३५/२३

दोषो के प्रकोप विना रोग उत्पन्न नही होता है । इसलिये लक्षणादि से अनुक्त (अज्ञात) रोगो की चिकित्सा दोपो के लक्षणानुसार करनी चाहिये ।

उपद्रवैस्तु ये जुष्ठा व्याधयो यान्त्यवार्यताम् ।
रसायनाद्विना वत्स ताञ् श्रृण्वेकमना मम ।। ३ ।।

–सुश्रुत, सूत्र स्थान ३३/३

भगवान धन्वन्तरि ने सुश्रुत को कहा–हे वत्स, जो रोग उपद्रवो से युक्त होने के कारण रसायन के विना अवार्य (असाध्य) हो जाते है, उनकी रसायन से चिकित्सा करनी चाहिये ।

—०—

ध्रुवन्तु मरण रिष्ठे ब्राह्मणैस्तत् किलामलै ।
रसायनतपोजप्यतत्परैर्वा निवार्य्यते ।। ५ ।।

–सुश्रुत, सूत्रस्थान, अध्याय २८/५

रिष्ट के उत्पन्न होने पर मरण निश्चित है तथापि राग द्वेपादि मानस दोपो से रहित ब्राह्मणो के द्वारा अथवा रसायन, तप और गायत्र्यादि जपने मे परायण पुरुषो द्वारा वह मृत्यु निर्धारित हो सकती है ।

नोट–भविष्य मे होने वाले फल, अग्नि और जल वर्षा का ज्ञान जैसे पुष्प, धूम और मेघो द्वारा होता है, उसी प्रकार अरिष्ट लक्षण भविष्य मे होने वाली मृत्यु के सूचक है। नियत मरण बतलाने वाले चिन्हो को अरिष्ट कहते है । रोगी मरण जिससे अवश्यभावी दिखाई दे,

उस लक्षण को अरिष्ट कहते है । प्रथम रिष्ट के दो भेद है—स्थायी रिष्ट और अस्थायी रिष्ट । स्थायी रिष्ट से मृत्यु निश्चित होती है और इसका हेतु निमित्त अदृष्ट और अज्ञात होता है । अस्थायी रिष्ट ज्ञात निमित्त तथा दोष बाहुल्य से पैदा होते है । इनका शमन हो सकता है । दोषाणामपि बाहुल्याद्रिष्टाभास: समुद्भवेत । तद्दोषाणा शमे शाम्येत् । (अ स.)

रसायनेन ह्यसाध्यो व्याधिरपि प्राय: साध्यते ।

—डल्हण

रसायन उपचारो से असाध्य व्याधि भी साध्य होती है ।

साध्येषु भेषज सर्वमीरित तत्त्ववेदिना ।
असाध्येष्वपि दातव्यो रसोऽत श्रेष्ठ उच्यते ।। ५० ।।

—रसेन्द्रपुराण

प्राय वैद्यो ने साध्य रोगो मे सम्पूर्ण औषधे कही है, असाध्य रोगो मे कोई नही कही, परन्तु पारा असाध्य रोगो मे देना कहा है इसी से पारे की श्रेष्ठता है ।

वैद्य औषध विवर्जित योग

विश्वेश्वररसः (प्रथम)

अथात सम्प्रवक्ष्यामि रस सर्वरसोत्तमम् ।
क्षणेन गुणद राजन्सद्यो वह्निप्रदीपकम् ।।
विश्वेश्वरेति विख्यात सर्वरुक्शमनेन च ।
सर्वसिद्धिकरो वैद्ये दु साध्यव्याधिनाशन. ।।
शतवर्षाऽधिकस्याऽपि वाजीकरणमुत्तमम् ।
विना महारसचामु नाऽन्योऽस्ति तादृशो रस
पुत्र वापि प्रिय वापि विक्रीयाऽपि रस हरेत् ।

यामत्रयेण निःशेषसन्निपातविनाशन. ।।
नश्यन्ति दर्शनादस्य डाकिनीब्रह्मराक्षसाः ।
हरेदष्टविध व्याधि योनिदोषहर. पर. ।।
दशाऽष्टकुष्ठरोगघ्नश्चरस्थिरविषापहः ।
वृष्यश्च परमायुष्यश्चक्षुष्यो मङ्गलप्रद ।।
पुत्रदो निर्विकारश्च प्रजावृद्धिविवर्धन ।
सर्वपापहरः श्रीमाल्लोहलस्य विनाशन. ।।
बहुनाऽत्र किमुक्तेन जरामृत्युविनाशन ।
मन्दराधारपृष्ठास्थिक्रौञ्चास्थिमेषशृङ्गके ।।
स्नुहीक्षीरेण सम्पिष्टै र्वज्र सवेष्टयेत्तत ।
पुटित्वा निक्षिपेत्क्वाथे कौलत्थे सप्तधा तत ।।
क्षीरकचुञ्ककन्दान्ते निक्षिप्याऽस्य च मज्जया ।
निरुद्धयच पुटित्वा च गन्धर्वाऽम्भसि निक्षिपेत्
कृत्वेति सप्तवाराश्च तत स्तन्येन योषिताम् ।
पिष्ट्वा बलीन्द्रजित्पादौ विलिप्येन्द्रायुधन्तथा ।।
रुद्ध्वा सम्पुटमूषाया द्रव दत्त्वा च मूर्धनि ।
प्रथम वक्रनालेन धाम्य वारचतुष्टयम् ।।
तत सञ्चूर्णयेद्वज्र श्लक्ष्ण खल्वे प्रयत्नन ।
चेत्खण्ड न भवेच्चूर्ण प्रथमेत्पूर्वतत्तत ।।
वज्रस्य भस्मना तुल्य शुद्ध पातितपारदम् ।
जीर्णषड्गुणगन्धञ्च रसेन्द्र परिमर्दयेत् ।।
अजपादादितोयेन घृष्ट सप्तदिनाऽवधिम् ।
ततो निरुद्धय यत्नेन मसृणोदरसम्पुटे ।।
प्रतप्तवालुकामध्ये निक्षिप्यैकपुटञ्चरेत् ।
द्रवः पूर्वोदितो भूयो मर्दयेत्पुटित रसै ।।
तुषै प्रसृतिमात्रैश्च तद्वच्च पुटयेत्पुन ।
भूयोभूयोरसैस्तैस्तु विमृद्य च विमृद्य च ।।
एकैकपलमारभ्य तथकपलवृद्धित ।
पुटेद्रस भवेद्यावद्रसो वज्रायुधोपम ।।

मृतेन तेन सूतेन तुल्यमन्य रस क्षिपेत ।
पूर्वप्रोक्तरसैरेव विमृद्य च निरुद्धय च ।।
पुटेत पारद भूयः पुटैःक्रमविवर्धितैः ।
सप्तधेति पुटित्वा तं रसराजमनन्तरम् ।।
पादाशजातरूपेण पिष्टमन्यरसैश्चरेत् ।
तस्य पिष्ट चतुर्थाश दत्त्वा पूर्व मृत रसम् ।।
विमृद्य लुङ्गतोयेन रुद्ध सम्पुटके दृढम् ।
आरण्यकोपलेर्देय पूर्वस्मादधिक पुटम् ।।
भूयोभूयो रसेन्द्र तु लुङ्गतोये विमृद्य च ।
क्रमवृद्धया पुट देय यावदजपुट भवेत् ।।
तस्य तज्जायते भस्म शक्रगोपशतप्रभम् ।
पुनस्तथैव सूतेन समेन सह मर्दयेत् ।।
लुङ्गस्य वारिणा वाऽत्र विनिरुद्वय पुटञ्चरेत ।
एवमेव चतुष्षष्टिवाराणि मारयेद्रसम् ।।
तत प्रकटमूपाया ध्मातो वा पुटितोऽथवा ।
उड्डीय न रसो याति क्षीणपक्षश्च जायते ।।
आयुर्वज्रे वल स्वर्णे रोगनाशश्च पारदे ।
एतत्त्रय रसे यस्मिसैंन्स रसो नाऽपरस्तथा ।।

आभाससञ्ज्ञका ह्येते मूलपाषाणयोगत ।
प्रतप्तखर्परस्या स्याऽयस्य नो ह्रीयते वलम् ।।
निर्धूमो निश्चटत्कार सुसस्कृतरसो हि स ।
स रसोऽपि गणान्हन्ति शास्त्रोक्तफलदायक. ।।
एव सिद्धरसेन्द्रोऽय विश्वेश्वर इति स्मृत ।
राजिकाऽर्द्धप्रमाणेन मरिचाऽऽज्यनिषेवित ।।
निर्दहेत्सकलान्रोगान्वन शुष्कमिवाऽनल. ।
सेवनादस्य सूतस्य जीवेद्वर्षायुत सुखी ।।
न व्याधि र्न जरामृत्यु न चैवेन्द्रियमन्दता ।
नोपद्रवास्तथैवाऽन्ये सेव्यमाने रसोत्तमे ।।
प्रतिज्ञा भिषजा कार्या रसेऽस्मिन्सस्थिते करे ।
एष चिन्तामणि प्रोक्तो भिषजा चित्ततोषदः

जनयेत्तत्क्षणादग्नि मृतस्याऽप्युदर गत ।
अध्वजामातृयोगीन्द्रप्रतिज्ञेय सुनिश्चिता ॥
नोचेदस्मादुक्तफल तदेतत्पातक मम ॥

—र० यो० सा० ।

कछुआ और क्रौचकी हड्डिया, मेढे का सीग, इनका बारीक चूर्णकर सेहुण्ड के दूध मे बारीक पीस क्रम से हीरे पर आधा अगुल मोटा लेप देवे । फिर २–३ कपड मिट्टी देकर सुखाकार दो सेरकण्डो की आच दे । लाल होने पर कुलथीकेक्वाथ मे बुझावे ऐसे ७ वार कर के क्षोरक चुक कन्द को कोरके गर्तवनाय हीरे को रख ऊपर से निकले हुए गूदे से बन्दकर ४–५ कपड मिट्टी देकर सुखाकर कन्दजलनेतक की आच देकर गर्मसम्पुट को एरण्ड के पत्तो के स्वरस मे बुझावे । फिर दूसरे कन्द मे बन्द कर पुट देकर बुझावे । ऐसे ७ वार कर के केवल हीरे को गरम कर ७ वार स्त्रियो के दूध मे बुझावे । फिर गन्धक और काँटे वाली चौलाई की जड को पीस कर हीरे पर लेप कर वज्रमूषा मे रख धमन करे । लाल होने पर चौलाई का रस देकर ठडा करे । फिर गरम कर ४ वार बुझावे । इसके बाद पक्की खरल मे फोडकर देखे अगर न फूटे तो फिर गन्धक और काटेवाली चौलाई की जड का लेप देकर धमन करे। इस तरह इसकी भस्म हो जायेगी । फिर इस भस्म की वरावर षड्गुणगन्धकजीर्ण शुद्धपारा मिलाकर एक दिन शुष्क मर्दन कर मर्यादवेलप्रभृति दिव्यौषधियो के स्वरस से ७ दिन तक मर्दन कर शरावसम्पुट मे बन्द कर ३–४ कपड मिट्टी देकर ८ कर्ष धान के छिलको की आच दे । ऐसे प्रत्येक पुट मे १–१ पल छिलके बढाता जाय । जब रस का रग इन्द्रधनुष के सदृश चित्रविचित्र हो जाय तब इसकी वरावर षड्गुणगन्धकजारित दूसरा पारा डालकर पूर्वोक्तरसो से मर्दन कर टिकिया बनाय धान के छिलको की क्रमवृद्ध आच दे । ऐसे ७ पुट हो जाने के बाद इससे चतुर्थांश सुवर्णका बारीक चूर्ण अथवा वर्क और पारे को पूर्वद्रवो मे घोटे। पिष्टी बनने पर पूर्व रस मे मिलाकर विजोरे के रस से ७ दिन तक मर्दन कर टिकडी बनाय शराव-सम्पुट मे बन्द कर पहिले से कुछ अधिक जगली कण्डो की आच दे । इस प्रकार बारम्बार १–१ दिन विजोरे के रस मे मर्दन कर कण्डो का प्रमाण बढा बढा कर जब तक पूरा गजपुट न हो जाय तब तक आचे दे । गजपुट होने पर बीरबहुट्टी से भी शतगुणित इसकी लाल भस्म होगी । फिर इसमे षड्गुणगन्धकजारित वरावर का पारा मिलाय विजोरे से मर्दन कर आच दे । इस तरह ६४ पुट होने के बाद खुलीमूषा मे रखकर पुट देने से अथवा धमन करने से यह नही उडेगा, इसलिये इसे क्षीणपक्ष समझना । वज्र मे आयु, सुवर्ण मे बल और पारे मे

रोग का नाश रहता है ये तीनो जिस रस मे रहते हो उसी का नाम रस है और जो मूल अथवा पाषाण के योग से तैयार किये जाते है वे सब रसाभास है। रसाभासो मे भी अग्नि पर खपडे मे रक्खा हुआ जो रस न उडे, धूम और चटचटाकार से रहित हो वह यदि अच्छी तरह से शुद्ध किया हो तो वह भी रोग गणो को दूर करता है दूसरा नही। पूर्वोक्त प्रकार से वज्र और सुवर्ण के योग से किया हुआ रस विश्वेश्वर नाम को प्राप्त होता है। यह रस आधीराई के प्रमाण मे मरिच और घी के साथ सेवन करने से तत्क्षण अग्नि को प्रदीप्त करता है। तीन पहर मे समस्त सन्निपातो को हटाता है और साध्य अथवा असाध्य महाव्याधियो को नष्ट करता है। सौ वर्ष से अधिक आयु वाले को भी उत्तम वाजीकरण का काम देता है। पुत्र वगैरह प्रियवस्तु को भी इसके शुल्क मे देकर इसका सग्रह करना उचित है यह रस जिस जगह रहता है वहा पर भूत, डाकिनी, ब्रह्मराक्षस, आठ प्रकार के महाव्याधि, योनिदोष, १८ प्रकार के कुष्ठ, स्थावर और जगमविष, सब प्रकार के पाप, तोतलापन खडे नही रहते। इसके निरन्तर सेवन से बहुत लम्बी आयु को भोगता है उसे व्याधि, बुढापा, मृत्यु, इन्द्रियो की मन्दता तथा अन्य कोई भी उपद्रव बाधा नही पहुचाते। अन्य रसो के सेवन करते समय कुपथ्य से जैसे नानातरह के उपद्रव होते है वे इससे नही होते। यह रस तैयार हो तो असाध्य से असाध्य रोग मे भी "इसको इतने समय मे मिटावेंगे" ऐसी प्रतिज्ञा कर सकता है।

वैक्रान्तरसायनम् (प्रथमम्)

वज्राभ्रकीयसत्त्वस्य कर्पमेक समाहरेत् ।
निष्कार्द्धं भस्म वैक्रान्त भस्म पारदज समम् ॥
स्वर्ण रौप्य प्रवालञ्चमाक्षिक वृद्धदारुकम् ।
तुगाक्षीर्यमृतासत्त्व कर्पमान पृथक्पृथक ॥
पुराणसर्पिषा क्षौद्रसिताभ्या सह योजितम् ।
धान्यराशौ क्षिपेन्मास माषमात्रनिषेवणात् ॥
जरा न लभते स्थैर्य धाराष्णक्षीरपायिनाम् ।
रोगसघा क्षय यान्ति वैद्यौषधविवर्जिता ॥

नू० क०, रसायने ।

वज्राभ्रकसत्त्व १ कर्ष, वैक्रान्त और पारदभस्म २-२ माशे, सुवर्ण, रजत, प्रवाल, सुवर्णमाक्षिक इनकीभस्मे, विधारा, वशलोचन और गिलोयसत्त्व १-१ कर्षलेकर पुराना घी, मधु और शक्कर अन्दाज मे मिलाकर घी के वर्तन मे रख मुह वन्द कर धान्यराशि मे गाड़ दे एक महीने वाद निकालकर १-१ माशे की मात्रा अथवा रोग और रोगी का वलावल देखकर मात्रा कायमकर धाराष्णदूध के साथ देने से वुढापा नष्ट होता है और जिन रोगो मे वैद्य तथा औषधियो ने जवाव दे दिया हो वे असाध्य रोग नष्ट हो जाते है ।

कल्पपादपोरसः

विंशभागमित ताम्र मूताद्‌ भागत्रया शिला ।
तावन्त्येव प्रमाणेन भव्यभल्लातकानि च ॥
भवन्ति तानि तावन्ति तन्मध्ये सकलानि च ।
हण्डिकायन्त्रमध्यस्थ ताम्रे सर्वं समाक्षिपेत् ।
द्विगुण गन्धक दत्त्वा अधस्ताच्चोर्ध्वक क्षिपेत् ।
पचयामावधि र्यावत्तावच्चुल्या परिक्षिपेत् ॥
उत्तार्यते स्वयशीत तत्ताम्र मृतमुच्यते ।
पिप्पत्या स्वरसेनादौ चिंचिकास्वरसेन तत् ॥
भावनाच पुटान्दद्यात्प्रत्येक पचपच च ।
रेचनाय तत. स्थाप्य किंचित्तस्माच्च ताम्रत ॥
पिप्पल्या सहित दद्यात्सम पर्णेन मापकम् ।
तदेतद्रेचयेत्सम्यग् यावद्यामावधि भवेत् ॥
नैव क्लेदो नातिमूर्च्छा वान्ति भ्रान्ति र्न विद्यते
अथान्यद्यद्भवेत्ताम्र भावयेत्त्रिफलाम्वुभि· ॥
काकमाचीरसस्याथ भावनात्रितयं त्रयम् ।
धुतूतरस्य रसस्यापि भृंगराजस्य भावना. ॥
चतुर्गुणामित दद्यात्त्रिकटुस्त्रिफला समा ।
जातीफल लवग च चूर्णं कृत्वाऽथ नि.क्षिपेत् ॥

पर्णखण्डेन तत्सार्धं पुनस्ताम्बूलचर्वणम् ।
मुखशुद्धयर्थमितस्य तत्फलश्रुतिरुच्यते ॥
सन्निपातेऽपि सजाते विषमे वाग्निनाशने
कूष्ठे सकुष्ठे दुष्टे च सव्यये पवनात्यये ॥
सामे निरामे कामे च दातव्योऽसौ महारसः ।
घस्मरे चाप्यपस्मारे कासे श्वासे विशेषतः ॥
पाण्डुरोगे च विगभेद उदरे अवलेऽपि च ।
घृतादिकच यद्युक्त तत्सर्व भस्मसाद्भवेत् ॥
कालत्त पलित हन्ति खलितच विशेषत ।
दीर्घायु॰ कामरूपी च स्त्रीणामत्य तवल्लभ. ।
उत्साही स्मृतिमान् प्रायो मेघावी सुस्वर. पर
ब्रह्मास्त्र यद्यसिद्ध स्याद्धरेश्चक्रच निष्फलम् ।
शिवशूलमथायाति शक्रशस्त्र निवर्तते ॥
तदाऽय सर्वरोगेपु प्रयुक्त॰ प्रतिहन्यते ।
स्वय स्वयम्भू र्भगवान् यदि वेधा विधानवित् ॥
जानाति नो नूनमस्य रसराजस्य तन्मह. ।
य एन सेवते नित्य न कालकलना व्रजेत् ॥
भगराजस्य य॰ कल्पो य कल्पः शालमलीभवः
हरीतक्याश्च य कल्पो दन्तीकल्पोऽपि विद्यते ॥
सोमराज्याः परः कल्पो रुदन्त्या अपि य॰ परः ।
भल्लातकस्य य कल्पस्तथा निर्गुण्डिकाभव. ॥
लोहकल्पोऽपि य प्रोक्त कल्पो गोक्षुरकस्य च ।
ब्रह्मयोगोऽस्ति यो भूमौ विष्णुयोगो महोत्तम ।
रुद्रयोगस्तु विख्यातो योगियोगोऽपिदृश्यते ।
गुटिका मूलिका मर्त्ये विद्यन्ते देहसाधने ॥
एतस्मान्नपरा सर्वे विद्यन्ते नाधिका रसा ।
एवसम्यग् हृदि ध्यात्वा स्मर्तव्य कल्पपादपः ॥

—र० का०, रसायनें ।

ताम्र के वारीक पत्र 20 भाग, शुद्ध पारा 20 भाग, मैनसिल 3 भाग, इन तीनो के बरावर भिलावा लेकर पहिले तावे के पत्र और पारे को खरल मे डालकर बिजोरे अथवा जम्भीरी नीवू के रस से यहा तक खरल करे कि तमाम पारा तावे के पत्रो पर चढ जाय फिर भिलावो को कूटकर आधा लुगदा कपड मिट्टी को हुई हाडी के वीच मे विछाकर ऊपर तावे से द्विगुण गन्धक लेकर आधा गन्धक भिलावो के ऊपर विछादे, गन्धक के ऊपर आधी मैनसिल विछादे । फिर उस पर तावे के पत्रो को रखकर ऊपर फिर क्रम से वची हुई मैनसिल, गन्धक और भिलावे धरके सम्पुट करके मुह पर तीन चार कपड मिट्टी कर दे और 5 पहर की अग्नि देवे । स्वागशीतल होने पर उतार कर इस मरे हुए तावे को रख छोडे । इसमे पीपल, इमली इनके स्वरसो से २ भावनाए देकर थोडा सा हिस्सा इसमे से लेकर अर्थात् जितने की जरूरत हो उतना रख छोडना, इसमे से १ माशा ताम्र और १ माशा पीपल पान मे रखकर खिलाने से यह १ पहर तक अच्छी तरह रेचन करावेगा उसमे चित्त का मिचलाना, मूर्च्छा, वान्ति तथा भ्रान्ति ये कुछ भी उपद्रव नही होगे । वाकी का वचा हुआ जो तावा है उसको मकोय, धतूरा तथा इस प्रत्येक की तीन तीन भावनाए देकर रख लेना यह कल्पपादप रस तैयार हो गया । इसकी 4 रत्ती त्रिकटु, त्रिफला, जायफल, लौग, ये सव समभाग लेकर इनके चूर्ण मे से १ माशा के साथ पान मे रखकर खिलावे ऊपर से लगा हुआ पान दे तो घोर सन्निपात, विपमज्वर, मन्दाग्नि, कुष्ठ, दुष्टव्रण, पवन की अधिकता, साम अथवा निरामज्वर, कास, श्वास, पाण्डु, प्रवाहिका, वा विष्टम्भ उदररोग इन सवको यह नष्ट करता है । घृतादियुक्त जो पथ्य भोजन है उसको मात्रा से अधिक खा लेने पर भी यह भस्ममात् कर देता है । समय पर आये हुए भी वलीपलित को नष्ट करता हुआ आदमी को वज्रकाय वना देता है । इसके खाने वाला दीर्घायु, कामरूपी, स्त्रियो का अत्यन्त वल्लभ, उत्साही, स्मृति और मेघवान ओर सुस्वर हो जाता है । इसीलिए इसका नाम कल्पपाद रखा है । इसको यथोचितानुपान के साथ देने से रोग हरण और रसायन इन दोनो का काम करता है इसलिये इसको समस्त रोगो मे तत्तद्रोगानुपान के साथ देकर वैद्य लोग अपने यश को कमावे । इसकी वरावरी करने वाले रस वहुत कम है ।

हीरावेध्यो रसः

द्वौ भागौ मृतहीरस्य ह्यभ्रकस्य त्रय पुन ।
भस्म सूतस्य चत्वार पद्शुद्धगन्धकस्य च ।।

मृतलोहस्य द्वौ भागौ चत्वारस्तारकस्य च ।
रोचनाया भवन्त्यत्र भावना पच सूतके ।।
तथा सुवर्चलायाश्च दातव्या भावना: क्रमात् ।
अथो दृढाया मूषाया मध्ये दत्त्वा च त रसम् ।।
पुन शरावद्वितये दत्त्वा पश्चाद्विमुद्रयेत् ।
हस्तप्रमाणके कुण्डे पुटो देय. शनैर्लघुः ।।
द्वियाम यावदेवैतच्छोतमादाय त रसम् ।
विधाय भरवस्याऽथ पूजन भिषजस्तत ।।
गु जामेकममु दद्याद्धीरावेध्य रसेश्वरम् ।
मरिचेन सम प्रातस्ततस्ताम्बूलभक्षणम् ।
क्रोधमात्सर्यमुत्सार्य व्यायाम धर्मसेवनम् ।
अतिप्रलपन चिन्तामभ्यसूया च वर्जयेत् ।
असत्यभाषण चैव पथ्य सेव्य निरन्तरम् ।
अनेन जायते पुष्टिर्दृष्ट्यारोग्यच जायते ।।
अनेन सुखमाप्नोति पुत्र चानेन चोत्तमम् ।
अनेन नश्यते वायुरनेनायुश्च वर्धते ।।
अनेन लभते कान्तिमनेनापि जराजयेत् ।
अनेन पलित याति खालित्यच विशेषत ।।
अनेन वज्रकाय स्याद्विशेषेण निरामय ।
स्थावर जगमचापि कृत्रिमचापि यद्विषम् ।।
अनेन न प्रभवति सेवमानस्य न क्वचित् ।
अनेन देवरूप स्याज्जायते बुद्धिरुत्तमा ।।
क्षय कास प्रमेहच रक्तपित्त सुदारुणम् ।।
विद्रध्यष्ठीलिके गुल्म ग्रहणीमपि दुस्तराम् ।।
अतिसार महाघोर सर्वान् व्याधीश्च नाशयेत् ।।

—(रसे० चि० म० १, अ० ७)

हीरा भस्म २ भाग, अभ्रक भस्म ३ भाग, पारद भस्म ४ भाग शुद्ध गधक ६ भाग, लोह भस्म २ भाग और चादी भस्म ४ भाग लेकर सबको एकत्र खरल करके गोरोचन के पानी

की तथा हुलहुल के स्वरस की ५-५ भावना द । तदनन्तर उसे एक दृढ मूषा में रखकर उस मूषा को २ शरावो के सम्पुट मे वन्द करके १ हाथ गहरे और इतने ही लम्वे चौडे गढे मे रखकर इतने कण्डो मे फूके कि जिसमे २ पहर मे अग्नि शान्त हो जाय । तत्पश्चात् उसके स्वागशीतल होने पर उसमे से औपध को निकाल कर भैरव और वैद्य का पूजन करके उसे सुरक्षित रखे।

इसमे से १ रत्ती रस काली मिर्च के चूर्ण के साथ (उचित अनुपान से) प्रात काल खिलाकर ऊपर से पान खिलाना चाहिये ।

इसके सेवनकाल मे क्रोध, मात्सर्य, व्यायाम. धूप मे जाना, अधिक वोलना, चिन्ता, चुगली और असत्यभापरण का त्याग करके सदा पथ्य सेवन करना चाहिये ।

इसके सेवन से पुष्टि, दृष्टि, आरोग्य, सुख, सन्तान, आयु और कान्ति की वृद्धि होती है तथा वायु का नाश होता है । यह रस जरा (वृद्धावस्था) पलित, और विशेपत खालित्य को नष्ट करता है । यह शरीर को निरोग और वज्र के समान दृढ वना देता है। इसे सेवन करने वाले पर स्थावर, जगम या कृत्रिम विष का प्रभाव नही पडता ।

यह रस वुद्धि को वढाता और क्षय, कास, प्रमेह दारुण रक्तपित्त, विद्रधि, अष्ठीला, गुल्म, सग्रहणी और घोर अतिसारादि को नष्ट करता है ।

त्रैलोक्यचिन्तामणिरसः (द्वितीयः)

हीर सुवर्णं सुमृतच तार-
मेषासम तीक्ष्णरजश्चतुर्णाम् ।
सम मृताऽभ्र रसभस्मकच
निष्पिष्य तीक्ष्णस्य तथाऽश्मनोवा ।
खल्वे द्रवेरणैव कुमारिकाया-
गुंजाप्रमारणा वटिका प्रकुर्यात् ।
त्रैलोक्यचिन्तामणिरेष नाम्ना ।
सम्पूज्य सम्यग् गिरिजा दिनेशम् ।।

हन्त्यामयान् योगशतैर्विवर्ज्या-
नथ प्रणाशाय मुनिप्रणीतः ।
अस्य प्रसादेन गदानशेषान्
जरा विनिर्जित्य सुख प्रयाति
स्निग्धे श्लेष्माण्यार्द्रकस्य रसेन पाययेत्सुधी· ।
शुष्के च माक्षिकेणैव पित्ते घृतसितायुतम् ।।
श्लेष्मणा मारुते युक्ते दुष्टे च समता गते ।
कणाचूर्ण क्षौद्रयुत प्रमेहे दुग्धसयुतम् ।।
बलवर्णाऽग्निजनन कासघ्न: कफवातजित् ।
आयु पुष्टिकरो वृष्य: सर्वरोगनिपूदन ।।

हीरा, सुवर्ण, रजतभस्म १-१ भाग, लोहभस्म ४ भाग, इन सबकी बराबर अभ्रक भस्म और पारद भस्म लेकर सबको मिलाय खूब चिकने लोहे अथवा पत्थर की खरल मे घीकुआर के रस से १-२ रोज मर्दन कर १-१ रत्ती की गोलिये बनाकर छाया शुष्क कर रख छोडे। इनमे से १-१ गोली गिरिजा और सूर्य की पूजाकर आर्द्र कफ मे अदरख के रस के साथ, सूखे हुए मे मधु के साथ, पित्त घी और शक्कर के साथ श्लेष्मयुक्त वायु मे पीपल के चूर्ण और मधु के साथ, प्रमेह प्रभृति मे दूध के साथ देने से यह इन तमाम को नष्ट कर बल वर्ण और अग्नि को पैदा करता है । खासी और कफ को दूर कर सब रोगो को नष्ट करता हुआ आयु और पुष्टि को बढाता है और अत्यन्त वृष्य है। जो रोग हजारो दवाओ के देने से शान्त न हुए हो उनको भी यह दूर करता है।

वज्ररसायनम् (द्वितीयम्)

त्रिशद्भागमित हि वज्रभसित स्वर्णं कलाभागिकं,
तार चाष्टगुण शिवामृतवर रुद्राशक चाभ्रकम् ।
पादाश खलु ताप्यक वसुगुण वैक्रान्तक षड्गुण,
भागोऽप्युक्तरसाद्वरोऽयमुदित. पाड्गुण्यसंसिद्धये ।।

—र० चू०, रसायने ।

हीराभस्म ३० माशे, सुवर्णभस्म १६ माशे, रजतभस्म ८ माशे, हर्रे और शुद्ध वत्सनाग ११-११ माशे, अभ्रक भस्म ४ माशे, सुवर्णमाक्षिक ८ माशे, वैक्रान्तभस्म ६ माशे लेकर सबको मिलाकर रख छोडे। इसका चतुर्थांश भी रसायन प्रकार से खाने से समस्त रोगो से निवृत होकर मनुष्य को दिव्य देह सिद्धि होती है।

ताक्ष्र्यरसायनम्

ताक्ष्र्यभस्मकशाणैक वज्रभस्म तदर्धकम्।
मृतस्वर्णार्ककान्ताना निष्कद्वयमित पृथक्
लोहभस्म मृत सूत सर्वमेकत्र मर्दयेत्।
पुटेद्विशतिवाराश्च पुटै कुक्कुटसज्ञकै।
अमृताम्बुसमायुक्तै शिलागन्धकतालकै।
सप्तवार द्रवै सार्द्ध दशभि पुटकै पुटेत्॥
एवसिद्ध प्रभावाढ्य ताक्ष्र्य नाम रसायनम्।
चित्रार्द्रकरसोपेत पीत राजिकया मितम्।
त्रिदोषजान्गदान्सर्वान् कफवातोद्भवानपि।
असाध्यान्सर्ववैद्याना भेषजानाश्च कोटिभि।
करोति क्षुधमत्यर्थं भुक्त जारयति क्षणात्

—र० चू० रसायने।

ताक्ष्र्यभस्म (पन्ने की भस्म, गारुत्मत मरकतमश्मगर्भ हरिन्मणि इति वैजयन्ती) १ शाण, हीरे की भस्म आधा शाण, सुवर्ण, तांबा कान्त, तीक्ष्ण और पारा इन सबकी भस्मे २-२ शाण लेकर मैनसिल गन्धक और हरिताल ये सबसे चतुर्थांश लेकर गुडूची के रस से मर्दन कर गोला बनाय सुखाकर गजपुट दे। ऐसे १० बार पुट देने से यह ताक्ष्र्यरसायन सिद्ध होगा। इसमे से १-१ राई जितनी मात्रा चित्रक और अदरख के रस के साथ देने से त्रिदोषज समस्त रोग, कफवातज तमाम रोग और जो रोग सब वैद्य और औषधो के काबू मे नही आते है उन सबको यह नष्ट करता है। इसके सेवन से अग्नि इतना प्रदीप्त होता है कि अत्यन्त भारी और पेट भरकर खाया हुआ खुराक तत्क्षण हजम हो जाता है।

गोमेदकरसायनम्

गोमेद गन्धयोगेन लकुचद्रवयोगिना ।
पुटित्वा दशवारैश्च जात भस्म पलोन्मितम् ॥
सुवर्ण रजत कान्त सर्वमौषधमारितम् ।
क्रामण पादपादेन ग्रसित चूलिकाम्बुना
पुटित तापिगन्धर्वतैलेन दशवारकम् ।
निरुत्थ जायते भस्म सर्वथैव गुणाधिकम् ॥
तदर्धसूतगन्धाभ्या घृतकाचलिकाद्रवै ।
पूर्वभस्मत्रय क्षिप्त्वा विनिष्पिष्य समाहरेत् ॥
विचूर्ण्य मुण्डिकाद्रावै भावयेत्सप्तवारकम् ॥
पटचूर्ण विधायाथ क्षिपेदन्त करण्डके ।
इद हि परमश्रेष्ठ गोमेदकरसायनम् ॥
योज्य सर्वेषु रोगेषु तत्तद्रोगानुपानत
करोति दीपन तीव्र सर्वाहिंच प्रियकरम् ॥
पादयेत्परमा पुष्टि बल भीमबलोपमम् ।
परमं वृष्यमायुष्य नेत्र्य मुखगदापहम् ॥

—र० चू०, रसायने ।

गोमेद को अग्नि मे तपाकर बडहर के रस मे सात बार बुझावे तो इसके टुकडे हो जायेगे । फिर उस चूर्ण को रस मे से निकालकर बराबर का गन्धक देकर बडहर के रस से एक दो रोज मर्दन कर शराव सम्पुट मे बन्द कर लघुपुट की आच दे इस तरह दस आच देने से इसकी भस्म हो जायेगी । इसमे से ४ तोले लेकर रखना फिर सुवर्ण भस्म, रजत भस्म, कान्तपाषाण भस्म और शिगरिफ से मारा हुआ कान्तलोह ये सब ४–४ तोले लेकर अलग रखना । फिर मेनसिल से मारा हुआ नाग हरिताल से मारा हुआ वग, शुद्ध बछनाग, शुद्ध शिगरिफ सोनामाखी से मारा हुआ ताम्र माक्षिकसत्त्व, सोनागेरु ये सब १–१ तोला लेकर इन सात चीजो को हाथी के मद अथवा घी कुंआर के रस से मर्दन कर शराव सम्पुट मे बन्द कर लघु पुट की आच दे । इस प्रकार दस आच देने के बाद आकडे के बीजो का तैल और लाल एरण्ड क बीजो का तैल इन प्रत्येक मे घोट घोट कर दस १० बार लघु पुट देने से इनकी निरुत्थ भस्म हो जायेगी । इस भस्म से आधा पारा और गन्धक पूर्व की तीनो भस्मे

(अर्थात गोमेद और सुवर्णादि, तथा नागादि) सब एक जगह मिलाकर घी कुआर के रस से अच्छी तरह पीस कर सुखाकर गोरखमुण्डी के स्वरस की सात भावनाएं देकर सुखाकर कपडे मे छानकर रख छोडे । यह गोमेदकरसायन तैयार हुआ । इसकी १ रत्ती से ३ रत्ती तक मात्रा तत्तद्रोगहरानुपान के साथ देने से मन्दाग्नि, समस्त प्रमेह, वार्धक्य, कृशता, निर्बलता, धातुशोप, राजयक्ष्मा जीर्णज्वर तथा समस्त रोग और मुख के तमाम रोग नष्ट होते हैं ।

मध्यम योग

नवग्रहरसः (द्वितीयः)

गौरी शिला हिंगुलगन्धकञ्च
रसञ्च दुग्धाऽश्ममयूरतुत्थम् ।
तालं शिला खर्परसंयुतञ्च
कृत्वा समांश नवरत्नमध्ये
सकारवल्ली रसनिम्बतोयैं
यामद्वयेनाऽपि विमर्द्य गाढम् ।
कूप्याश्च मध्ये विनिवेशयेच्च
सवालुकाऽग्नि च दिनं ददीत
सुस्वांगशीतञ्च समुद्धरेत्तु ।
व्रीहिप्रमाणं नवनीतयुक्तम् ।
समस्तवातादिसपायुजञ्च
सग्रन्थिकोटिम्बहुमार्गजालम्
निवारयेच्चाऽपि विचित्रमेत-
न्नीरोगदेही सुखमाप्नुयाच्च ।
नवग्रहो नाम रसोत्तमो हि
समस्तगुल्मोदरशूलनाशी ।

—र० क० यो० गुल्मे शूले च ।

सोमल शिगरिफ, गन्धक, पारा, गोदन्ती, तुत्थ, हरिताल, मैनसिल, खपरिया ये सब सम-भाग लेकर वारीक चूर्णकर करेला और नीम के रसो से २ २ पहर मर्दन कर सुखाकर ६–७ कपडमिट्टी दी हुई आतशी शीशी मे डालकर मुह बन्द कर वालुका यन्त्र मे रख एक रोज अग्नि जलाकर स्वागशीतल होने पर निकाल कर रख छोडे। इसमे से १ चावल भर मात्रा मक्खन के साथ देने से समस्त वातविकार, ववासीर ग्रन्थि फैलने वाला फोड़ा, इन सबको यह नष्ट करता हुआ शरीर को नीरोग कर गुल्म तथा शूल को नष्ट करता है।

क्रव्यादरसः (प्रथम)

द्विपल गन्धक शुद्ध द्रावयित्वा विनि क्षिपेत्।
पारद पलमानेन मृतशुल्वायसी पुन:
कर्षमानेन सम्पिष्य पचागुलदलेक्षिपेत्।
ततो विचूर्ण्य यत्नेन नि· क्षिप्यायसपात्रके
चुल्लया निवेश्य यत्नेन चालयेन्मृदुवह्निना।
पात्र पात्र हि जम्वीररस तत्र प्रदापयेत्
पचकोलसमुद्भूतै. कषायै. साम्लवेतसै।
भावना खलु दातव्या. पचाशत्प्रमितास्तथा ।।
भृष्टटकणचूर्णेन तुल्येन सह मेलयेत्।
तदर्धं पचलवणै सर्वतुल्यमरीचकै ।।
सप्तधा भावयेत्पश्चाच्चणकक्षारवारिणा।
तत सशोष्य सम्पेष्य कूपिकाभ्यन्तरे क्षिपेत् ।।
अत्यन्तगुरुभोज्यानि गुरुमासान्यनेकश।
भक्षेच्चाऽऽकण्ठपर्यन्त ततो देयो रसोत्तम ।।
चतुर्वल्लमितो देयस्तक्रै सलवणैरपि।
भुक्त जीर्यति तत्क्षिप्र जायते दीपन परम्
रस क्रव्यादनामाय प्रोक्तो मन्थानभैरवै ।।
सिहलक्षोणिपालाय भूरिमासभुजे पुरा ।।
तत क्रव्यादयप्रोक्तो ढप्रत्ययकारक:

कुर्याद्दीपनमुद्धत पवनजे देहे पर शोषण,
तुन्दस्थौल्यनिवर्हणो गदहरो दुष्टव्रणार्तिप्रगुत् ।
कासश्वासविनाशनो ग्रहणिकाविध्वसनः स्रसनो,
गुल्मप्लीहजलोदरोपशमन क्रव्यादनामा रसः ।
विश्वहिगुविडै सार्ध क्रव्यादो भक्षितोरस ।
गुल्मानशेषान् प्लीहान विद्रधीनपि नाशयेत् ॥

आठ तोले शुद्ध गन्धक को गलाकर इसमे शुद्ध पारा ४ तोले ताम्र भस्म १ तोला, लोह–भस्म १ तोला डालकर खूब चलादे। एक जीव होने पर भैस के ताजे गोवर पर रखे हुए एरण्ड के यत्ते पर डाल कर दूसरे एरण्ड के पत्र से दवा देवे। स्वाग शीतल होने पर इन पपडियो को निकाल कर खूब बारीक चूर्णकर इसको कडाही मे डालकर चूल्हे पर रखे, इसमे चार चार सेर २ वार मे जम्भीरी का रस डालकर मन्द अग्नि पर पकावे और चलाता रहे। रस सूख जाने पर पचकोल के कोढे की और अम्ल–वेत के रस या काढे की पचास ५० भावनाए देकर भुने हुए सुहागे का चूर्ण सबकी वरावर डाले और उससे आवे पचलवण (सेन्धव, सामुद्र, विड, सौवर्चल और औदिद) और सव की वरावर मरिचका चूर्ण डालकर चण कक्षार की सात भावनाए देकर सुखाकर डेढ डेढ माशे की गोलिये वना रखे। यह क्रव्यादरस तैयार हुआ। इसकी एक एक गोली भोजन करने के वाद लवण मिले हुए तक्र के साथ देने से अत्यन्त भारी पदार्थ और नानातरह के मास ये कण्ठ तक खाये हुए हो तो भी रस के देते ही जीर्ण हो कर अग्नि प्रदीप्त हो जाता है और दूसरे भोजन करने की इच्छा हो जाती है, मेदस्वी पुरुप को अत्यन्त सुखाता है। वायु को निवृत करता है दुष्ट व्रण, श्वास कास, ग्रहणी, गुल्म, प्लीहा, जलोदर विद्रधि इन रोगो मे सोठ, हीग और सचल इनके चूर्ण के साथ देने से सवको नष्ट करता है यह रस मास भोजन मे अत्यन्त प्रीति वाले सिहल नरेश के लिये मन्थानभैरव ने बनाकर दिया था।

महामृत्युञ्जयलौहम्

शुद्धसूत सम गन्ध जारिताभ्र सम तथा ।
गन्धस्य द्विगुण लौह मृतताम्र चतुर्गुणम् ॥ १३१ ॥

द्विक्षारं सैन्धवविड वराटीशंखभस्मकम् ।
चित्रकं कुनटी नाल रामठ कटुकी तथा ॥ १३२ ॥
रोहीतकं त्रिवृच्चिञ्चा विशाला धवलाकठः ।
अपामार्ग तालरण्डमम्लिका च निशाद्वयम् ॥ १३३ ॥
प्रियङ्ग्विन्द्रयव पथ्या चाजमोदा यमानिका ।
तुत्थकं शरपुखा च यकृन्मर्दो रसाञ्जनम् ॥ १३४ ॥
प्रत्येकं शाणमानेन भावयेदार्द्रकद्रवैः ।
गुडूच्याः स्वरसेनापि मधुन कुडवार्द्धकम् ॥ १३५ ॥
वटिका कारयेद्वैद्यो गुञ्जाद्वयमिता पुन ।
अनुपान प्रदातव्य बुद्ध्वा दोषानुसारत ॥ १३६ ॥
भक्षयेत्प्रातरुत्थाय सर्वरोगकुलान्तकम् ।
प्लीहान ज्वरमुग्रञ्च कासञ्च विषमज्वरम् ॥ १३७ ॥
आमवात यकृच्छूल श्वासमर्शः शिरोरुजम् ।
गुल्मशोथोदरानाहमग्रमास यकृत्क्षयम् ॥ १३८ ॥
सकामल पाण्डुरोगमुदरञ्च सुदारुणम् ।
रोगानीकविनाशाय केशरी करिणे यथा ॥ १३९ ॥
मृत्युञ्जयो महालौहः प्लीहगुल्मविनाशन ।
प्राणिनान्तु हितार्थाय शम्भुना परिकीर्त्तितः ॥ १४० ॥

—भै० र० ।

पारद, गन्धक, अभ्रकभस्म; प्रत्येक आधा तोला, लौहभस्म १ तोला, ताम्रभस्म २ तोले, यवक्षार, सर्जिक्षार, सैन्धानमक, विडलवण, कौडीभस्म, शखभस्म, चित्रक, मनःशिला, हरिताल, हीग, कटुकी, रोहीतक छाल, निसोत, इमलीछालक्षार, इन्द्रायण की जड, धवलाकठ (ढेरामूल) अपामार्गक्षार तालजटाक्षार, अम्लवेतस, हल्दी, दारुहल्दी, प्रियगु, इन्द्रजौ, हरड, अजमोदा, अजवाइन, शुद्ध तूतिया, शरपुखा, यकृन्मर्द (रोहीतक छाल), रसौत; प्रत्येक ४ मासे (आधा तोला)। इसे अदरक तथा गिलोय के रस से भावना देकर २ पल (१६ तोले) शहद मिला २ रत्ती की वटी बनावे। दोष के अनुसार अनुपान की कल्पना करनी चाहिये। इसके सेवन से प्लीहा, ज्वर, कास, विपमज्वर, आमवात, यकृच्छूल, श्वास, अर्श, शिरोरोग, गुल्म, शोथ, उदररोग, आनाह, अग्रमास, यकृत्क्षय (Cirrhosis of the liver) कामला, पाण्डु प्रभृति रोग नष्ट होते हैं।

इसे प्रात:काल सेवन कराना चाहिये । यह लौह विशेपत: प्लीहा एव गुल्म रोग को नष्ट करता है ।

अजीर्णकालानलो रसः

द्विपल शुद्धसूत च गन्धक च सम मतम् ।
लौह ताम्र तथा ताल विप तुत्थ सवगकम् ।।
पलप्रमाण च पृथग् लवग टंकण तथा ।
दन्तीमूल त्रिवृच्चूर्णमेकैक पलसम्मितम् ।।
अजमोदा यवानी च द्विक्षारौ लवणानि च ।
पृथगर्धपल ग्राह्य मेकीकृत्य च भावयेत् ।।
आर्द्रकस्वरसेनैकविंशति पचकोलजे ।
दशधा भावयेत् तोयैर्गुडूचीना रसैर्दश ।।
सर्वार्ध मरिच दत्वा छायाया परिशोपयेत् ।
चणमात्रा वटी कृत्वा काचकूप्या च धारयेत् ।।
रसोऽजीर्णवले कालानल एप प्रकीर्तित ।
अनेककालनष्टाग्नेर्दीपन परम स्मृत ।।
आमवातकुलध्वसी प्लीहपाण्डुगदापह ।
प्रमेहानाहविष्टम्भसूतिकाग्रहणीहर ।।
श्वासकासप्रतीश्यायक्ष्मक्षयविनाशन. ।
अम्लपित च शूल च भगन्दरगुदोद्भवौ ।।
अष्टोदराणि प्लीहान यकृत हन्ति दारुणम् ।
आकण्ठ भोजयित्वा तु खादयेच्च रसोत्तमम् ।।
अर्धयामेन तत्सर्व भस्मीभवति निश्चितम् ।
चतुर्विधरसोपेत, महाभोजनमिच्छत ।।
भोजस्य नृपते काक्षा भोजने कृपया कृता ।
गहनानन्दनायेन सवलोकहितैपिणा ।।

र० सु०, व० रा०, अजीर्णाधिकारे ।

शुद्ध पारा और गन्धक प्रत्येक ८ आठ तोले, लोहा, तावा, हरताल, बछनाग, तूतिया, बग, लौग सुहागा, दन्तीमूल और निसोत का चूर्ण प्रत्येक ४ चार तोले, अजमोद, अजवायन सज्जी, जवाखार और पाचो नमक, प्रत्येक दो तोले लेना । इन सव को मिलाकर २० बार अदरख के रस से भावना देना । पचकोल (पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, सोठ) के क्वाथ से १० बार और गिलोय के क्वाथ से दस बार भावना देना फिर सबसे ½ कालीमिर्च मिलाकर वारीक पीसकर चने के बरावर गोलिये वना लेना और छाया मे सुखाकर शीशी मे भर लेना । अजीर्णरोग जब वलवान हो जाता है उसको नष्ट करने के लिये यह कालाग्नि है । बहुत समय से नष्ट हुई जठराग्नि को यह प्रदीप्त करता है । सभी प्रकार के आमवात, प्लीहा, पाण्डुरोग, प्रमेह, आनाह, विष्टम्भ सूतिकारोग, सग्रहणी, दमा, खासी, जुकाम, राज्यक्ष्मा, क्षय, अम्लपित्त, शूल भगन्दर, अर्श आठ प्रकार के उदर रोग और घोर यकृत इन सब रोगो का यह रस नाश करता है । गले तक भोजन के बाद भी इस रस को खाया जाय तो १ पहर के भीतर ही सव खाया हुआ भस्म हो जाता है । राजा भोज जब ४ प्रकार के भोजनो को वडी मात्रा मे खाना चाहते थे तव सव-ससार के हितैपी गहनानन्दनाथ ने कृपा करके उनकी इच्छा को इस रस से पूर्ण किया ।

गगनायस–रसायनम्

कृत्वा धान्याभ्रक श्लक्ष्ण मुस्ताकवाथेन मर्दयेत् ।
दिनैकमातपे तप्त पूप कृत्वा ततः परम् ।।
शरावसम्पुटे क्षिप्त्वा देयश्चोपरि खर्पर ।
वस्त्रमृत्तिकया लेप्य पुट दद्यात्त परम् ।।
स्वागशीतलता याते तच्चूर्ण पेषयेत्पुन. ।
मुस्तानीरेण च क्षुण्ण पूप कुर्यात्पुन पुन. ।
एकविशतिवाराश्च दद्याद्युवतयाऽनया पुटम् ।
वार बारच सचूर्ण्य शरावस्थ तदभ्रकम् ।।
एव हि पुटित व्योम भवेन्निश्चिन्द्रिक परम् ।
एक कान्तायस सिद्धमेतन्निश्चन्द्रमभ्रकम् ।।
सम क्षिप्याथ खल्वे तद्द्रूय पिष्टै्वकता नयेत् ।

रसायन द्वयोर्योगान्निष्पन्न गगनायसम ।।
प्रातरुत्थाय गद्याणो ग्राह्य शीतजलान्वित ।
अष्टादशसु मेहेषु वातश्लेष्मादि रोगिषु ।।
अतिसारेषु पित्तेषु देयमेतद्रसायनम् ।
प्रत्यह प्रातरुत्थाय य करोति सदा नर॰ ।।
तेजस्वी वलवाच्छूरो वलेन गजसन्निभ ।
स्तम्भितो तेन वा हस्ती पदमेक न गच्छति ।।

—(र. चि. । स्तब. 8)

धान्याभ्रक का सूक्ष्म चूर्ण करके उसे एक दिन मोथे के रस मे घोट कर टिकिया वना लीजिये और धूप मे सुखाकर दो शरावो मे वन्द करके ऊपर से कपर मिट्टी करके सुखाकर गजपुट मे फुक दीजिए । स्वागशीतल होने पर निकालकर पुन. मोथे के रस मे घोट कर पुट दीजिए। इसी प्रकार २१ पुट देने से अभ्रक निश्चन्द्र हो जायेगा।

इस प्रकार निर्मित अभ्रक की निश्चन्द्र भस्म १ भाग और कान्त लोह भस्म १ भाग लेकर दोनो को खरल मे घोटकर एक जीव कर लीजिए । इसी का नाम "गगनायस रसायन" है ।

इसे प्रतिदिन प्रात.काल ६ माशे की मात्रानुसार शीतल जलानुपान से सेवन करने से अठारह प्रकार के प्रमेह, वातकफज रोग और पित्तज अतिसार नष्ट होता है ।

इसे सदैव सेवन करते रहने मे मनुष्य तेजस्वी, शूर और हस्तीसदृश वलशाली हो जाता है । यदि वह हाथी को रोक ले तो हाथी एक पग भी नही चल सकता ।

(व्यवहारिक मात्रा २–४ रत्ती)

अभ्रपर्पटी

मृतमभ्र मृत ताम्र गन्धकचैव तत्समम्
कृत्वा पर्पटिका देया जिह्वारोगयुताय तु

शल्लकी क्काथसयुक्ता पचकोलेन वाऽथवा ।
गुंजात्रया निहन्त्याशु जिह्वारोगान्न सशयः ।।

ना. वि., र. म. मा.,

अभ्रकभस्म, तावे की भस्म और गन्धक सबको बराबर लेकर पर्पटी बनाना । उसको शल्ल की (सलई) अथवा पचकोल (पीपल, पीपलामृत, चव्य, चित्रक, सोठ) के क्वाथ के साथ २ रत्ती भर देने से जिह्वा के सभी रोग नष्ट हो जाते है।

आमवातारि वटिका

रसगन्धकलौहार्कतुत्थटकणसैन्धवान् ।
समभागान् विचूर्ण्याथ चूर्णाद्द्विगुणगुग्गुलः ।।
गुग्गुलोः पादिक देयं त्रिफलाचूर्णमुत्तमम् ।
तत्समं चित्रकस्याथ घृतेन वटिका कुरु
खादेन्माषद्वय चेदं त्रिफलाजलयोगत. ।
आमवातारिवटिका पाचिका भेदिका ततः ।।
आमवात निहन्त्याशु गुल्मशूलोदराणि च ।
यकृत्प्लीहानमष्ठीला कामला पाण्डुमुग्रकम् ।
हलीमकाम्लपित्तो च श्वयथुं श्लीपदार्बुदौ ।
ग्रन्थिशूल शिरः शूलं गृध्रसी वातरोगहा ।
गलगण्ड गण्डमाला कृमिकुष्ठविनाशिनी ।
आध्मानविद्रधिहरी चोदरव्याधिनाशिनी ।।
आमवाते ह्यतीवोग्रे दुग्धमुदाश्च बर्जयेत् ।

पारा, गन्धक, लोहभस्म, ताम्रभस्म, नीलाथोथा, सुहागा और सेधा नमक, इन सबको बराबर लेकर चूर्ण कर लेना, चूर्ण से दूना गूगल और गूगल को $\frac{1}{4}$ त्रिफला चूर्ण और उतना ही चित्रक का चूर्ण मिलाकर घोटकर घी मिलाकर २ माशे की गोलिये बना लेना। इन गोलियो को त्रिफला के क्वाथ के साथ खाना । यह आमवातारि वटिका पाचिका और भेदिका है। आमवात, गुल्मशूल, उदर रोग, यकृत, प्लीहा, अष्ठीला, कामला और पाण्डुरोग, हलीमक, अम्लपित्त, सूजन, श्लीपद,

अर्बुद, ग्रन्थिशूल, शिर:शूल, गृध्रसी, सभी वातरोग, गलगड, गडमाला, कृमि, कोढ, अफारा, विद्रधि और उदर की व्याधियो को नष्ट करती है। अत्यन्त दु:साध्य आमवात में दूध और मूग को छोड देना चाहिये ।

हिक्कान्तक रसः

(सुवर्णभस्मादि योग)

हेममुक्तार्ककान्ताना भस्म वल्लमित वरम् ।
बीजपूररसक्षौद्रसौवर्चलसमन्वितम् ॥
हन्ति हिक्काशत सत्यमेकमात्रादयत्नतः ।
का कथा पचहिक्काना हरणे सूत उच्यते ॥

(र० चं० ; र० रा०, सु०, । हिक्का०)

स्वर्ण भस्म, मोती भस्म, ताम्र भस्म और कान्तलोह भस्म १-१ भाग लेकर सबको एकत्र खरल करके रखे ।

इसमे से २-३ रत्ती रस विजौरे नीवू के रस, शहद और सचल (काले नमक) के साथ मिलाकर करने से सैकडो प्रकार की हिक्का (हिचकी) केवल एक ही मात्रा से नष्ट हो जाती है फिर पाच प्रकार की हिचकी की तो बात ही क्या है ?

सुरेन्द्राभ्रवटी

अभ्र सहस्रशो दग्ध रस दरदसम्भवम् ।
केशराजाम्भसा शुद्ध गन्धक हीरकन्तथा ।
विद्रुम मौक्तिक हेम रौप्य माक्षिकमेव च ।
कान्तलोहच सम्मर्द्य विधिना वह्निवारिणा ।
वल्लमात्रा वटी कृत्वा छायाया परिशोषयेत् ।
एकैका योजयेत्प्राज्ञो यथादोपानुपानत ॥
क्लोमरोविनाशाय वह्ने सन्धुक्षणाय च ।
न सोऽस्ति रोगो लोकेऽस्मिन्यमिय न विनाशयेत् ॥

यो य. समाश्रयेद्वयाधि क्लोमित तमवेक्ष्य च ।
क्रिया सेसाधयेद्वद्यो यथादोष यथाबलम् ।।
अनुग्राण्यन्नपानानि क्लोमामयनिपीडित ।
सेवेतोग्राणि सर्वाणि यत्नत परिवर्जयेत् ।।

(भ० र० । क्लोमा०)

सहस्रपुटी, अभ्रकभस्म, हिंगुलोत्थ पारद, भगरे के रस मे शुद्ध गन्धक, हीरा–भस्म, प्रवालभस्म, मुक्ता–भस्म, स्वर्ण–भस्म, चादी–भस्म, स्वर्णमाक्षिक–भस्म और कान्तलोह–भस्म समान भाग ले कर प्रथम पारे गन्धक की कज्जली बनावे और फिर उसमे अन्य औषधे मिला कर चीतामूल के क्वाथ मे खरल करे और ३–३ रत्ती की गोलिया बना कर छाया मे सुखा ले।

इसे यथोचित अनुपान के साथ देने से क्लोम रोग का नाश और अग्नि दीप्त होती है।

ससार मे ऐसा कोई रोग नही जिसे यह रस नष्ट न करता हो ।

क्लोम रोग मे उग्र पानादिका त्याग करके अनुग्र आहारादि देना चाहिये ।

(व्यवहारिक मात्रा–१ रत्ती)

सूर्यचन्द्रप्रभागुटिका

त्रिकत्रय हरिद्रे द्वे तिक्ता तिक्त शठी वचा ।
वेल्लचित्रकतालीसभार्गीपद्मकजीरकम् ।।
द्वौ क्षारौ पिप्पलीमूल पटूनि त्रीणि तुम्बरु ।
देवदारु वचा चव्य धान्यक गजपिप्पली ।
वत्सकातिविषादन्तीश्यामापुष्करकामृता: ।
भागोऽमीषा सूक्ष्मचूर्णीकृताना
भागश्चार्धस्तापितीरोद्भवस्य ।
तद्वद्व्राश्या, भागवृध्या परेस्यु–
रभ्रं लोहं शैलज कौशिकश्च ।।
सम्मर्द्य गुटिका कार्या सूर्यचन्द्रप्रभाभिधा ।
पूर्वाह्णे ता प्रयुजीत माक्षिकेण परिप्लुताम् ।।

तिक्ता सर्वसमा ज्ञेया सर्वं संचूर्ण्य यत्नतः ॥
निम्ववृक्षदलाम्भोभि मर्दयेद्द्विदिनावधि ।
ततश्च वटिका कार्या क्षुद्रकोलफलोपमा
मण्डल सेविता सैषा हन्ति कुष्ठान्यशेपत ।
वातपित्तकफोद्भूताज्वरान्नाना विकारजान् ।
देया पचदिने जाते ज्वरे रोगे वटी शुभा ।
पाचनी दीपनी पथ्या हृद्या मेदोविनाशिनी ॥
मलशुद्धिकरी नित्य दुर्धर्पं क्षुत्प्रर्वर्तिनी ।
वहुनाऽत्र किमुक्तेन सर्वरोगेपु शस्यते ॥
आरोग्यवर्धनी नाम्ना गुटिकेय प्रकीर्तिता ।
सर्वरोगप्रशमनी श्रीनागार्जुनचोदिता ॥

—र. र स, र. क., र., च., कुष्ठाधिकारे ।

पारा, गन्धक, लोहभस्म, अभ्रकभस्म और तावे की भस्म यह सव प्रत्येक १ भाग, त्रिफला, २ भाग, शिलाजतु ३ भाग, गूगल और चित्रकमूल प्रत्येक ४ भाग, और कुटकी सव के वरावर लेकर सवका चूर्ण करके २ तीन दिन तक नीम के पत्तो के रस मे घोटना, फिर जगली वेर के वरावर गोलिये बना लेना । ४९ दिन तक इसका सेवन करने से यह गोली सभी प्रकार क कोढो को जड से नष्ट करती है । वात, पित्त और कफ से पैदा हुए सभी प्रकार के ज्वरो को यह नष्ट करती है । पाचन और दीपन है । मनोहर हैं । मेद को कम करने वाली है । मल शुद्धि करती हैं और भूख वहुत लगाती है । इसकी अधिक क्या प्रशसा करे यह सभी रोगो मे हितकर है । इसका नाम आरोग्यवर्द्धनी गुटिका है । श्रीनागार्जुन महाराज ने इसको वनाई है ।

शिवागुटिका

काले तु रवितापाढये कृष्णायसज शिलाजतु प्रवरम्
त्रिफलारससयुक्त त्र्यहश्च शुष्क पुन शुष्कम् ॥
दशमूलस्य गुडूच्या रसे वलायास्तथा पटोलस्य ।
मधुकरसैर्गोमूत्रे त्र्यह त्र्यह भावयेत्क्रमश ॥

एकाह क्षीरेण तु तच पुनर्भावयेच्छुष्कम् ।
सप्ताह भाव्य स्यात् क्वाथेनैषां यथालाभम् ॥
काकोल्यो द्वे मेदे विदारियुग्मं शतावरी द्राक्षा ।
ऋद्धियुगर्षभवीरा मुण्डितिकाजीरके शुमरथौ च ॥
रास्नापुष्करचित्रक दन्तीभकणाकलिगचव्याब्दा: ।
कटुकाशृगीपाठा एतानि पलाशिकानि कार्याणि ॥
अब्द्रोणे साधिताना रसेन पादाशिकेन भाव्यानि ।
गिरिजस्यैव भावित शुद्धस्य पलानि दश पट् च ॥
द्विपल च विश्वधात्री मागधिकायाश्च मरिचानाम् ।
चूर्ण पल विदार्या स्तालीसपलानि चत्वारि ॥
षोड़श सितोपलानि चत्वारि घृतस्य माक्षिकस्याष्टौ ।
तिलतैलस्य द्विपल चूर्णार्धपलानि पचानाम् ॥
त्वक्क्षीरीपत्रत्वक् नागेलाना च मिश्रयित्वा तु ।
गिरिजस्य पोडशपले गुडिका: कार्यास्ततोऽक्षसमा: ॥
ता शुष्का नवकुम्भे जातीपुष्पाधिवासिते स्थाप्या. ।
तासामेका काले भक्ष्या पेयापि वा सततम् ॥
क्षीररमदाडिमरसा: सुरासव मधु च शिशिरतीयानि ।
आलोडनानि तासा मनुपाने वा प्रशस्यन्ते ॥
जीर्णे लघ्वन्नपयो जाग– लिनिर्यूहयूषभोजी स्यात् ।
सप्ताह यावदत: पर भवेत्सोपि सामान्य ॥
भुक्त्वापि भक्षितेय यदृच्छया नावहेद्भय किचित् ।
निरुपद्रवा प्रयुक्ता सुकुमारै. कामिभिश्चैक ॥
सम्वत्सरप्रयुक्ता हन्त्येषा वातशोणित प्रवलम् ।
वहुवार्षिकमपि गाढ यक्ष्माण चाढ्यवात च ॥
ज्वरयोनिशुक्रदोषप्लीहार्श पाण्डुग्रहणीरोगान् ।
ब्रध्नवमिगुलमपीनस हिक्काकासारुचिश्वासान् ॥
जठर श्वित्र कुष्ठ पाण्डय क्लव्य मद क्षय शोषम् ।
उन्मादापस्मारौ वदनाक्षिशिरोगद्रान्सर्वान् ।
आनाहमतीसार सासृग्दर कामलाप्रमेहाश्च
यकृदर्बुदानि विद्रधि भगन्दर रक्तपित च ॥

अतिकार्श्यमतिस्थौल्य स्वेदमथ श्लीपद च विनिहन्ति ।
दंष्ट्राविष समील गराणि च बहुप्रकाराणि ॥
मन्त्रौषधियोगादीन् विप्रयुतान्भौतिकान्भावान् ।
पापालक्ष्म्यौ चेय शमयेद्गुडिका शिवा नाम्ना ॥
वल्या वृष्या धन्या कान्तियश· प्रजाकरी चेयम् ।
दद्यान्नृपवल्लभता जय विवादे मुखस्था च ॥
श्रीमान्प्रकृष्टमेध स्मृतिवुद्धिवलान्वितोऽतुलशरीर. ।
पुष्टयौजोवर्णेन्द्रिय तेजोवलसम्पदादिसदुपेत: ॥
वलिपलितरोगरहितो जीवेच्छरदा शतद्वय पुरुष· ।
सम्वत्सरप्रयोगाद् द्वाभ्या शतानि चत्वारि ॥
सर्वामयजित्कथित मुनिगणभक्ष्य रसायनरहस्यम् ।
समुद्भवामृतमन्थनोत्थ स्वेद: शिलाभ्योऽमृतवदिरे प्राक् ॥
यो मन्दरस्यात्मभुवा हिताय न्यस्तश्च शैलेपु शिलाजरूपी ।
शिवगुडिकेति रसायन मुक्त गिरीशेन गणपतये ॥
शिववदनविनिर्गता यस्मा न्नाम्ना तस्माच्छिवागुडिकेति ॥
(व. से. । वातरक्ता, च. द । रसा. ६५; ग. नि. । गु ४; यो. र । राजय,
वृ. यो त. । त ७६)

ग्रीष्मकाल मे कृष्ण लोह जनित उत्तम शिलाजीत को त्रिफला के क्वाथ की १ भावना दे और सूख जाने पर पुन त्रिफला के क्वाथ की भावना दे । इसी प्रकार धूप मे सुखा सुखा कर त्रिफला क्वाथ की ३ भावना दे और फिर इसी प्रकार दशमूल के क्वाथ, गिलोय के क्वाथ, खरैटी के क्वाथ, पटोल के क्वाथ और मुलैठी के क्वाथ तथा गोमूत्र की ३-३ और गोदुग्ध की १ भावना दे कर सुखा ले । तदनन्तर निम्नलिखित काकोल्यादि गण के क्वाथ की सात भावना दे ।

काकोली, क्षीरकाकोली, मेदा, महामेदा, विदारीकन्द, क्षीरविदारी, शतावर, द्राक्षा, ऋद्धि, वृद्धि, ऋषभक, महा शतावर, मुण्डी, जीरा, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी रास्ना, पोखरमूल चीता, दन्तीमूल गजपीपल इन्द्रजौ, चव्य, नागरमोथा, कुटकी, काकडासिगी और पाठा, ५-५ तोले इनमे से जितनी औपधे मिले उन सवको कूट कर ३२ सेर पानी मे पकावे और चौथा भाग शेष रहने पर छान ले । (कोई औपधि न मिले तो उसके स्थान मे उसके पास वाली, पूर्व या पश्चात् की औपधि लेनी चाहिये ।)

इस प्रकार भावना देकर सुखाया हुवा शिलाजीत ८० तोले, सोठ, आमला, पीपल और काली मिर्च का चूर्ण १०-१० तोले, विदारी कन्द का चूर्ण ५ तोले, तालीस पत्र का चूर्ण २० तोले, मिसरी ८० तोले, घी ४० तोले, शहद ८० तोले, तिल का तेल २० तोले तथा बसलोचन, तेजपात, दालचीनो, नागकेसर और इलायची का चूर्ण २॥-२॥ तोले की गुटिका बना ले और उन्हे सुखा कर चमेली के फूलो से बसाए हुवे सुगन्धित घट मे सुरक्षित रखे ।

(मात्रा-३-४ माशा ।)

इनमे से नित्य प्रति १-१ गुटिका दूध, मास रस, अनार के रस, सुरा, आसव, मधु या शीतल जल मे घोलकर पीनी चाहिये या गुटिका खाकर कोई एक द्रव अनुपान रूप से पीना चाहिये ।

औपध पच जाने पर लघु अन्न, दूध या मूग आदि के यूप के साथ खाना चाहिये । जो लोग मासाहारी है वे मास रस के साथ भी लघु अन्न खा सकते है ।

यह गुटिका भोजन करने के पश्चात् भी खाई जाय तब किसी प्रकार की हानि का भय नहीं है । इसे सुकुमार प्रकृति के कामी पुरुष भी निर्भय हो कर सेवन कर सकते है ।

इसे १ वर्ष तक सेवन करने से बहुत वर्षो का पुराना प्रबल और कठिन वातरक्त भी नष्ट हो जाता है । इसके अतिरिक्त यह गुटिका यक्ष्मा, आढ्यवात, ज्वर, योनिदोष, शुक्र दोप, प्लीहा, अर्श, पाण्डु, ग्रहणी, ब्रध्न, वमन गुल्म, पीनस, हिचकी, कास, अरुचि, श्वास, जठर, श्वित्र, कुष्ठ, नपुसकता, मद, शोष, उन्माद, अपस्मार, मुखरोग, नेत्ररोग, शिरोरोग, आनाह, अतीसार, रक्तप्रदर, कामला, प्रमेह, यकृत, अर्बुद विद्रधि, भगन्दर, रक्तपित्त अति कृशता, अति स्थूलता, स्वेद, श्लीपद दंष्ट्रा विप, मूल विप और अनेक प्रकार के सयोगज विषो को भी नष्ट करती है ।

इसके प्रयोग से शत्रुवो द्वारा प्रयुक्त हुवे मन्त्र औषधादि के दुष्ट प्रभाव नष्ट होते है तथा पाप (मनोविकार) और अलक्ष्मी (प्रभाव शून्यता) का नाश होता है ।

यह गुटिका बल और कामशक्ति वर्द्धक, प्रशसनीय तथा कान्ति, यश और सन्तान की वृद्धि करने वाली है । इसे मुख मे धारण करने से विवाद मे जय और राजसभा मे आदर प्राप्त होता है ।

इसके सेवन से शरीर की कान्ति, मेधा, स्मृति, बुद्धि और बल बढता है, शरीर अनुपमेय

हो जाता है; पुष्टि और ओज की वृद्धि होती है; इन्द्रिया निर्मल हो जाती है; तेज बढता है।

इसे एक वर्ष तक सेवन करते रहने से दो सौ वर्ष की वलि पलित और रोगरहित आयु प्राप्त होती है । दो वर्ष तक सेवन करने से ४ सौ वर्ष की आयु प्राप्त होती है। यह मुनियो के सेवन करने योग्य रसायन है ।

विजयादिगुटिका

पलत्रयहरीतक्याश्चित्रकस्यपलत्रयम् ।
एलात्वक्पत्रमुस्तानाभागश्चार्द्धपल स्मृत ॥ १ ॥
व्योषाचपिप्पलीमूलविपकर्षप्रमाणकम् ।
नागकेशरचूर्णचकर्षंदद्यादिभक्षण ॥ २ ॥
रेणुकार्द्धपलयावत्तथागधरसौक्षिपेत् ।
एतान्सभृतसम्भारान्सूक्ष्मचूर्णतुकारयेत् ॥ ३ ॥
गुडस्यचतुलादद्यान्मर्द्दयेत्ताद्विचक्षण ।
एतेनगुटिका कार्या' पष्ट्यधिकशतत्रयम् ॥ ४ ॥
एकैकभक्षयेत्प्रात' कृत्वाहारयथासुखम् ।
मासेनपलित हन्तिकरोत्यग्निद्वितीयके । ५ ॥
शुक्रवृद्धितृतीयचवलवर्णप्रसाधनी ।
हत्यष्टादश कुष्ठानिसप्तमेहान्महाक्षयान् ॥ ६ ॥
प्लीहानकासश्वासौचग्रण्डवृद्धिमरोचकम् ।
अशीतिवातजान्नोगान्मूत्रकृच्छ्र गलग्रहम् ॥ ७ ॥
सर्वमूर्च्छांविपहन्तिसर्वस्थावरजगमम् ।
योनिदोपमपस्मारमुन्मादविपमज्वरम् ॥ ८ ॥
वलेनगजतुल्योवावेगेनतुरगोपम ।
मयूरस्तुभवेदग्नौवाराहश्रोत्रमेवच ॥ ९ ॥
हयतुल्योभवेत्स्त्रीषुगृध्रदृष्टिर्हिजायते ।
उपयोगात्परजीवेन्नरोवर्षशतत्रयम् ॥ १० ॥
नचात्रपरिहारोस्तिनचकामेनमैथुने ।

ग्राम्यधर्मोथवाग्बाणो भोजनेतयथेच्छया ॥ ११ ॥
निर्मापितविष्णुपितामहाभ्यामूर्घाभिषेकेत्रिदिवेश्वरस्य ।
अयवर सर्वरसायनानायोगेनहन्यादचिरेणरोगान् ॥ १२ ॥
विजयानामगुटिकाविख्यातारुद्रभाविता ।
भक्षयेद्योनरोवर्षतस्यसिद्धिर्नसंशय ॥ १३ ॥

हरड ३ पल, चित्रक ३ पल, इलायची ८ टङ्क, तज ८ टङ्क, तेजपात ८ टङ्क, मोथा ८ टङ्क, सोठ, मिरच, पीपल पीपलामूल, तेलिया प्रत्येक ४ टङ्क, नागकेशर ४ टङ्क, रेणुका के वीज ८ टङ्क, गधक आधा पल पारा आधा पल प्रथम पारे गंधक की कजली कर लेवे और सब को महीन पीसकर सब औषधियो मे ५ सेर गुड मिलाकर ३६० गोलिया वनावे और प्रात:काल एक गोली नित्य खाय, इसके सेवनकाल मे भोजन इच्छानुसार करे तो एक महीने मे बुढापे को दूर करे, दो महीने मे अग्नि प्रज्वलित करे, तीन महीने मे वीर्य को बढ़ावे, वल और वर्ण को वढावे १८ कोढ, २० प्रमेह, महाक्षय, प्लीहा, श्वास, खासी, अडवृद्धि, अरुचि, वातजरोग ८० मूत्रकृच्छ्र, गलग्रह, सम्पूर्ण मूर्च्छा तथा स्थावर जङ्गम, विष, योनिदोष, मिरगी, उन्माद विषमज्वर आदि को नाश करता है और हाथी का सा बल, घोडे का सा वेग, मोर की सी अग्नि, शूकर की सी श्रवण शक्ति और स्त्री सग मे घोडे के समान प्रवलता होय, नेत्रो मे गधि के तुल्य ज्योति हो और इस औषधि के समान दूसरी औषधि जगत् मे नही है। इससे मनुष्य ३०० वर्ष जीवित रहता है। इसमे मैथुन करना वर्जित नही है और ग्राम्यधर्म तथा भोजन यथेष्ट करना चाहिये । यह ब्रह्मा और विष्णु ने इन्द्र के राज्याभिषेक के समय वनाया है। यह श्रेष्ठ रसायन है, सव रोगो को शीघ्र ही नाश करती है। यह विजयानाम गोली प्रसिद्ध महादेवजी ने कही है। जो मनुष्य इसे एक वर्ष सेवन करे उसको निस्सन्देह सिद्धि प्राप्ति होती है ।

नारसिंहचूर्णम्

प्रस्थ शतावरीचूर्णं प्रस्थ गोक्षुरकस्य च ।
वाराह्या विशतिपल गडूच्या. पचविशति: ॥
भल्लातकाना द्वात्रिशच्चित्रकस्य दशैव तु ।
तिलाना लुचिताना च प्रस्थ दद्यात्सुचूर्णितम् ॥

न्यूपणस्य पलान्यष्टौ शर्करायाश्च सप्तति· ।
माक्षिक शर्करार्धेन तदर्धेन च वै घृतम् ।।
शतावरीसम देय विदारीकन्दचूर्णकम् ।
एतानि सूक्ष्मचूर्णानि स्निग्धे भाण्डे निधापयेत् ।।
पलार्धमुपयुजीत, यथेष्ट चात्र भोजनम् ।
एष मासोपयोगेन जरा हन्ति रुजामपि ।।
वलीपलितखालित्यप्लीहव्याधीश्च पीनसान् ।
भगन्दर मूत्रकृच्छ्रमश्मरीश्च भिनत्त्यपि ।
अष्टादशैव कुष्ठानि तथाष्टावुदराणि च ।
प्रमेह च महाव्याधि पचकासान् सुदुस्तरान् ।।
अशीतिर्वातजान् रोगाश्चत्वारिशच्च पैतिकान् ।
विशति श्लैष्मिकाश्चैव संसृष्टान् सान्निपातिकान्
सर्वानर्शोगदान् हन्ति वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा
सकाचनाभो मृगराजविक्रम स्तुरगवेगो जलदोघनि.स्वन ।
स्त्रीणा शत गच्छति सोऽतिरम्य. सुरूपवान् सत्ववता वरिष्ठ ।।
पुत्रान् संजनयेद्धीमान् नरसिंहनिभास्तथा ।
नारसिंहेति विख्यातश्चूर्णो रोगगणापह ।।

शतावर का चूर्ण १ प्रस्थ (१ सेर=८० तोले), गोखरु का चूर्ण १ प्रस्थ, बारीहीकन्द (अभाव मे चर्मकारालु) का चूर्ण २० पल (१०० तोले), गिलोय का चूर्ण २५ पल, शुद्ध भिलावे का चूर्ण ३२ पल (२ सेर), चीते का चूर्ण १० पल, छिलके रहित (धुले हुवे) तिलो का चूर्ण १ प्रस्थ, सोठ, मिर्च और पीपल का चर्ण ८–८ पल, खाड ७० पल, शहद ३५ पल, घी १७।। पल और विदारीकन्द का चूर्ण १ प्रस्थ इन सबको एकत्र मिलाकर चिकने पात्र मे सुरक्षित रखे ।

मात्रा २।। तोले (व्यवहारिक मात्रा ३ से ६ माशे तक)। आहारादि इच्छानुसार करना चाहिये ।

इसे १ मास तक सेवन करने से जरा, व्याधि, वली, पलित, खालित्य (गज), प्लीह (तिल्ली) पीनस, भगन्दर, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, १८ प्रकार के कुष्ठ, आठ प्रकार के उदररोग, प्रमेह, कष्टसाध्य पाच प्रकार की खासी, ८० प्रकार के वातज रोग, ४० प्रकार के पित्तजरोग,

२० प्रकार के कफज रोग, द्वन्द्वज रोग, समस्त सन्निपातज रोग और अर्श इत्यादि समस्त व्याधिया नष्ट हो जाती है ।

इसे सेवन करने वाला मनुष्य काचन के समान दीप्तिमान् सिहसदृश पराक्रमी, घोडे के समान वेगगामी और गम्भीर स्वरवाला हो जाता है। वह अनेको स्त्रियो से रमण कर सकता है तथा नरसिह सदृश वीर और बुद्धिमान् पुत्र उत्पन्न करता है ।

ज्योतिष्मतीरसायनम्

ज्योतिष्मत्यास्तैलमाज्य सगन्धम्
गुंजावृद्ध्या सेवयेन्मासमात्रम् ।
यावच्च स्याद्यस्तु स प्राप्य मूर्ति–
र्मेधायुक्तो दिव्यदृष्टिर्नियक्ष्मा ॥

—(र. र. स. । उ. ख. अ. २६)

ज्योतिष्मती (मालकगनी) का तैल, घी और शुद्ध आमलासार गन्धक समान भाग लेकर एकत्र मिलाकर एक रत्ती की मात्रा से सेवन करना आरम्भ करे और प्रतिदिन एक रत्ती मात्रा बढाते जाए ।

इस प्रकार १ मास तक सेवन करे । इस प्रयोग से मेधावृद्धि होती है, दृष्टि दिव्य हो जाती है तथा यक्ष्मा रोग नष्ट होता है ।

कान्तरसायनम्

रात्रौ कान्तशरावकस्थचणका भिन्नाजलै. स्वादुभि·,
प्रात मुंष्टिमिताश्च ते प्रतिदिन षमासमासेविता. ।
हन्यु पित्तकफामयान्बहुविधान् कुष्ठ प्रमेहास्तथा,
पाण्डु यक्ष्मगदच कामलापद पथ्यच तक्र तथा ॥
एतस्मादपुनर्भव हि भसित कान्तस्य दिव्यामृत,
सम्यक् सिद्धिरसायन त्रिकटुक वेल्लाज्यमध्वन्वितम् ।

हन्यान्निष्कमित जरामरणजं व्याधीश्चसत्पुत्रद,
दिष्ट श्रीगिरिशेन कालयवनोदूत्यै पुरा तत्पितु

—र. को, र. र. स. रसायने ।

कान्तलोह की निरुत्थभस्म बनाकर त्रिकटु, विडग, मधु और घृत के साथ खाकर रात्रि मे कान्तलोह के पात्र मे ४ तोले चने भिगोकर सुबह वे चने खाकर उस पानी को पी जावे । इस तरह ६ महीने तक दर रोज करने से यह कान्तरसायन सिद्ध होता है । इसमे तक्र पथ्य है । इसके खाने से यह पाण्डु, राजयक्ष्मा, कामला, जराव्याधि इनको दूर करके अच्छी सन्तति को देता है । यह प्रयोग महादेवजी ने कालयवन की उत्पत्ति के लिये उसके पिता को बतलाया था ।

तिक्तक चूर्णम्

मुस्त त्रिकटुक पाठा त्वग्बीज वत्सकस्य च ।
निम्ब पटोल कटुका हरिद्रा धन्वयासकम् ।।
जातीप्रवाल भूनिम्ब मधुक सरसाजनम् ।
त्रायमाणा गुडूची च त्रिफला चेति चूर्णयेत् ।।
चूर्णोऽय तिक्तको नाम कवल प्रतिसारिणम् ।
दन्तमूलास्यगलजान्रोगानाशु व्यपोहति ।।

—(ग नि. । चूर्ण.)

मोथा, त्रिकुटा, पाठा, दालचीनी इन्द्रजौ, नीम की छाल, पटोल पत्र, कुटकी, हल्दी, धमासा, चमेली की कली, चिरायता, मुलेठी, रसौत, त्रायमाणा, गिलोय और त्रिफला समान भाग लेकर चूर्ण बना लीजिए ।

इस चूर्ण का मजन करने से मसूढे, मुख और गले के समस्त रोग शीघ्र नष्ट होते है ।

अमृतभल्लातकः

भल्लातकाना पवनोद्धताना तरुच्युताना च यदाऽऽढक स्यात् ।
घृष्टेवष्टिकाचूर्णकरणैर्जलण्च प्रक्षाल्य सशोप्य च मारुतेन

शुष्काणि तानि द्विदलीकृतानि विपाचयेदप्सु चतुर्गुणासु ।
तत्पादशेष पुनरेवशीत क्षीरेणतुल्येन विपाचयेत्तत्
घृताशयुक्तेन घन यथा स्या त्तदर्धया शर्करयाभिकीर्णम्
संयूपण त्रैफलचन्द्रमास्य स्त्रिवृच्च वाशी खदिरामृतं च
सचन्दनाऽऽकल्लकणाकवाव सदेवपुष्प मुशलीद्वयच ।
ककोलमोचाह्वयदीप्ययुग्म नत समातगकणा विदारी
जातीफल मुस्तकजातिपर्यौ कुवेरजीरागुरुसाब्धिशोषम् ।
मेदाद्वय लोहरसेन्द्रवगमभ्र तथा कु कुमकच कर्पम् ।।
तत्सप्तरात्रादतिजातवीर्य सुधारसादप्यधिक वदन्ति ।
प्रातः प्रवुद्ध कृतेदेवकार्यो मात्रा भजेत्सात्म्यशरीरयोग्याम्
न चानुपाने परिहार्यमस्ति न चातपेना ध्वनिमैथुने च ।
यथेष्टचेष्टो विचरेत्प्रयोगा न्नरोभवेत्काचनराशिगौर·
अनेन विद्वान् नरसिहवीर्यो दृढेन्द्रियो वीतगद· सुबुद्धि· ।
दन्ता विशीर्णा पुनरेव दिव्या केशाच शुभ्रा पुनरेव कृष्णा·
नीलाजनालिप्रतिमा भवन्ति त्वचोविशीर्णा पुनरेव भव्या ।
विशीर्णकर्णांगुलिनासिकोऽपिं कृम्यर्दितो भिन्नगलोऽपि कुष्ठी
शुष्क पुन स्यागद्मूलशाख स्तरुर्यथा भाति नवाम्बुसिक्त ।
वृहस्पतेरप्यधिको हि बुद्धचा ग्रन्थ विशाल च नव करोति
गृह्णाति सद्यो न च विस्मृति च करोति कल्पायुरनल्पवीर्यम् ।
कुर्वन्निम कल्पमनल्पवुद्धि जीवेन्नरो वर्पशत सुखी स्यात् ।

—पा. व., यो. र., वृ. यो. त., रसायनाधिकारे ।

जोर की हवा लगने से वृक्ष से झडे हुए भिलावो को बटोर कर ४ सेर लेना । ईट के छोटे २ टुकडे और पानी के साथ उनको खूब मलकर वृन्त निकालकर धोकर सुखा लेना । फिर उनको फाडकर दो दल अलग करके चौगुने जल मे पकाकर चतुर्थांश शेप रहने पर छान लेना । फिर ठडा होने पर आठ सेर दूध और २ सेर घी मिलाकर अग्नि पर चढाना और कडछे से चलाते रहना जब वह गाढा (खोवा) होकर अच्छी तरह भुन जावे तब २ सेर शक्कर डाल देना फिर उसमे त्रिकटु, त्रिफला, कपूर, जटामासी, निशोत, वशलोचन, खैरसार, चदन, अकरकरा, पीपल, कवावचीनी लोग, दोनो प्रकार की मुसली, ककोल, मोचरस, दोनो अजवाइन (देशी और खुरासानी) गजपीपल, विदारीकद, जायफल, नागरमोथा, जावित्री, नन्दीवृक्ष की छाल, जीरा,

अगुरु, समुद्रशोप, मेदा, महामेदा, लोह, पारा और वग इनकी भस्म और केसर इन सवको १ एक तोले मिला लेना और सात दिन तक उसको रहने देना यह अमृत से अधिक गुणकारी वन जावेगा। ऐसा आचार्य लोग कहते है। सवेरे उठकर नित्यकर्म करके इस रस की पच सकने योग्य मात्रा लेना। इसके लिये अनुपात पथ्य, धूप मे चलना और मैथुन करना इत्यादि का कोई परहेज नही है। इसको खाकर मनुष्य जैसी इच्छा हो वैसा काम करे इसका गुण कम न होगा और मनुष्य का शरीर स्वर्ण पर्वत के समान चमकने लगेगा। इसके सेवन करने से मनुष्य विद्वान, सिंह के सदृश वलवान्, मजवूत इन्द्रियो वाला और वुद्धिमान होता है। हिलते हुए दात दृढ होते है, पके हुए बाल फिर से काजल और भौरे से सदृश हो जाते है। लटकी हुई खाल वली रहित हो जाती है। जिस के कान, अगुली और नाक गल गये है और जिस के शरीर मे कोडे पड गये हो ऐसा कोढी भी इससे फिर अच्छा हो जाता है। इसके सेवन से सूखा हुआ भी मनुष्य सूखे वृक्ष की जड मे पानी डालने से वह हरा भरा हो जाता है वैसे ही तरुणता को प्राप्त हो जाता है। और वृहस्पति के वरावर वुद्धिवाला होकर वडे २ ग्रन्थो को जल्दी पढ लेता है इच्छा होने पर स्वतन्त्र नवीन ग्रन्थ को वना सकता है। पढे हुए ग्रन्थो को फिर कभी नही भूलता और वलवान होकर शतायु हो जाता है। इस रसायन का कल्प करके मनुष्य सुख से १०० वर्ष जीता है।

श्री सिद्धमोदकः

त्रिकटोस्त्रिपल चूर्ण त्रिफलाया पलत्रयम्।
गुडूच्याश्च विडगाना ग्रन्थिकग्रन्थिपर्णयो ॥
रक्तचित्राडि्घ्रज चर्ण ग्राह्य चापि पृथक् पृथक्।
प्रत्येक द्विपलचैषा गृह्णीयान्मतिमान्नर ॥
कामरूपोद्भवा ग्राह्या गुडस्यार्द्धतुला तथा।
सर्वमेकत्र सम्मर्द्य सषष्टित्रिशत शुभम् ॥
मोदक कारयेद्धीमान् समभागेन यत्नत।
प्रत्यह प्रातरेवैतत्पानीयेनैव भक्षयेत् ॥
एव निरन्तर कार्यं सम्वतसरमतन्द्रित।
प्रथमे मासि वाग्युक्तो द्वितीये वलवर्णवान् ॥
तृतीये नाशयेत्कुष्ठ श्वासकासौ तुरीयके।

पचमे स्त्रीप्रियत्व च षष्ठे च पलितक्षय· ।।
सप्तमे कान्तियुक्तश्च अष्टमे वलवान् भवेत् ।
नवमे च शतायुः स्याद्दशमे च स्वरान्वित: ।।
महावलस्त्वेकादशे अदृश्यो द्वादशे भवेत् ।
इच्छाहारविहारी स्यात्ततो दैत्यरिपो: सम. ।।
पर्डतिरहितो देही प्राप्नोति कल्पजी वितम् ।
युवा निरन्तर तिष्ठेद् यावत्कालच जीवति ।।
भवन्ति सिद्धयोऽस्याष्टौ याश्चापि परिकीत्तिता: ।
श्री सिद्धमोदको ह्येष सिद्धादिपु निपेवित: ।।

—(भै. र. । रसायना.)

सोठ, मिर्च, पीपल, हर्र, वहेडा और आमला, इनका चूर्ण ५–५ तोले तथा गिलोय, बायबिडग, पीपलामूल, गठीवन और लाल चीते की जड, इनका चूर्ण १०–१० तोले एव आसाम देश का गुड ३ सेर १० तोले लेकर सबको एकत्र मिला कर मर्दन करे और ३६० मोदक बना कर सुरक्षित रखे ।

इनमे से १–१ मोदक प्रतिदिन प्रात काल जल के साथ सेवन करे । इसी प्रकार इन्हे निरन्तर १ वर्ष तक सेवन करना चाहिये ।

इसके सेवन से मनुष्य प्रथम मास मे वाग्मी और दूसरे महीने मे वल वर्ण युक्त हो जाता है। तीसरे मास मे कुष्ठ और चौथे मास मे श्वास कास का नाश हो जाता है । इसे ५ मास तक तक सेवन करने से काम शक्ति वढती है और ६ मास तक सेवन करने से पलित (बालो का श्वेत होना) रोग नष्ट हो जाता है । यदि सात मास तक यह औषध सेवन की जाय तो शरीर कान्तिमान हो जाता है, आठ मास मे वल बढ जाता है । ९ मास तक सेवन करने वाला मनुष्य १०० वर्ष तक जावित रहता है। इसे निरन्तर १० मास तक सेवन करने से मनुष्य का स्वर अति श्रेष्ठ हो जाता है । ११ मास मे शरीर का बल अत्यधिक बढ जाता है और पूरे १ वर्ष तक सेवन करने वाला तो अदृश्य हो जाता है ।

१ वर्ष तक सेवन करने के पश्चात् इच्छानुसार आहार विहार किया जा सकता है । इसे सेवन करते रहने से मनुष्य समस्त पीड़ाओ से मुक्त हो कर कल्प पर्यन्त जीवित रहता हे तथा उसे कभी वृद्धावस्था नही आती ।

इसे सेवन करने वाले मनुष्य को आठो सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती है ।

त्रिफलादिमोदकः

त्रिफला त्रिफला कार्या भल्लाताना चतु.पलम् ।
वाकुची पचपलिका विडगाना चतु.पलम् ।
हत लौह त्रिवृच्चैव गुग्गुलुश्च शिलाजतु ।
एकैक पलमात्र स्यात्पलार्ध पौप्कर भवेत् ।।
चित्रकस्य पलार्द्धं स्यात् त्रिशाण मरिच भवेत् ।
नागर पिप्पली मुस्ता त्वगेला पत्रकु कुमम् ।।
शाणोन्मितो स्यादेकेकश्चूर्णयेत्सर्वमेकत' ।
ततस्तत्प्रक्षिपेच्चूर्ण पक्वखण्डे च तत्समे ।।
मोदकान्पलिकान् कृत्वा प्रयु जीत यथोचितम् ।
हन्यु सर्वाणि कुष्ठानि त्रिदोपप्रभवामयान् ।।
शिरोक्षिभ्रू गतान्रोगान्मन्यापृष्ठगतानपि ।
प्राग्भोजनस्य देय स्यादध कायस्थिते गदे ।।
भेषज भुक्तमध्ये च रोगे जठरसस्थिते ।
भोजनस्योपरि ग्राह्यमूर्ध्वजत्रुगदेपु च ।।

हर्र, बहेडा, आमला १–१ पल, शुद्ध भिलावा ४ पल, बावची ५ पल, वायविडग ४ पल, तथा लोह भस्म, निसोत, गूगल और शिलाजीत १–१ पल (५–५ तोले), पोखरमूल और चीता आधा आधा पल, मिर्च ११। माशे और सोठ, पीपल, मोथा, दालचीनी, इलायची, पत्रज और केसर प्रत्येक ३।।। माशे । सबका महीन चूर्ण करके उसे सबके बराबर खाण्ड की चाशनी मे मिलाकर ५–५ तोले के मोदक बना लीजिए ।

इन्हे यथोचित मात्रा और अनुपान के साथ सेवन करने से सर्व प्रकार के कुष्ठ, शिर आँख और भ्रु के रोग तथा मन्या (गले की नस) और पीठ के रोग नष्ट होते है ।

औषध–नाभि से नीचे के रोगो मे भोजन से पहिले, उदर विकारो मे भोजन के मध्य मे और गले से ऊपर के रोगो मे भोजन के अन्त मे सेवन करानी चाहिए ।

पूगपांसुर्योगः पूगपाक.)

हेमाम्भोधरचन्दन विकटुक धात्री प्रियालाकुहू–
लंज्जालुस्त्रिसुगन्धिजीरकयुग श्रृंगाटक वशजम् ।
जातीकोशलवगधान्यवहुलाप्रत्येकमक्षोन्मिता:
पूगस्याप्टपल विचूर्ण्य च पय: प्रस्थत्रये सपचेत् ।।
गोसर्पि: कुडव सितार्धकतुला धात्रीवरी द्वयजलि
मन्दाग्नौ विपचेद् भिपक् शुभदिने सुस्निगघ भाण्डे क्षिपेत् ।
त खादेत्तु यथाग्नि वासरमुखे मेहाश्च जीर्णज्वर
पित्त साम्लमसृक्सृति च गुदजा वक्त्राक्षिनासासु च ।।
मन्दाग्नि च विजित्य पुप्टिमतुला कुर्याच्चि शुक्रप्रदो
योगो गर्भकर परो गदहर स्त्रोणामसृग्दोषजित् ।।

सुपारी के ८ पल (४० तोले) चूर्ण को ६ सेर दूध मे पकावे । जब खोवा (मावा) हो जाय तो उसे ४० तोले घी मे भुने और फिर ५० पल (३ सेर १० तोले) खाड की चाशनी मे यह मावा तथा निम्नलिखित चीजो का चूर्ण मिलावे ।

आमला और शतावर २०–२० तोले, तथा नागकेसर, नागरमोथा, सफेदचन्दन, सोठ, मिर्च, पीपल, आमला, चिरौजी, वेरकी मीगी, लज्जालु, दालचीनी, तेजपात इलायची, दोनो जीरे, सिघाडा, वसलोचन, जातित्री, लौंग और धनिया । प्रत्येक का चूर्ण १।–१। तोला सबको अच्छी तरह मिलाकर चिकने पात्र मे भरकर रखे ।

इसे नित्य प्रति प्रात काल सेवन करने से प्रमेह, जीर्णज्वर, अम्लपित्त, गुदमार्ग आँख, नाक और मुह से रक्तस्राव होना और रक्तप्रदर आदि रोग नष्ट होते तथा वल, अग्नि और वीर्य की वृद्धि होती है । इसके सेवन से स्त्रियो को गर्भप्राप्ति होती है ।

(मात्रा – ६ माशे)
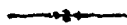
सौभाग्यशुण्ठी (३) (बृहत्)

महौषध समादाय चूर्णयित्वा विधानतः ।
पलषोडशिका नीत्वा क्षीरे दशगुणे पचेत् ॥
क्रमेण पाकशुद्धि. स्याद् घृतप्रस्थे च भर्जयेत् ।
लघुपाकः प्रकर्त्तव्यो न खरो मोदकेष्वपि ॥
शतावरी विदारी च मुषली गोक्षुरो वला ।
छिन्नासत्त्व शताह्वा च जीरकौ व्योषचित्रको ॥
त्रिसुगन्धि यमानी च तालीश कारवी मिशिः ।
रास्ना पुष्करमूल च वाशी दारु शताह्वयम् ॥
शटी मासी वचा मोचत्वक् पत्र नागकेशरम् ।
जीवन्ती मेथिका यष्टी चन्दन रक्तचन्दनम् ॥
क्रिमिघ्न तोयसिंहास्यधन्याक कट्फल घनम् ।
कर्षद्वयमित भाग प्रत्येक पट्टघर्षितम् ॥
सर्वचूर्णाद् द्विगुणिता प्रदेया सितशर्करा ।
युक्त्या पाकविधानज्ञो मोदक परिकल्पयेत् ॥
शुद्धे भाण्डे निधायाथ खादेन्नित्य यथावलम् ।
वीक्ष्याग्निवलकोष्ठच नारीणाच विशेषत. ॥
क्षौद्रानुपानत प्रात गुरुदेवान् समाचरेत् ।
तद्वर्ण्य वत्यमायुष्य वलीपलितनाशनम् ।
वयस स्थापन प्रोक्तमग्निदीप्तिकर परम् ।
वृष्याणामतिवृष्यच रसायनमिद शुभम् ॥
विशेषात् स्त्रीगदे प्रोक्त प्रसूताना यथामृतम् ।
विंशतिर्व्यापदो योने प्रदर पचधाऽपि च ॥
योनिदोपहर स्त्रीणा रजोदोपहरन्तथा ।
पापससर्गज दोप नाशयेन्नात्र सशयः ॥
आमवातहरचैव शिर शूलनिवारणम् ।
सर्वशूलहरचैव विशेपात् कटिशूलनुत् ॥
वीर्यवृद्धिकर पुसा सूतिकातकनाशनम् ।

पाठाविडगसुरदारुगजोपकुल्या द्विक्षारनागरनिशामिशिचव्यकुष्ठैः ।
तेजोवतीमरिचवत्सकदीप्यकाग्नि रोहिण्यरुष्करबचाकणमूलयुक्तैः ॥
मजिष्ठयातिविषया विषया यवान्या सशुद्धगुग्गुलुपलैरपि पंचसंख्यैः ।
तत्सेवित प्रधमति प्रबल समीरम् सन्ध्यस्थिमज्जगतमप्यथकुष्ठमीदृक् ।
नाडीव्रणार्बुदभगन्दरगण्डमाला जत्रूर्ध्वसर्वगदगुल्मगुदोत्थमेहान् ।
यक्ष्मारुचिश्वसनपीनसकासशोफ हृत्पाण्डुरोगमदविद्रधिवातरक्तम् ॥

—(वा. भ.। चि. अ. २१)

नीम की छाल, गिलोय, बासा, पटोल, और कटेली १०-१० पल हरेक (५० तोले) लेकर सबको ३२ सेर पानी मे पकावे जब ४ सेर पानी शेष रह जाय तो छानकर उसमे २ सेर घी और निम्नलिखित चीजो का कल्क मिलाकर पकावे ।

कल्क द्रव्य—पाठा, वायबिडग, देवदारु, गजपीपल, यवक्षार, सज्जीखार, सोठ, हल्दी, सोफ, चव, कूठ मालकगनी, काली मिर्च, इन्द्रजौ, अजमोद, चीता, कुटकी, शुद्धभिलावा, बच, पीपलामूल, मजीठ, अतीस, कलिहारी की जड और अजवायन, हरेक का चूर्ण १। तोला तथा गूगल २५ तोले ।

सबको एकत्र मिलाकर पकावे । जब क्वाथ जल जाय तो घी को छान ले ।

इसके सेवन से अग्नि दीप्त होती, और सन्धि, अस्थि तथा मज्जागत कुष्ठ, नाडीव्रण (नासूर) अर्बुद, भगन्दर, गण्डमाला, ऊर्ध्वजत्रुगत (गले से ऊपर के) समस्त रोग, गुल्म, अर्श, प्रमेह, यक्ष्मा, अरुचि, श्वास, पीनस खासी, शोथ, हृद्रोग, पाण्डु, मद, विद्रधि और वातरक्त का नाश होता है।

(मात्रा—१ से २ तोले तक ।)

गौर्याद्यं घृतम्

गौर्यारिष्टपटोतरोध्रफलिनीयष्टयाहवनीलोत्पले
मंजिष्ठाकटुकेन्द्र वारुणिजपा मूर्वानिशाचन्दनैः ।
जातीक्षोरकपत्रकेशरदलैः पूतीकघोटाफलै

स्तुल्यै सिक्थकसारिवाद्वययुतैर्गव्य घृत पाचयेत् ।।
यष्टिक्षीरसपचकोलजलदक्वाथैश्च गौर्यादिभिः ।
सिद्ध सर्पिरिद हित त्रिषु भवेत्सद्य क्षतेपु ध्रुवम् ।
येगूढाश्चिरकालजातगतय प्रोच्छिन्नमासा व्रणाः
सस्रावा सरुजः सदाहपिडिका शुष्यन्तिरोहन्ति च ।।

(ग. नि. घृता.)

हल्दी, नीम के पत्र, पटोल पत्र, लोध, मेहदी के पत्र, मुलैठी, नीलोफर, मजीठ, कुटकी, इन्द्रायण की जड, जपापुष्प (औड्र पुष्पी) मूर्वा हल्दी, लालचन्दन, चमेली के पत्ते. क्षीरकपत्र (क्षीरमोरट लता नामक वृक्ष के पत्र), मौलसिरी के पत्र, पूतिकरज (करज भेद) घोटाफल (गोपघोण्टावदर भेद–क्षुद्र–वेद), मोम, सारिवा और कृष्ण सारिवा के कल्क तथा मुलैठी, क्षीरक पचकोल (पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोठ) और नागर मोथे के क्वाथ् से सिद्ध गव्य घृत तीनो प्रकार के क्षतो मे हितकर है ।

यह "गौरादिघृत गले सडे पुराने और अन्तर्मुख छिन्नमास, स्रावयुक्त पीडायुक्त, दाह और पिडिकायुक्त घावो को भर कर सुखा देता है ।

(प्र. वि.–घृत १ सेर, कल्क द्रव्य समभाग मिश्रित पावसेर, क्वाथ् द्रव्य समभाग मिश्रित २ सेर, क्वाथ् करने के लिए जल १६ सेर, शेप ४ सेर । इस घृत को घाव पर लगाना चाहिए ।

तिक्तकं घृतम्

पटोलनिम्वकटुकादार्वीपाठादुरालभा ।
पर्पट त्रायमाणा च पलाश पाचयेदपाम् ।।
द्वयाढकेऽष्टाशशेषेण तेन कर्पोन्मितैस्तथा ।
त्रायन्तीमुस्तभूनिम्वकलिंगकणचन्दनै ।।
सर्पिपो द्वादशपल पचेतत्तिक्तक जयेत् ।
पित्तकुष्ठपरीसर्पपिटिकादाहतृड् भ्रमान् ।।
कण्डूपाण्ड्वामयान् गण्डान् दुष्टनाडीव्रणापची: ।

वातपित्तकफोद्भूतान् द्वन्द्वजान् सन्निपातजान् ॥
हन्ति सर्वगदानेषा शुण्ठी सौभाग्यदायिनी ॥
सौभाग्यदायिनी स्त्रीणामतः सौभाग्यशुण्ठिका ॥

—(भै. र. । स्त्रीरो.)

१ सेर शुण्ठी चूर्ण को २० सेर दूध मे पकावे । जब खोये की तरह गाढ़ा हो जाय तो उसे २ सेर घी मे भून ले । तत्पश्चात् २१५ तोले खाड की चाशनी मे पकावे । जब पाक हो जाय तब शतावर, विदारीकन्द, मूसली, गोखरु, बला, गिलोय का सत, सोया, श्वेत जीरा, सोठ, काला जीरा, मिर्च, पीपल, चित्रक, दारचीनी, छोटी इलायची, तेजपत्र, अजवाइन, तालीशपत्र, कारवी (अजमोदा). सौफ, रास्ना, पुष्करमूल, वशलोचन, देवदारु, सोया, कचूर, जटामासी, वच, मोचरस, दारचीनी, तेजपत्र, नागकेसर, जीवन्ती, मेथीबीज, मुलहठी, श्वेतचन्दन, लालचन्दन, बायबिडग, सुगन्ध वाला, अडूसा-छाल, धनिया, कटूफल और मोथा; प्रत्येक का चूर्ण दो तोले, इनका प्रक्षेप दे और अच्छी प्रकार मिला नीचे उतार ले । इसमे पाक मृदु करना चाहिये । मोदक आदि के पाक मे खरपाक निषिद्ध है । पाक करने के पश्चात् मोदक बना ले और शुद्ध पात्र मे रखे । (मात्रा आधे तोले से २ तोले तक) गुरु और देवताओ की पूजा करके उपर्युक्त मात्रा मे शहद के साथ इसे सेवन करावे । यह वर्ण्य बल्य, आयुष्कर, वृष्य, वयःस्थापक तथा अग्निप्रदीपक है । यह विशेषत. सूतिका रोग मे अत्यन्त हितकर है । इसके सेवन से योनिरोग, प्रदर, योनिदोष, आर्तवदोष, आमवात, शिरोवेदना, सम्पूर्ण-शूल, कटिशूल, (कमरदर्द) प्रभृति रोग नष्ट होते है । सम्पूर्ण वातज, पित्तज, कफज, द्वन्द्वज तथा सन्निपातज रोगो को शान्त करता है । यह वृहत्सौभाग्यशुण्ठी स्त्रियो के सौभाग्य को बढाती है ।

गुग्गुलुतिक्तकंघृतम्

निम्वामृतापटोलाना कण्टकार्या वृपस्य च ।
पृथग्दशपलान्भागान् जलद्रोणे विपाचयेत् ॥
तेन पादावशेपेण घृतप्रस्थ विपाचयेत् ।
त्रिकटु त्रिफला मुस्ता रजनीद्वयवत्सकम् ॥
शुण्ठी दारुहरिद्रा च पिप्पलीमूलचित्रकम् ।
भल्लातकं यवक्षार कटुकातिविषा वचा ॥
विडंग स्वर्जिकाक्षार. शतपुष्पाऽजमोदकम् ।

एषामक्षसमैर्भागैर्गुग्गुलो पचभिः पलैः ।।
सुसिद्धं पीयमानच एतद्गुग्गुलुतिक्तकम् ।
विद्रधिं हन्ति सद्यो हि त्वग्दोपानपि दारुणान् ।।
कुष्ठानि स्वापसकोचवेगवन्ति स्थिराणि च ।
वातश्लेष्मसमुत्थानि मारुतास्रवप्रभेदि च ।।
गण्डमालार्बुदग्रन्थिनाडीदुष्टभगन्दरान् ।
कास श्वास प्रतिश्याय पाण्डुरोग ज्वर क्षयम् ।।
विषमज्वरहृद्रोगलिगदोषविषक्रिमीन् ।
प्रमेहासृग्दरोन्मानशुक्रदोषगदान् जयेत् ।

क्वाथ—नीम की छाल, गिलोय, पटोलपत्र, कटेली और वासा, प्रत्येक १०–१० पल (५० तोले) लेकर कूटकर १ द्रोण (१६ सेर) जल मे ४ सेर शेष रहने तक पकाकर छान लीजिए ।

कल्क द्रव्य–सोठ, मिर्च, पीपल, हैड, वहेडा, आमला, मोथा, हल्दी, दारुहल्दी, इन्द्रजी, सोंठ, दारुहल्दी, पीपलामूल चित्रक, शुद्ध भिलावा, यवक्षार कुटकी, अतीस वच, वायविडग, सज्जीखार सोया और अजमोद प्रत्येक १–१ कर्ष (१। तोला) और गूगल ५ पल (२५ तोले) ।

क्वाथ कौर कल्क तथा १ प्रस्थ घृत को अग्नि पर चढाकर उसमे गूगल को दोलायन्त्र विधि से लटका दीजिए । घृत सिद्ध हो जाने पर छानकर उसमे उक्त गूगल डालकर पुनः पकाइये और गूगल घृत मे मिल जाने पर उतारकर सुरक्षित रखिए ।

इसके सेवन से विद्रधि, भयकर त्वक्दोष, और भयकर, स्थिर तथा वातकफज कुष्ठ, गण्ड माला, अर्बुद ग्रन्थि, दुष्ट नाड़ीव्रण (नासूर), भगन्दर, खासी श्वास, प्रतिश्याय, पाण्डुरोग, ज्वर, क्षय, विषमज्वर, हृद्रोग, लिंगदोप, विष, कृमि प्रमेह रक्तप्रदर, उन्माद और शुक्रदोष नष्ट होते हैं ।

(मात्रा १ तोला अनुपान–गर्म दूध या गिलोय का क्वाथ ।)

निम्बादिघृतम्

निम्बामृतावृषपटोलनिदिग्धिकानाम् भागान्पृथग्दशपलानिवपचेद् घटेऽपाम् ।
अष्टांशशेपितरसेन पुनश्च तेन प्रस्थ घतस्य विपचेत्पिचुभागकल्कै. ।।

विस्फोटकविद्रधीगुल्मशोफोन्मादमदानपि ॥
हृद्रोगतिमिरव्यगग्रहणीश्वित्रकामलाः ।
भगन्दरमपस्मारमुदरं प्रदर गरम् ॥
अर्शोस्रपित्तमन्याश्च सुकृच्छ्रान्पित्तजानुगदान् ॥

पटोल पत्र, कुटकी, नीम की छाल, दारुहल्दी, पाठा, धमासा, पित्तपापडा और त्रायमाणा १-१ पल (५-५ तोले) लेकर १६ सेर पानी मे पकाइये जव २ सेर पानी शेष रह जाये तो छानकर उसमे १-१ कर्ष (१।-१।) तोला, त्रायमाणा, मोथा, चिरायता, इन्द्रजी, पीपल और चन्दन का कल्क तथा १२ पल (६० तोले) घी मिलाकर पकाइये। जव समस्त पानी जल जाय तो उतारकर छान लीजिये।

यह घृत पित्त, कुष्ठ, विसर्प, पिटिका, दाह, तृष्णा, भ्रम, खुजली, पाण्डु, नाडीव्रण, (नासूर) अपची (गण्डमाला भेद) विस्फोटक, विद्रधी गुल्म, शोथ, उन्माद, मद, हृद्रोग, तिमिर व्यग, ग्रहणी, श्वित्र (श्वेत कुष्ठ) कामला, भगन्दर, अपस्मार, उदररोग, प्रदर, अर्श और रक्त पित्तादि पित्तज रोगो का नाश करता है।

सुकुमारकुमारकघृतम् (२)

पचेत्पुनर्नवतुला तथा दशपला. पृथक् ।
दशमूलपयस्याश्च गन्धैरण्डशतावरी ॥
द्विदर्भशरकाशेक्षु मूलपोटगलान्विता ।
वहेपामष्टभागस्थे तत्र त्रिशत्पल गुडात् ॥
प्रस्थमेरण्डतैलस्य द्वौ घृतात्पयसस्तथा ।
आवपेद्द्विपलाश च कृष्णा तन्मूलसैन्धवम् ॥
यष्टीमधुकमृद्विकायवानी नागराणि च ।
तत्सिद्ध सुकुमाराख्य सुकुमार रसायनम् ।
वातातपाध्वयानादिपरिहाचयेष्वयन्त्रणम् ।
प्रयोज्य सुकुमाराणामीश्वराणा सुखात्मनाम् ॥
नृणा स्त्रीवृन्दभर्तृणामलक्ष्मीकलिनाशनम् ।

सर्वकालोपयोगेन कान्तिलावण्यपुष्टिदम् ।।
वर्ध्मविद्रधिगुल्मार्शोयोनिमेढ्रानिलार्तिपु ।
शोफोदरखुडप्लीहविड्विबन्धेपु चोत्तमम् ।।

—(वा. भ. । चि. अ. १३)

क्वाथ–पुनर्नवामूल सेर तथा दशमूल की प्रत्येक वस्तु, क्षीरकाकोली, अगर, अरण्डमूल, शतावर, दो प्रकार की दाभ, शर कासकी जड, ईख की जड और नल की जड ५०–५० तोले लेकर सबको एकत्र कूटकर १२८ सेर पानी मे पकावे और १६ सेर रहने पर छान लें।

कल्क–पीपल, पीपलामूल, सेधा नमक, मुलैठी, मुनक्का, अजवायन और सोठ १०–१० तोले लेकर बारीक चूर्ण बनावे । गुड १५० तोले ।

४ सेर घी मे २ सेर अण्डी का तेल, ४ सेर दूध और उपरोक्त क्वाथ तथा कल्क मिलाकर पकावे । जब जलाश शुष्क हो जाय तो घी को छान ले ।

यह घृत धनवानो, सुकुमारो और सुखशील व्यक्तियो के योग्य है । इसके सेवन काल मे वातातप, मुसाफरी आदि किसी बात का परहेज करने की आवश्यकता नही है।

इसे निरन्तर दीर्घकाल तक सेवन करने से कान्ति, लावण्य और पुष्टि की वृद्धि होती है।

यह घृत, वर्ध्म, विद्रधि, गुल्म अर्श, योनि और लिंग की वातज पीडा, शोथ उदररोग, वातरक्त, प्लीहा और मलबन्ध को नष्ट करता है ।

सोमघृतम् (२)

सिद्धार्थक वचा ब्राह्मी शखपुष्पी विषाणिकाम् ।
पयस्या मधुक कुष्ठ तथा कटुकरोहिणीम् ।।
सारिवा त्रिफला चैव चोरक सुमनो लताम् ।
वृषपुष्प समजिष्ठ देवदारु महौषधम् ।।
पिप्पल्यो भृगराज च निशा श्यामा सुवर्चलाम् ।
दशमूलमपामार्गमश्वगन्धा शतावरीम् ।।

जलद्रोणे पचेदेतान्भागैर्द्विपलिकैः पृथक् ।
तत्कषायं परिस्राव्य घृतस्यार्धाढकं पचेत् ॥
युक्त्या प्रदापयेदेतन्दायन्त्या चाभिमन्त्रितम् ।
द्विमासगर्भिणी नारीह्यष्टमासान्प्रयोजयेत् ॥
सर्वज्ञं जनयेत्पुत्रं सर्वामयान्विर्वजितम् ।
अस्य प्रयोगात्कुक्षिस्यथ. स्फुटवाग्व्याहरत्यपि ॥
योनिदुष्टाश्च या नार्यः शुग्रदुष्टाश्च ये नरा. ।
वन्ध्या च लभते पुत्रं शूर पण्डितमानिनम् ॥
जडगन्दमूक च पानादेव प्रशाम्यति ।
सप्तरात्रप्रयोगेण सुस्वर कुरुते नरम् ॥
मासत्रयोपयोगेन कुर्याच्छ्रुतिधर नरम् ।
नाग्निर्दहति तद्वेश्म न वज्रमुपहन्ति च ॥
न तत्र म्रियते बालो यत्रास्ते सोमसज्ञितम् ॥

—(वृ. मा. । स्त्रीरोगा.)

क्वाथ–सफेद सरसो, वच, ब्राह्मी, शख पुष्पी, (शखाहोली), काकोली, क्षीरकाकोली, मुलेठी, कूठ, कुटकी, कृष्ण सारिवा, हर्र, बहेड़ा, आमला, चोरक, चमेली के फूल, श्वेतसारिवा, बासे (अडूसे) के फूल, मजीठ, देवदारु, सोठ, पीपल, पीपलामूल, भगरा, हल्दी, फूलप्रियगु, हुलहुल, दशमूलकी, प्रत्येक औषधि, अपमार्ग (चिरचिटा), असगन्ध और शतावर, १०–१० तोले लेकर सबको एकत्र कूटकर ३२ सेर पानी मे पकावे और ८ सेर रहने पर छान ले ।

चार सेर घी मे यह क्वाथ (तथा ८ सेर पानी) मिलाकर पकावे । जब पानी जल जाये तो घी को छान ले और गायत्री मन्त्र से अभिमन्त्रित करके रखे ।

इसे २ मास का गर्भ होने के पश्चात् आठवे मास तक गर्भिणी को खिलाना चाहिये ।

इसे सेवन कराने से बुद्धिमान और नीरोग तथा स्पष्ट उच्चारण करने वाला पुत्र उत्पन्न होता है । यह घृत योनिदोषो और शुक्रविकारो को नष्ट करता है । इसके सेवन से वन्ध्या स्त्री को भी शूर और विद्वान पुत्र प्राप्त हो जाता है ।

इसे पीने से जडता, गद्‌गद् शब्द और मूकता (गूगेपन) का नाश होता है ।

इसे सात दिनो तक सेवन करने से मनुष्य का स्वर मधुर हो जाता है और ३ मास तक सेवन करने से वह श्रुतिधर हो जाता है।

जिस घर मे यह घृत होगा वह विघ्नो से सुरक्षित रहेगा और उसमे बालमृत्यु न होगी।

(मात्रा ६ माशे से १ तोले तक)

सामान्य योग

संजीवनीवटी

विडग नागर कृष्णा पथ्यामलविभीतकम्।
वचा गुडूची भल्लात सविप चात्र योजयेत्॥
एतानी समभागानि गोमूत्रेणैव पेपयेत्।
गुजाभा गुटिका कार्या दद्यादार्द्रकजै रसैः॥
एकामजीर्णगुल्मेषु द्वे विपूच्या प्रदापयेत्।
तिस्रश्च सर्पदष्टे तु चतस्रः सन्निपातिके॥
वटी सजीवनी नाम्ना सजीवयति मानवम्।

(यो. त १ त २४, व्र. यो त. १ त. ७१, वै. र. १ अग्निमाद्या,; शा. स० १ ख० २ अ. ७; यो. र १ अजीर्णाद्य, यो. चि. म. १ अ. ३)

वायविडग, सोठ, पीपल, हर्र, आमला, बहेडा, वच, गिलोय, भिलावा और शुद्ध वछनाग; इनका चूर्ण समान भाग लेकर सबको गोमूत्र के साथ एकत्र खरल करके १-१ रत्ती की गोलिया बना ले।

इनमे अजीर्ण और गुल्म मे १ गोली, विसूचिका मे २ गोली, सर्प दश मे ३ गोली और सन्निपात मे ४ गोली देनी चाहिये।

अनुपान—अदरक का रस।

ये गोलिया उक्त रोगो से मृत्प्राय रोगी को भी जिला देती है।

नोट–प्रथम भिलावे को गोमूत्र मे घोट कर कणरहित कर लेना चाहिये और फिर उसमें अन्य औषधिया मिलानी चाहिये।

सहकारवटी

सहकारस्य निम्वस्य खदिरस्याशनस्य च ।
तुला पृथग् विनि क्वाथ्य द्रोणमानेन चाम्बुना ।।
एकीकृत्य कषायाश्च पादशिष्टान् पुन पचेद् ।
तत्र क्षिपेन्मलयज वालक रक्तचन्दनम् ।।
गैरिक देवपुष्पच धातकी रजनीद्वयम् ।
लोध्रं जातीफल श्यामा चातुर्जात फलत्रयम् ।।
वटप्ररोहमजिष्ठामासीरम्बुधर विडम् ।
कटुत्रयमश्चन्द्र प्रसृत्यर्द्ध प्रमाणत ।।
तत कलायसदृशीर्विदध्याद् गुडिका भिषक् ।
रोगान् कण्ठौष्ठरसनादन्ततालुसमुद्भवान् ।।
सहकारवटी हन्यादाश्वेव वदने धृता ।
जनयेन्मुखसौरभ्य सुरुचि स्थिरदन्तताम् ।।

(भै. र. १ मुखरोगा.)

आम की छाल ६। सेर लेकर कूटकर ३२ सेर पानी मे पकावे और ८ सेर शेष रहने पर छान ले । इसी प्रकार नीम की छाल, खैर की छाल, और असन वृक्ष की छाल का क्वाथ बनावे और फिर सबको एकत्र मिलाकर पुन मन्दाग्नि पर पकावे । जव वह गाढा हो जाय तो उसमे निम्नलिखित प्रक्षेप मिलाकर मटर के समान गोलिया वनाले ।

प्रक्षेप – श्वेतचन्दन सुगन्धवाला, लाल चन्दन, गेरु, लौग, धाय के फूल हल्दी दारुहल्दी, लोध, जायफल, नागकेसर, हर्रे वहेडा आमला बड के अकुर, मजीठ, जटामासी, नागरमोथा, विडनमक, सोठ, मिर्च, पीपल, लोहभस्म, और कपूर ५–५ तोले लेकर वारीक चूर्ण वनावे।

ये गोलिया कण्ठ ओष्ठ, जिह्वा, दात और तालु के रोगो को नष्ट करती है तथा मुख को सुगन्धित और दातो को दृढ करती हे। इनको मुख मे रखना चाहिये ।

तेजोवत्यादिगुटिका

तेजोवती दारुनिशा सकृष्णा
यवाग्रज तार्क्ष्यगिरिच पाठाम् ।
क्षौद्रेण कुर्याद्गुटिका मुखेन
ता धारयेत्सर्वगलामयघ्नीम् ॥

(वृ. यो. त. १ त. १२८)

वच, दारुहल्दी, पीपल, जवाखार, रसौत और पाठाका समान भाग चूर्ण लेकर सबको शहद मे मिलाकर गोलिया बना लीजिये ।

इन्हे मुंह मे रखकर रस चूसने से गले के समस्त रोग नष्ट होते है ।

त्रिफलादिगुटिका

फलत्रयद्वीपिकिराततिक्त यष्टयाह्वसिद्धार्थककटुत्रिकाणि ।
मुस्ताहरिद्राद्वययावशूक वृक्षाम्लकाम्लग्रिमवेतसाश्च ॥
अश्वत्थजम्ब्वाम्रधनजयत्वक् त्वक्चाहिमाराखदिरस्य सार. ।
क्वाथेन तेषा घनता गतेन तच्चूर्णयुक्ता गुटिका विधेया ॥
ता धारिता घ्नन्ति मुखेन नित्यं कण्ठौष्ठताल्वादिगदान्सुकृच्छ्रान् ।
विशेषतो रोहिणिकास्यशोप गन्धान्विदेहाधिपतिप्रणीता ॥

(वा. भ. १ उत्त अ २२)

त्रिफला, (हर्र, बहेडा, आमला), चीता, चिरायता, मुलैठी, सरसो, त्रिकटु (सोठ, मिर्च, पीपल,), मोथा, हल्दी, दारुहल्दी, यवक्षार, तिनडीक, बिजौरे नीबू के छिलके, अम्लवेत, पीपल वृक्ष की छाल, जामन, आम, कोह (अर्जुन) और दुर्गन्धित खैर की छाल तथा खैर सार समान भाग लेकर चूर्ण कर लीजिए । इसमे से आधे चूर्ण को ८ गुने पानी मे पकाइये जब चौथा भाग पानी शेष रहे तो उसे छानकर फिर पकाइये और जब वह गाढा हो जाय तब उसमे शेष रहा हुवा उपरोक्त चूर्ण मिला कर गोलिया बना लीजिये ।

इन्हें मुख मे रखने से कण्ठ, ओष्ठ, तालु और गले के कष्ट साध्य रोगो का और विशेषतः रोहिणी, मुखशोष तथा मुख की दुर्गन्ध का नाश होता है।

नारायणं चूर्णम्

यवानी हपुषा धान्य त्रिफला सोपकुचिका ।
कारवी पिप्पलीमूलमजगन्धा सठी वचा ॥
शताह्वा जीरक व्योष स्वर्णक्षीरी सचित्रकम् ।
द्वौ क्षारौ पौष्कर मूल कुष्ठ लवणपचकम् ॥
विडगच समाशानि दन्तीभागत्रय तथा ।
त्रिवृद्विशाले द्विगुणे सातला स्याच्चतुर्गुणा ॥
एतन्नारायण नाम चूर्ण रोगगणापहम् ।
एनत्प्राप्य निवर्त्तन्ते रोगा विष्णुमिवासुराः ॥
तक्रेणोदरिभिः पेयो गुल्मिभिर्बदराम्बुना ।
आनद्धवाते सुरया वातरोगे प्रसन्नया ॥
दधिमण्डन विटसगे दाडिमाम्बुभिरर्शसि ।
परिकर्तेषु वृक्षाम्लैरुष्णाम्बुभिरजीर्णके ॥
भगन्दरे पाण्डुरोगे कासे श्वासे गलग्रहे ।
हृद्रोगे ग्रहणीरोगे कुष्ठे मन्दानले ज्वरे ॥
दष्ट्राविषे मूलविषे सगरे कृत्रिमे विषे ।
यथार्ह स्निग्धकोष्ठेन पेयमेतद्विरेचनम् ॥

अजवायन, हाऊबेर, धनिया, हर्र, बहेडा, आमला, क्लौजी, कालाजीरा, पीपलामूल, अजमाद सठी (कचूर), बच, सोया, जीरा, सोठ, मिर्च, पीपल, स्वर्णक्षीरी (सत्यानाशी की जड-चोक), चीता, यवक्षार, सज्जीक्षार पोखरमूल, कूठ, पाचो नमक और बायबिडग १-१ भाग तथा दन्तीमूल ३ भाग, निसोत और इन्द्रायन २-२ भाग और सातला ४ भाग लेकर चूर्ण बनावे।

इसे उदर रोगो मे तक्र के साथ, गुल्म मे बेर के क्वाथ के साथ, वायु के निरोध मे सुरा के साथ, वातव्याधि मे प्रसन्ना (सुराभेद) के साथ, मल की कठिनता मे दही के तोड के साथ, अर्श मे अनार के रस के साथ, परिकर्तिका (कैंची से काटने के समान पीडा) मे इमली के पानी के साथ तथा अजीर्ण मे उष्ण जल के साथ सेवन करना चाहिये। इनके अतिरिक्त इसे भगन्दर,

पाण्डु, खांसी, श्वास, गलग्रह, हृद्रोग, ग्रहणी, कुष्ठ, अग्निमांद्य, ज्वर, दूषीविष, मूलविष और गर विषादि मे भी उचित अनुपान के साथ देना चाहिये।

प्रथम रोगी को स्निग्ध करके यह चूर्ण सेवन कराया जाय तो भली भांति विरेचन हो जाता है।

पुष्यानुगचूर्णम्

पाठाजम्ब्वाम्रयोर्मध्य शिलाभेद रसाञ्जनम्।
अम्बष्ठकी मोचरस. समङ्गा पद्मकेशरम्॥
वाह्लीकातिविषा मुस्त बिल्व लोध्र सगैरिकम्।
कट्फल मरिच शुण्ठी मृद्वीका रक्तचन्दनम्॥
कट्वङ्गवत्सकानन्ता धातकी मधुकार्जुनम्।
पुष्येणोद्धृत्य तुल्यानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत्।
तानि क्षौद्रेण सयोज्य पाययेत्तण्डुलाम्बुना।
असृग्दरातिसारेषु रक्त यच्चोपवेश्यते॥
दोषागन्तुकृता ये च बालाना ताश्च नाशयेत्।
योनिदोष रजोदोष श्वेत नील सपीतकम्॥
स्त्रीणा श्यावारुण यच्च तत्प्रसह्य निवर्तयेत्।
चूर्ण पुष्यानुग नाम हितमात्रेयपूजितम्॥
(अम्बष्ठा दक्षिणे ख्याता गृह्णन्त्यन्ये तु लक्ष्मणाम्)

पाठा, जामन की गुठली की गिरी, आम की गुठली की गिरी, पाषाणभेद, रसौत, अम्बष्ठकी, मोचरस, मजीठ, कमल केसर, केसर, अतीस, नागरमोथा, बेलगिरी लोध, गेरूमिट्टी, कायफल, कालीमिर्च, सोठ, मुनक्का, लालचन्दन सोनापाठा (स्योनाक–अरलु) की छाल इन्द्रजौ, अनन्तमूल धाय के फूल, मुलैठी और अर्जुन की छाल। सब चीज पुष्य नक्षत्र मे एकत्रित करे और सबके समान भाग चूर्ण को एकत्र मिला ले।

इसे शहद मे मिलाकर चाटकर ऊपर से तण्डुलोदक (चावलो का पानी) पीने से स्त्रियो का रक्तप्रदर, रक्तातिसार योनिदोष, रजो दोष योनिमार्ग से सफेद, नीला, पीला, काला और लाल स्राव होना और प्रसूत रोग आदि नष्ट होते है।

नोट– इस योग मे अम्बष्ठा शब्द से कुछ विद्वान तो दक्षिण देश मे इसी नाम से प्रसिद्ध औषधि डालते हैं और कोई कोई आचार्य लक्ष्मणा लेते है ।

(मात्रा— २-३ माशे ।)

ब्राह्यादिचूर्णम्

ब्राह्मीवचाभयावासा पिप्पलीमधुसयुता ।
अस्य प्रयोगात्सप्ताहात् किन्नरै. सह गीयते ।।

ब्राह्मी, वच, हर्र, वासा और पीपल के चूर्ण को शहद मे मिलाकर चाटने से गला खुल जाता है, और स्वर अत्यन्त मधुर हो जाता है ।

दाडिमाष्टकचूर्णम्

पलद्वय दाडिमस्य व्योषस्य च पलद्वय ।
त्रिगन्धस्य पल चैक खण्डस्याष्टपलानि च ।।
सर्वमेकीकृत चूर्ण प्रशस्त दाडिमाष्टकम् ।
दीपन रुचिद कण्ठय सग्राह ग्रहणीहरम् ।।

(वृ. नि र । सग्र. ; वै. र. । सग्र.)

अनारदाना २ पल, सोठ, मिर्च, पीपल तीनो अलग अलग २–२ पल, दालचीनी, इलायची, तेजपात तीनो समान भाग मिलाकर ३ पल (१५ तोले) और खाड ८ पल लेकर चूर्ण बनावे ।

यह 'दाडिमाष्टक चूर्ण" दीपन, रोचक, कण्ठ के लिए हितकारी और ग्रहणी रोग नाशक है ।

गन्डीरासवः

जातमार तु गण्डीर सपुष्प परिशोषयेत् ।
खण्डश क्षदित कृत्वा तस्य पचाढक पचेत् ।।

श्रीष्चैव त्रिफला प्रस्थान् दशमूली तुला तथा ।
दद्यात्कुटजवलकस्य पलाना पचविंशतिम्
भल्लातकानीन्द्रयव विडग घनमेव च ।
अर्धप्रस्थसमान् भागानेकैकस्य समावपेत् ।
पाठा मधुरसा दन्ती षड्ग्रन्था चित्रकस्तथा ।
एषा दशपलान्भागान्मृद्वी कायास्तथटिकम्
तोयद्रोणेषु दशसु पचेद् द्विद्रोणशेषितम् ।
तस्मिन्कषाये पूते तु गुडस्यैका तुला क्षिपेत् ॥
तथा तु शोधितस्यापि शुभे भाण्डे निवापयेत् ।
द्वौ प्रस्थौ मधुनश्चैव द्वावयोरजसस्तथा ॥
अर्ध प्रस्थो विडगाना कुडवो मरिचस्य च ।
एतयोः सूक्ष्मचूर्णानि प्रतिवापार्थमाहरेत् ।
चूर्णमरीचकानाच मधुना सह योजयेत् ।
भाण्डप्रलेप कर्त्तव्य समासिच्य निधापयेत् ॥
एव मासस्थित' पेयो यथाव्याधि बलाबलम् ।
गण्डिरारिष्ट इत्येष व्यासत परिकीर्तित ।
एष शोषान् प्रमेहाश्च गुल्माश्च जठराणि च ।
क्रिमिकुष्ठानि वर्ध्मानि प्लीहार्शांसि भगन्दरम् ।
श्वयथून् पाण्डुरोगाश्च ग्रहणीदोषमेव च ।
ग्रन्थीश्च गलगण्ड च गण्डमाला तथैव च ॥
विषमज्वरकासाश्च विद्रधीन् वातशोणितान् ।
अरिष्ट शमयत्याशु युधि शक्र इवासुरान् ।

(ग नि । प्रास. ६)

क्वाथ द्रव्य—सार और पुष्पयुक्त शुष्क मजीठ २० सेर (१६०० तोले), त्रिफला ३० सेर, दशमूल, ६ सेर, कुडेकी छाल २५ पल (१२५ तोले), भिलावा, इन्द्रजौ, वायविडग और नागरमोथा आधा आधा प्रस्थ (४० तोले) पाठा, मूर्वा, दन्तीमूल, वच और चीता १०–१० पल तथा मुनक्का। आढक (४ सेर) सबको कूटकर १० द्रोण (१६० सेर) पानी मे पका लीजिए, जब दो द्रोण पानी शेष रह जाय तो उतारकर छान लीजिए। तत्पश्चात् इसमे १ तुला (६ सेर) शुद्ध गुड, २ प्रस्थ (२ सेर) शहद और निम्नलिखित प्रक्षेप द्रव्यो का चूर्ण मिलाकर घृतावत (चिकने) मटके मे (कि जिसके भीतर मरिच चूर्ण मिश्रित मधु का लेप कर दिया गया हो) भर कर यथाविधि मुख बन्द करके १

मास पर्यन्त रक्खा रहने दीजिये और उसके पश्चात् छानकर रोगी और रोग के बलावल का विचार करके यथोचित मात्रानुसार सेवन कराना चाहिये।

यह गण्डीरारिष्ट शोप, प्रमेह, गुल्म, उदररोग, कृमि, कुष्ठ, प्लीहाभिवृद्धि, अर्श, भगन्दर, शोथ पाण्डु ग्रहणी, ग्रन्थि, गलगण्ड, गण्डमाला, विषम ज्वर, खासी, विद्रधि और वातरक्त को इस प्रकार नष्ट करता है जिस प्रकार युद्ध मे इन्द्र असुरो का सहार करता है।

प्रक्षेप द्रव्य–शुद्ध लोहा चूर्ण २ प्रस्थ, वायविडग आधा प्रस्थ और स्याह मिर्च २० तोले। सबका महीन चूर्ण करके उपरोक्त क्वाथ मे मिलाए।

शतावरी तैलम् (४)

क्षीराढकं शतावर्या रसप्रस्थद्वय पृथक्
शृ गवेरस्य तैलस्य प्रस्थ साध्यच कार्षिकै ॥
शताह्वादारुशैलेयमासीचन्दनवालकै.।
त्वगेलाशुमतीरास्नातगरैरण्डसैन्धवै ॥
अश्वगन्धा समगोग्रामूर्वामरिचनागरै ।
तन्मासपीत विधिवत्तैल सिद्धार्थकं जयेत् ॥
कुब्जवामनपगुत्ववातभग्नावकु चनम् ।
सर्वांगैकांगरोगाश्च हनुमन्यागलामयान् ॥
वातरक्तच कुष्ठानि कण्डूपामाविचर्चिका.।
गण्डमालापचिवक्त्रपाकोदरभगन्दरान् ॥
कुष्ठव्रणान्सविषमानारम्भान्विविधाञ्ज्वरान् ।
सन्निपाताश्च शूलानि विपमूर्ध्वभ्रमामयान् ॥
वातगुल्म बहुन्मेहानन्त्रवृद्धि च शर्कराम् ।
कामला पाण्डुरोगच शूल नेत्रगदोद्भवम् ॥
मूढगर्भाश्च भग्नाश्च योनेर्वन्ध्यामयान्बहून् ।
वृद्धानामल्पशुक्र क्स्मृतीना क्षयरेतसाम् ॥
रसायन वलारोग्यवर्ण्यग्न्यायुर्विवर्द्धनम् ॥

—(व. से. १ वातव्या.)

द्रव पदार्थ—दूध ८ सेर, शतावरी का रस ४ सेर और अदरक का रस २ सेर ।

कल्क—सोया, देवदारु, छारछरीला, जटामासी, सफेद चन्दन, सुगन्धवाला, दालचीनी, छोटी इलायची, शालपर्णी, रास्ना, तगर, अरण्ड की जड, सेंधा नमक, असगन्ध मजीठ, वच, मुर्वा, काली मिर्च और सोठ १।-१। तोला लेकर सबको एकत्र पीस ले ।

२ सेर तेल मे उपरोक्त द्रव पदार्थ और कल्क मिला कर पकावे । जब पानी जल जाय तो तेल को छान ले ।

यह तेल कुब्जता, वामनता, पगुता, वातभग्न किसी अग का सिकुड जाना, सर्वांग और एकाग वायु, ठोडी के रोग मन्या रोग, गल रोग, वातरक्त, कुष्ठ, कण्डू (खूजली), पामा, विर्चचिका, गण्डमाला, अपची मुखपाक, उदररोग, भगन्दर, कुष्ठ, व्रण, विषमादि अनेक ज्वर, सन्निपात, शूल, विषविकार, ऊर्ध्व जत्रुगत रोग, भ्रम, वातज गुल्म, प्रमेह, अन्त्रवृद्धि, शर्करा, कामला, पाण्डु, नेत्र रोग, मूढ गर्भ, भग्न, वन्ध्यत्व, शुक्रह्रास, दृष्टि की कमी, स्मृति की न्यूनता और वीर्यक्षयादि रोगो मे उपयोगी है तथा रसायन है और बल, वर्ण आरोग्य, आयु, अग्नि आदि की वृद्धि करता है ।

शारिवाद्य तैल

शारिवारिष्टकूष्माण्डपोतकीभस्मजाऽम्बुना ।
गुडूचीक्वाथदुग्ध च कर्म्मरगरसेन च ।।
पचेत्तैलच तिलज दत्त्वैतानि भिषग्वर ।
काकोल्यौ जीरक मेदे शताह्वा क्षीरिणी युते· ।।
जिगीसिक्थामृतानन्तासर्जसैन्धवचन्दने ।
पड्गु जाधिकचतुर्मास कर्षद्वितयसयुतम् ।।
हन्ति वातास्रज घोर स्फुटित गलितन्तथा ।
चर्मदलच पामान त्वग्दोषच विषादिकाम् ।।
कुष्ठान्यर्शांसि वीसर्पव्रणशोथभगन्दरान् ।
न सोऽस्ति वातरक्तस्य विकारोय न हन्ति च ।।

(र. र. । वातरक्ता)

द्रव पदार्थ—सारिवा, नीम की छाल, पेठा (कुम्हडा) और पोई का शाक, इनके क्षार का पानी ४ सेर, गिलोय का क्वाथ ४ सेर, दूध ४ सेर और कमरख का रस ४ सेर ।

कल्क—काकोली, क्षीर काकोली, जीरा, मेदा, महामेदा, गाम्भारी की छाल, मजीठ मोम, गिलोय, अनन्तमूल, चोर, सेधा नमक और सफेद चन्दन, प्रत्येक २ तोले ११ माशे ६ रत्ती (लगभग ३ तोले) लेकर कल्क बनावे।

४ सेर तिल के तेल मे उपरोक्त द्रव पदार्थ और कल्क मिलाकर पकावे, जब पानी जल जाय तो तेल को छान ले।

यह तेल स्फुटित और गलित घोर वातरक्त, चर्मदल, पामा, त्वग्दोष, विषादिका, कुष्ठ, अर्श, विसर्प, व्रण, शोथ और भगन्दर को नष्ट करता है।

वातरक्त का ऐसा कोई विकार नही जिसे यह नष्ट न करता हो।

शोथशार्दूलतैलम्

धुस्तूरो दशमूलच सिन्धुवार जयन्तिका।
पुनर्णवा करजश्च षट्पलानि प्रगृह्य च॥
जलद्रोणे विपक्तव्य ग्राह्य पादावशेषितम्।
प्रस्थच कटुतैलस्य कल्कान्येतानि दापयेत्॥
रास्ना पुनर्णवा दारु मूलक नागर कणा।
सिद्ध तेलवर ह्यं तन्नाशयत्याशु सेवनात्॥
शोथ सुदारुण घोर वातपित्तकफोद्भवम्।
असाध्य सवदेहस्थ सन्निपातसमुद्भवम्॥
श्लीपदच ज्वर पाण्डु कृमिदोष विनाशयेत्।
क्लिन्नव्रणप्रशमन नाडीदुष्टव्रणापहम्॥
शोथशार्दूलक तेल वलवर्णप्रसादनम्॥

(भै. र.। शोथा, ; धन्व.)

क्वाथ—धतूरा, दशमूल, सभालु, जयन्ती, पुनर्नवा और करज ३०—३० तोले लेकर सबको ३२ सेर पानी मे पकावे और ८ सेर शेप रहने पर छान ले।

कल्क—रास्ना, पुनर्नवा, देवदारु, सूखी मूली, सोठ और पीपल समान भाग मिश्रित २० तोले लेकर कल्क बनावे।

द्रव पदार्थ—दूध ८ सेर, शतावरी का रस ४ सेर और अदरक का रस २ सेर ।

कल्क—सोया, देवदारु, छारछरीला, जटामासी, सफेद चन्दन, सुगन्धवाला, दालचीनी, छोटी इलायची, शालपर्णी, रास्ना, तगर, अरण्ड की जड, सेधा नमक, असगन्ध गजीठ, वच, मुर्वा, काली मिर्च और सोठ १।-१। तोला लेकर सबको एकत्र पीस ले ।

२ सेर तेल मे उपरोक्त द्रव पदार्थ और कल्क मिला कर पकावे । जब पानी जल जाय तो तेल को छान ले ।

यह तेल कुब्जता, वामनता, पगुता, वातभग्न किसी अग का सिकुड जाना, सर्वांग और एकाग वायु, ठोडी के रोग मन्या रोग, गल रोग, वातरक्त, कुष्ठ, कण्डू (खूजली), पामा, विर्चचिका, गण्डमाला, अपची मुखपाक, उदररोग, भगन्दर, कुष्ठ, व्रण, विपमादि अनेक ज्वर, सन्निपात, शूल, विषविकार, ऊर्ध्व जत्रुगत रोग, भ्रम, वातज गुल्म, प्रमेह, अन्त्रवृद्धि, शर्करा, कामला, पाण्डु, नेत्र रोग, मूढ गर्भ, भग्न, वन्ध्यत्व, शुक्रह्रास, दृष्टि की कमी, स्मृति की न्यूनता और वीर्यक्षयादि रोगो मे उपयोगी है तथा रसायन है और बल, वर्ण आरोग्य, आयु, अग्नि आदि की वृद्धि करता है ।

शारिवाद्यं तैल

शारिवारिष्टकूष्माण्डपोतकीभस्मजाऽम्बुना ।
गुडूचीक्वाथदुग्ध च कर्म्मरगरसेन च ।।
पचेत्तैलच तिलज दत्त्वैतानि भिपग्वर ।
काकोल्यौ जीरक मेदे शताह्वा क्षीरिणी युतै ।।
जिगीसिवथामृतानन्तासर्जसैन्धवचन्दने ।
पड्गु जाविकचतुर्मास कर्पद्वितयसयुतम् ।।
हन्ति वातास्रज घोर स्फुटित गलितन्तथा ।
चर्मदलच पामान त्वग्दोपच विपादिकाम् ।।
कुष्ठान्यर्शामि वीसर्पव्रणशोथभगन्दरान् ।
न सोऽस्ति वातरक्तस्य विकारोय न हन्ति च ।।

(र. र. । वातरक्ता)

द्रव पदार्थ—सारिवा, नीम की छाल, पेठा (कुम्हडा) और पोई का शाक, इनके क्षार का पानी ४ सेर, गिलोय का क्वाथ ४ सेर, दूध ४ सेर और कमरख का रस ४ सेर ।

कल्क–काकोली, क्षीर काकोली, जीरा, मेदा, महामेदा, गाम्भारी की छाल, मजीठ मोम, गिलोय, अनन्तमूल, चोर, सेधा नमक और सफेद चन्दन; प्रत्येक २ तोले ११ माशे ६ रत्ती (लगभग ३ तोले) लेकर कल्क बनावे ।

४ सेर तिल के तेल मे उपरोक्त द्रव पदार्थ और कल्क मिलाकर पकावे, जब पानी जल जाय तो तेल को छान ले ।

यह तेल स्फुटित और गलित घोर वातरक्त, चर्मदल, पामा, त्वग्दोष, विपादिका, कुष्ठ, अर्श, विसर्प, व्रण, शोथ और भगन्दर को नष्ट करता है ।

वातरक्त का ऐसा कोई विकार नही जिसे यह नष्ट न करता हो ।

शोथशार्दूलतैलम्

धुस्तूरो दशमूलच सिन्धुवार जयन्तिका ।
पुनर्णवा करजश्च षट्पलानि प्रगृह्य च ।।
जलद्रोणे विपक्तव्य ग्राह्य पादावशेषितम् ।
प्रस्थच कटुतैलस्य कल्कान्येतानि दापयेत् ।।
रास्ना पुनर्णवा दारु मूलक नागर करणा ।
सिद्ध तेलवर ह्येतन्नाशयत्याशु सेवनात् ।।
शोथ सुदारुरण घोर वातपित्तकफोद्भवम् ।
असाध्य सवदेहस्थ सन्निपातसमुद्भवम् ।।
श्लीपदच ज्वर पाण्डु कृमिदोष विनाशयेत् ।
क्लिन्नव्रणप्रशमन नाडीदुष्टव्रणापहम् ।।
शोथशार्दूलक तैल वलवर्णप्रसादनम् ।।

(भै. र. । शोथा, ; धन्व.)

क्वाथ–धतूरा, दशमूल, सभालु, जयन्ती, पुनर्नवा और करज ३०–३० तोले लेकर सबको ३२ सेर पानी मे पकावे और ८ सेर शेप रहने पर छान ले ।

कल्क–रास्ना, पुनर्नवा, देवदारु, सूखी मूली, सोठ और पीपल समान भाग मिश्रित २० तोले लेकर कल्क बनावे ।

२ सेर सरसो के तेल मे यह कल्क और क्वाथ मिलाकर पकावे। जब पानी जल जाय तो तेल को छान ले।

यह तेल वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज सर्व देहगत भयकर से भयकर शोथ को भी नष्ट कर देता है। इसके अतिरिक्त यह श्लीपद, ज्वर, पाण्डु, कृमिदोष, विलन्न व्रण और दुष्ट नाडीव्रण मे भी उपयोगी है तथा बल वर्ण की वृद्धि करता है।

अजीर्णारिरसः

शुद्ध सूत गन्धक च पलमान पृथक्पृथक् ॥
हरीतकी च द्विपला नागर त्रिपल स्मृतम्।
कृष्णा च मरिच तद्वत्सिन्धूत्थ त्रिपल पृथक्।
चतुष्पला च विजया मर्दयेन्निम्बुकद्रवै ॥
भावयेत्सप्तवारास्तद्धर्ममध्ये पुन पुन ॥
सिद्धस्त्वजीर्णारिरय प्रसिद्धो
भुक्तस्तथा स्वाग्निवल निरीक्ष्य।
सम्पाचयत्याशु करोति वह्नि,
मजीर्णदोष परिहृत्य पूर्वम् ॥
आहार द्विगुण विधाय नितरा पुष्टि परा सदिशे-
दापाक जठरस्थितस्तु बहुधा सपाच्य सरेचयेत्।
तस्मात्सेव्यमिद प्रभातसमये वैद्येन दत्त क्षणा-
च्छूलप्लीहमहोदरार्तिशमनो गुल्मामविद्वेषण ॥

र. का, र. सु, यो. र., वृ. यो., चि. र., वै. र., र. च., नि. र., वै. चि,
र. क. ल, रसानस., चि क, टो, अजीर्णाऽधिकारे।

टि० चिकित्सा क्रमकल्पवल्लया हरीतकी त्रिपला पठिता नागर च न गृहीतमिती विशेष।

शुद्ध पारा और गन्धक प्रत्येक ४ तोले, हरड ८ तोले, सोठ, पीपल कालीमिर्च और सेधा नमक, प्रत्येक १२ तोले और भाग १६ तोले सबको मिलाकर नीबू के रस मे घोटना इसी प्रकार धूप मे ७ बार भावना देना यह सिद्ध और प्रसिद्ध अजीर्णारि रस है। जठराग्नि के बल को देखकर के खाने से जठराग्नि को प्रदीप्त करता है। और अजीर्ण के सभी दोषो को नष्ट

करता है । आहार को यह रस दूना कर देता है और बहुत ही पुष्टि को देता है । आहार को पचने तक पेट मे रखकर फिर बाहर निकालता है । इसलिये इस रस को वैद्य से लेकर प्रात:काल खाना चाहिये । यह रस शूल, प्लीहा, बहुत बढा हुआ उदरशूल और गुल्म रोग को नष्ट करता है ।

बब्बूरादिप्रयोगः

आभाच सोमराजीश्च समभागविचूर्णिताम् ।
नर क्षीरेण सम्पीत्वा स कृश स्थूलता व्रजेत् ।।
देहकम्पे च शोषे च योगमेतत् प्रयोजयेत् ।
मासमात्रोपयोगेन मतिमाजायते नर ।।
मेधावी स्मृतिमाश्चैव वलिपलितनाशन ।।

(व. से. । रसाय.)

कीकर (बबूल) की फली और बावची समान भाग लेकर चूर्ण बनावे ।

इसे दूध के साथ सेवन करने से कृश पुरुष स्थूल हो जाता है । इसके अतिरिक्त यह चूर्ण देहकम्प और शोष रोग मे भी हितकारी है ।

इसे लगातार १ मास तक सेवन करने से मनुष्य बुद्धिमान, स्मृतिमान, मेधावी और वलिपलित रहित हो जाना है ।

(मात्रा– ३ से ६ माशे तक ।)

निम्बस्वरसपानम्

रसोनिम्बस्य मजर्या पीतश्चैत्रे हितावह ।
हन्ति रक्तविकाराश्च वातपित्त कफ तथा ।।

(यो. चि. । मिश्र.)

चेत के महीने मे नीम के फूलो का स्वरस पीने से वातज, पित्तज, और कफज रक्त विकार नष्ट होते है ।

शिरीषारिष्टः

पचेत्तुलार्धे द्विद्रोणे शिरीषस्य जले सुधी ।
पादशेषे कषायेऽस्मिन् क्षिपेद्गुडतुलाद्वयम् ।।
कृष्णा प्रियगु कुष्ठैला नीलिनी नागकेशरम् ।
रजन्यौ पलमानेन दद्यादत्र च नागरम् ।।
मासादूर्ध्वं जातरस यथामात्र प्रयोजयेत् ।
शिरीषारिष्टमित्येतद् विषव्यापद्विनाशनम् ।।

(भैषज्य रत्नावली । विषा.)

३ सेर १० तोले सिरस की छाल ६४ सेर पानी मे पकावे और ८ सेर शेष रहने पर छान ले । तदनन्तर उसमे १२।। सेर गुड तथा ५-५ तोले पलपल, फुलप्रियगु, कूठ, इलायची, नील की षड, नागकेसर, हल्दी, दारुहल्दी और सोठ का चूर्ण मिलाकर सबको मृत्पात्र मे बन्द करके रख दे और एक मास पश्चात् निकाल कर छान ले ।

यह अरिष्ट विषविकारो को नष्ट करता हे ।

दार्वीरसक्रिया

मुखपाके प्रयोक्तव्य' सक्षौद्रो मुखधावने ।
स्वरस क्कथितो दार्व्या घनीभूतो रसक्रिया ।।
सक्षौद्रा मुखरोगासृग्दोषनाडीव्रणापहा ।।

मुख पाक मे, दारु हल्दी के स्वरस मे शहद मिलाकर उसके कुल्ले करने चाहिये और दारुहल्दी के क्वाथ को पुन पकाकर गाढा करके उसमे शहद मिला कर उसका लेप करना चाहिये । इससे मुखरोग, रक्तविकार और मुख का नाडीव्रण (नासूर) नष्ट होता है ।

शिलाजतुरसायनम्

भस्मीभूतशिलोद्भव सपतुल कान्त च वैक्रान्तक युक्त
च त्रिफलाकटुत्रिक घृतैर्वंल्लेन तुल्य भजेत् ।
पाण्डौ यक्ष्मगदे तथाग्निसदने मेहेषु मूलामये
गुल्मप्लीहमहोदरे वहुविधे शूले च योन्य मये ।।

सेवेत यदि षण्मास रसायनविधानत' ।
वलीपलितनिर्मुक्तो जीवेद्वर्षशत सुखी ।।

(र. र. स. । पू. खं. अ. २)

शिलाजीत की भस्म, कान्त लोह भस्म, वैंक्रान्त भस्म, हर्र, बहेड़ा, आमला, सोठ, मिर्च तथा पीपल समान भाग लेकर सबको एकत्र मिलाकर खरल करे ।

मात्रा – ३ रत्ती

इसे घी के साथ सेवन करने से पाण्डु, यक्ष्मा अग्निमाद्य, प्रमेह, अर्श, गुल्म, प्लीहा, महोदर, अनेक प्रकार का शूल और योनि रोगो का नाश होता है ।

व्रणान्तकगुग्गुलुः

कटुत्रय निशायुग्म वला वल्या प्रसारिणी ।
मजिष्ठा पार्थयष्टयौ च देवदारु पुनर्नवा ।।
पृथक पृथक शुक्तिसम पलैक मृतपादरम् ।
अभ्र च द्विगुण देय त्रिगुण तु मृतायसम् ।।
चतुर्गुणं शुद्धशैल सर्वमेकत्र मिश्रयेत् ।
अस्थिश्रृखलिकातोये सम्यक् शोध्यस्तु गुग्गुल: ।।
सर्वेषा द्विगुण्न्चाऽत्र दत्त्वा सम्मर्दयेत्तत. ।
अक्षप्रमाणा गुटिका सेव्या नित्य तत परम् ।।
पिवेन्मासरसन्चानु दुष्टव्रणनिपीडित ।
पूयरक्तास्थिवाहीनि व्रणान्याशु प्रयान्ति हि ।।
भग्नविश्लिष्टसन्धीना साक्षाद्भग्नाश्च ये व्रणा:

टो., व्रणाधिकारे ।

त्रिकटु, हल्दी, दारुहल्दी, वला, असगन्ध, प्रसारिणी, मजीठ, अर्जुन, मुलहठी, देवदारु, पुनर्नवा, पारदभस्म येसव १–१ पल, अभ्रकभस्म २ पल, लोहभस्म ३ पल, शुद्ध शिलाजीत ४ पल लेकर सबका वारीक चूर्ण कर हडजोड के रस मे शुद्ध किया हुआ गूगल सबसे दूना मिलाकर कूटे । एक जीव होने पर बेर वरावर गोलिये बनाकर रख छोडे । इनमे से १–१ गोली मास रस अथवा जीवनीयगणक्वाथ के साथ देने से पूय, रक्त और हड्डियाँ जिनमे से बहकर निकलती हो ऐसे दुष्टव्रण, भग्न, विश्लष्टसन्धिया, अस्थिभग्न ये सब नष्ट होते है ।

धांयादिघृतगुग्गुलुः

धात्रीशिवामृतादन्तीवह्निगोक्षुररोहिणी ।
कणादार्वीगुदीपुतिशुण्ठीना पलपचकम् ॥
प्रत्येक क्वाथयेत्सर्वं जलद्रोणे भिपग्वरः ।
घृतप्रस्थो विपक्तव्यो दत्त्वा पुरपलाष्टकम् ॥
धान्ययूपस्य च प्रस्थे शनर्मृद्वग्निना तत ।
कर्पमात्रन्तु कर्तव्य घृतमेतदनुत्तमम् ॥
कठोर श्लीपद हन्ति गण्डमाला त्रिदोपजाम् ।
चिरोत्थमपि शोथच आमवात सुदारुणम् ॥
स्थौल्य पाण्डु कामलाच वातश्लेष्मभवा रुजम् ।
जीर्णज्वर तथा शूल नाडीव्रणमथार्वुदम् ॥
अपची गण्डमालाच सर्वमेतद्व्यपोहति ॥

—(र. र. । श्लीपदा)

आमला, हर्र, गिलोय, दन्ती, चीता, गोखरु, कुटकी, पीपल, दारुहल्दी, इगुदी के फल (हिंगोट), पूतिकरज और सोठ, पाच-पाच पल (हरेक २५ तोले) लेकर सबको अधकुटा करके ३२ सेर पानी मे पकावे । जब ८ सेर पानी शेप रहे तो छान ले ।

इसी प्रकार २ सेर धनिये को १६ सेर पानी मे पकाकर २ सेर पानी शेष रहने पर छान ले । फिर यह दोनो क्वाथ, २ सेर घी तथा ८ पल (४० तोले) गूगल को एकत्र मिलाकर मन्दाग्नि पर पकावे ।

जब पानी जल जाय तो घृत को उतारकर ठण्डा करके सुरक्षित रखे ।

इसके सेवन से कठोर श्लीपद, सन्निपातज गण्डमाला, पुराना शोथ, भयकर आमवात स्थूलता, पाण्डु, कामला, वातज तथा कफजरोग, जीर्णज्वर, शूल, नाडीव्रण (नासूर), अर्बुद (रसौली), और अपची (गण्डमाला भेद) आदि रोग नष्ट होते हैं ।

(मात्रा । १। तोला)

पंचनिम्बाऽवलेहः

रसायनं प्रवक्ष्यामि ब्रह्मणा यदुदाहृतम् ।
मार्कण्डेयप्रभृतिभिर्यत्प्रागुक्त महर्षिभिः ।।
पुष्पकाले तु पुष्पाणि फलकाले फलानि च ।
सगृह्य पिचुमर्दस्य त्वमूलानि दलानि च ।।
द्विरंशानि समाहृत्य भागिकानि प्रकल्पयेत् ।
त्रिफला व्यूषण ब्राह्मीश्वदंष्ट्राऽरुष्कराऽग्नय ।।
विडगसारो वाराही लोहचूर्ण स्मृता समाः ।
निशाद्वयाऽवल्गुजक व्याधिघातः सशर्कर ।।
कुष्ठमिन्द्रयवा. पाठा चूर्णमेषान्तु संयुतम् ।
खादिराऽसननिम्बाना घनक्वाथेन भावयेत् ।।
सप्तधा पचनिम्बन्तु मार्कवस्य रसेन च ।
स्निग्धः शुद्धतनुर्धीमान् योजयेत्तच्छुभे दिने ।
मधुना तिक्तहविपा खदिराऽसनवारिणा ।
लेह्यमुष्णाम्भसा वापि कोलवृद्धया पल भवेत् ।
जीर्णे तस्मिन् समश्नीयात्स्निग्ध लघु हितच यत् ।
विर्चचिकोदुम्वरपुण्डरीक कपालदद्रूकिटिभालसादि ।
शतारुविस्फोटविसर्पमाला. कफप्रकोप त्रिविधं किलासम् ।।
भगन्दरश्लीपदवातरक्त जडान्ध्यनाडीव्रणशीर्षरोगान् ।
सर्वान् प्रमेहान प्रदराश्च सर्वान् दंष्ट्राविष मूलविष निहन्ति ।।
स्थूलोदरः सिहक्रशोदर. स्यात्सुश्लिष्टसन्धिर्मधुनोपयोगात् ।
सदोपयोगादपि ये दशन्ति सर्पादयो यान्ति विनाशमाशु ।
जीवेच्चिर व्याधिजराविमुक्तः शुभ्रेतरश्चन्द्रसमानकान्तिः ।।
भा. प्र कुष्ठादिरोगे । चक्रदते कुष्ठहरचूर्णमिति नाम ।

अपने अपने समय से निम्ब के पचागो का सग्रह कर २–२ भाग लेकर त्रिफला, त्रिकटु, ब्राह्मी, गोखरू, भिलावा चित्रक, विडगतण्डुल, वाराहीकन्द, लोहभस्म, हल्दी, दारुहल्दी, वाकुची, अमिलतास, शक्कर, कुठ, इन्द्रजव, पाठा ये सब १–१ भाग लेकर कूटकपड छानकर सबके बरावर खादिर, असन और नीम के अष्टभागावशिष्टक्वाथो से और भगरे के रस से ७–७ बार भावनाएं

देकर रख छोडे । इसमे से पचकर्म कर शुभमुहूर्त मे मधु और तिक्तघृत अथवा खदिर और असन के क्वाथ अथवा गरम पानी से आधे तोले से प्रारम्भ कर एक तोले तक बढाकर लेवे । जीर्ण होने पर स्निग्ध और हितकारक भोजन करने से विचर्चिका उदुम्बर, पुण्डरीक, कपाल, दद्रु, किटिभ, अलस, शतारुष्क, विस्फोटक, विसर्प, गण्डमाला, कफप्रकोप, तीन प्रकार का श्वित्र, भगन्दर, श्लीपद, वातरक्त, जडत्व, अन्धत्व नाडीव्रण, शीर्षरोग, समस्तप्रमेह, प्रदर दंष्ट्राविष, मूलविष, भेद इन सबको यह नष्ट करता है । इसके अधिक दिन सेवन करने वाले को यदि सर्पकाट गया हो तो सर्प ही मर जाता है और मनुष्य अधिक दिन जीता है ।

निदिग्धिकाद्योऽवलेहः

निदिग्धिका पलशत तदर्ध ग्रन्थिकस्य च ।
चित्रकस्य तदर्धंच दशमूल च तत्समम् ।।
द्रोणद्वयेऽम्भसः क्वाथ्यमष्टभागावशेपितम् ।
पूते क्षिपेत्तदर्धं तु पुराणस्य गुडसय च ।।
सर्वमेकत्र कृत्वा तु लेहवत्साधु साधयेत् ।
अष्टौ पलानि पिप्पल्यस्त्रिजातत्रिपल तथा ।।
मरिचाना पल चैक सर्वमेकत्र चूर्णयेत् ।
मधुन कुडव दत्वा भक्षयेत यथा बलम् ।।
स्वरबुद्धिकर चैव प्रतिश्यायहर पहम् ।
कासश्वासग्निमान्द्यार्शोगुल्ममेहगलामयान् ।।
आनाहमूत्रकृच्छ्राश्च हन्याद् ग्रन्थ्यर्बुदानि च ।

कटेली १०० पल (६¼ सेर), पीपलामूल ५० पल, चीता २५ पल और दशमूल २५ पल लेकर सबको अधकुटा करके ६४ सेर पानी मे पकावे । जब ८ सेर पानी शेप रहे तो छानकर उसमे २ सेर पुराना गुड मिलाकर पकावे । जब करछी को लगने लगे तो उसमे ८ पल पीपल और १–१ पल (५–५ तोले) दाल चीनी, तेजपात इलायची तथा कालीमिर्च का चूर्ण मिलावे और ठण्डा होने पर उसमे ४० तोले शहद डाल कर सुरक्षित रखे ।

यह स्वर और बुद्धिवर्द्धक तथा प्रतिश्याय खासी, श्वास, अग्निमाद्य, अर्श, गुल्म, प्रमेह, गलरोग, आनाह, मूत्रकृच्छ्र, ग्रन्थि और अर्बुद नाशक है ।

(मात्रा १ से २ तोले तक)

शंखादिलेपः (३)

लेपन शखचूर्णेन सह मूलकभस्मना ।
कफार्बुदापह कुर्यादग्रन्थ्यादिपु विशेषत: ।।

(वृ. मा. । गलगण्डा ; व. से. । ग्रन्थ्य.)

शखचूर्ण और मूली की भस्म समान भाग लेकर पानी मे मिला कर लेप करने से कफज अर्बुद और ग्रन्थ्यादि का नाश होता है ।

शतधौतसर्पिलेपः

सर्पिषा शतधौतेन कृतलेपो मुहुर्मुहुः ।
निहन्ति सर्ववीसर्पं पन्नग पक्षिराडिव ।।

(वृ नि. र. । विसर्प)

सौ बार धोये हुवे घृत का बार बार लेप करने से सर्व प्रकार के विसर्प नष्ट हो जाते है।

निशादिलेपः

स्तनयोरपि मूले च रुग्भवेद्यदि वेगिनी ।
निशाशम्बूकसहितचूर्णलेपो जयेद्रुजम् ।।

हल्दी और शख को पानी मे पीसकर लेप करने से स्तनमूल की तीव्र पीड़ा शान्त हो जाती है ।

(वे म र. । पट. ४)

न्यग्रोधादिलेपः

न्यग्रोधपादो गुंजा च कदलीगर्भ एव च ।
एतैर्ग्रन्थिविसर्पघ्नो लेपो धौताज्यसयुत. ।।

(वृ नि र.; यो. र ; व. से । विसर्प)

बडकी जड की छाल (या जटा), चौंटली (मतान्तर मे पटेर) और केले की मूसली को महीन पीस कर सौर बार धुले हुए घृत मे मिलाकर लगाने से ग्रन्थिविसर्प नष्ट होता है।

पुत्रजीवकादिलेपः

पुत्रजीवस्य मज्जान जले पिष्ट्वा प्रलेपयेत् ।
कालस्फोट विपस्फोटं सद्यो हन्यात्सवेदनम् ।।
कक्षाग्रन्थि कर्णग्रन्थि च नाशयेत् ।।

(भा. प्र. । म. ख. विस्फोटका.)

पुत्र जीवक (पितोजिया) की मीगी को जल मे पीसकर लेप करने से वेदनायुक्त काले फोड़े, विषेले फोडे, कक्षाग्रन्थि, कर्णमूल और गले की गाठ शीघ्र ही नष्ट हो जाती है ।

शिरीषादिलेपः (४)

शिरीषोशीरनागाह्वहिंस्राभिर्लेपनाद् द्रुतम् ।
विसर्पविपविस्फोटा: प्रशाम्यन्ति न सशय ।।

(वृ. मा. ; व. से. विस्फोटा ; ग. नि. । विस्फो. ४०)

सिरस की छाल, खस, नागकेसर और जटामासी समान भाग लेकर, (पानी के साथ), वारीक पीस कर लेप करने से विसर्प, विप विकार और विस्फोटक अवश्य शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं ।

शिरीषादिलेपः (५)

शिरीषोदुम्बराश्वत्थशेलुन्यग्रोधवत्सकैः ।
प्रलेप सघृत शीघ्र व्रणवीसर्पदाहहा ।।

(वृ. मा. । मसूरिका.)

सिरस की छाल, गूलर की छाल, पीपल वृक्ष की छाल, ल्हिसोडे की छाल और कुडे की छाल समान भाग लेकर वारीक पीस कर घी मे मिला कर लेप करने से व्रण, विसर्प और दाह का शीघ्र ही नाश हो जाता है ।

शरपुंखादियोगः

मधुयुक्ता शरपुंखा सर्वव्रणरोपणी कथिता ॥

(वृ. मा.। व्रणशोथा)

सरफो के चूर्ण को शहद मे मिला कर लेप करने से समस्त प्रकार के व्रण भर जाते है।

शरपुंखायोगः (१)

अपच्यर्बुदयो: पूर्व रक्त हृत्वा जलौकसा ।
शरपुंखाशिफां लिम्पेज्ज्येष्ठाम्भोभिः सुपेषिताम्

(वै. म. र. । पटल १७)

अपची और अर्बुद पर प्रथम जोक लगवा कर रक्त निकलवाने के पश्चात् खरफोके की जड को चावलो के पानी मे पीस कर लेप करना चाहिये ।

पारदादिमलहरम्

रसगन्धकयोश्चूर्ण तत्सम मुडशखकम् ।
सर्व तुल्यन्तु कम्पिल्ल किंचिन्तुत्त्थसमन्वितम् ॥
सर्व सम्मेलयेद्धत्वा घृत सर्वाच्चतुर्गणम् ।
पिचुप्लुत प्रदातव्य दुष्टव्रणविशोधनम् ॥
नाडीव्रणहर चैव सर्वव्रणनिषूदनम् ।
ये व्रणा न प्रशाम्यन्ति भेषजाना शतेन च ॥
अनेन ते प्रशाम्यन्ति सर्पिषा स्वल्पकालतः ॥

पारा और गन्धक १-१ भाग लेकर दोनो की कज्जली बनावे तत्पश्चात् उसमे २ भाग मुर्दासिग ४ भाग कमीला और जरा सा नीले थोथे का चूर्ण मिलाकर घोटे और इसे सबसे ४ गुने घी मे मिला ले ।

इस का फाया लगाने से दुष्ट व्रण और नासूर शुद्ध होकर भर जाते है। जो व्रण अन्य सैंकडो औषधो से नही भरते वे इस प्रयोग से स्वल्प काल मे ही नष्ट हो जाते है ।

त्रिफलाकल्पः

हरीतक्याश्चामलक्या विभीतस्य च यत्फलम् ।
त्रिफलेत्युच्यते वैद्यैर्वक्ष्यामि भागनिर्णयम् ॥
एक भाग हरीतक्या द्वौ भागौ च विभीतकम् ।
आमलक्यास्त्रिभागच सहैकत्र प्रयोजयेत् ॥
त्रिफलाकफपित्तघ्नी महाकुष्ठविनाशिनी ।
आयुष्या दीपनी चैव चक्षुष्या व्रणशोधिनी ॥
वर्णप्रदायिनी वृष्या विषमज्वरविनाशिनी ।
दृष्टिप्रदा कण्डुहरा वमिगुल्मार्शनाशिनी ॥
सर्वरोगप्रशमनी मेधास्मृतिकरी वरा ।
वक्ष्यामि योगयुक्तिच रोगे रोगे पृथक् पृथक् ॥
वाते घृतगुडोपेता पित्ते समधुशर्करा ।
श्लेष्मे त्रिकटुकोपेता मेहे समधुवारिणा ॥
कुष्ठे च घृतसयुक्ता सैन्धवेनाग्निमान्द्यहा ।
चक्षुर्धावनके क्वाथो नेत्ररोगनिवारणः ॥
घृतेन हरते कण्डू मातुलु गरसैर्वमिम् ।
क्षीरेण राजयक्ष्माण पाण्डुरोग गुडेन च ॥
भृंगराजरसेनापि घृतेन सह योजित ।
वलीपलितहन्ता च तथा मेधाकर स्मृत. ॥
सक्षीरः सगुडः क्वाथो विपमज्वरनाशनः ।
सशर्करा घृत' क्वाथ सर्वजीर्णज्वरापहः ॥
एपा नराणा हितकारिणी च सर्वप्रयोगे त्रिफला स्मृता च ।
सर्वामयाना शमनी च सद्यस्तेजश्चकान्तिप्रतिभा करोति ॥
शोफे तथा कामलपाण्डुरोगे तथोदरे मूत्रयूता हिता च ।
हिघ्मातिसारे ग्रहणीविकारे हिता च तक्रेण फलत्रिका च ॥
क्षीणेन्द्रिये जीर्णज्वरे च यक्ष्मे क्षीरेण युक्ता त्रिफला हिता च ।
स्यान्नेत्ररोगे च शिरोगदे च कुष्ठे च कण्डूव्रणपीनसे च ॥
मूत्रग्रहे कामनकेऽग्निमान्द्ये हिता जलेन त्रिफला हि कल्किता ।
सशीतकान्ते गुडनागरेण सशर्कराक्षीरयुता तथोष्णे ॥

वर्षासु शुण्ठीसहिता फलत्रिका
फलत्रिका सर्वरुजाहरा स्यात् ॥
(हा. सं. । स्था. ५ अ. २)

हर्र, वहेडे और आमले के फलो के योग को त्रिफला कहते है । त्रिफला बनाने के लिए १ भाग हर्र, २ भाग वहेडा और ३ भाग आमला लेना चाहिए ।

त्रिफला—कफपित्त और महाकुष्ठ नाशक, आयुवर्द्धक, अग्निदीपक, नेत्रो के लिए हितकर, व्रणशोधक, वर्ण सस्कारक, वृष्य, विषमज्वरनाशक, खुजली, वमन, गुल्म, अर्श, इत्यादि समस्त रोगो को नष्ट करने वाला और स्मृति तथा मेधावर्द्धक है ।

त्रिफला वातज रोगो मे घृत और गुड के साथ, पित्तज रोगो मे शहद और खाड के साथ, कफज रोगो मे त्रिकुटा के साथ मिलाकर सेवन कराना चाहिये । प्रमेह रोग मे शहद के साथ चाटकर ठण्डा पानी पीना चाहिए । यदि त्रिफला को घी के साथ सेवन किया जाय तो कुष्ठ नष्ट होता है और सेवा नमक के साथ सेवन करने से अग्नि प्रदीप्त होती है ।

त्रिफला के क्वाथ से आखे धोने से नेत्र रोग नष्ट होते है ।

त्रिफला के क्वाथ मे घी डालकर पीने से खुजली, नीवू का रस मिलाकर पीने से वमन, दूध के साथ पीने से राजयक्ष्मा और गुड डालकर पीने से पाण्डुरोग नष्ट होता है ।

यदि त्रिफला के क्वाथ मे भागरे का रस और घी डालकर सेवन किया जाय तो वलि पलित नष्ट होकर मेधा और स्मरण शक्ति की वृद्धि होती है ।

त्रिफला के क्वाथ मे दूध और गुड मिलाकर पीने से विषमज्वर और खाड तथा घृत मिलाकर पीने से जीर्ण ज्वर नष्ट होता है ।

त्रिफला मनुष्यो के लिए अत्यन्त हितकारी है और समस्त रोगो मे प्रयुक्त किया जा सकता है । यह शीघ्र ही समस्त रोगो का नाश करके तेज कान्ति और प्रतिभा की वृद्धि कर देता है ।

शोथ, कामला, पाण्डु और उदर रोगो मे त्रिफला को गोमूत्र के साथ, तथा हिचकी,

अतिसार और ग्रहणी रोग मे तक्र के साथ सेवन करना चाहिये ।

यदि इन्द्रिया क्षीण हो गई हो या जीर्ण ज्वर अथवा यक्ष्मा रोग ने दवा रखा हो तो त्रिफला को दूध के साथ सेवन करने से लाभ होता है तथा नेत्ररोग, शिरोरोग, कुष्ठ, कण्डू, व्रण, पीनस, मूत्रावरोध, कामला और अग्नि माद्य मे पानी के साथ पीसकर खाने से रोग नष्ट हो जाता है ।

त्रिफला को शीतकाल मे सोठ के चूर्ण और गुड के साथ, ग्रीष्म काल मे खाड और दूध के साथ, और वर्षाकाल मे सोठ के साथ सेवन करने से समस्त रोग नष्ट हो जाते है ।

शतावरीकल्कः (३)

शतावरी क्षीरपिष्टा पीता स्तन्यविवर्द्धिनी ।
कवोष्ण कणाया पीत क्षीरं क्षीरविवर्द्धनम् ॥

(यो र. । प्रसूतरो.)

(१) शतावर को दूध मे पीस कर पीने से स्त्रियो के स्तनो मे दूध वढ जाता है ।

(१) मन्दोष्ण दूध मे पीपल का चूर्ण मिला कर पीने से स्तनो मे दूध वढ जाता है ।

शरपुंखादिकल्कः

शरपुखाया कल्क पीतस्तक्रेण नाशयत्यचिरम् ।
चिरतरकालसमुत्थ प्लीहाना रुढमवगाह ॥

(यो. चि. म. । अ. ४)

सरफोके की जड के कल्क को तक्र के साथ पीने से वहुत पुराना तिल्ली रोग भी शीघ्र ही नष्ट हो जाता है ।

शिग्रुमूलादियोगः

शिग्रुमूल जले धौत जलपिष्ट प्रगालयेत् ।
तद्रस मधुना पीत्वा हन्त्यन्तर्विद्रधिं नरः ॥

(वृ. मा.; व. से. । विद्रध्य.)

सहजने की जड़ को जल से धो कर पानी के साथ पीस ले और कपड़े से निचोड़ कर रस निकाले ।

इसमे शहद मिला कर पीने से अन्तर्विद्रधि नष्ट होती है ।

शिग्र्वादिकषायः

शिग्रुदीप्यवरुणद्वियामिनी कुजराशनकृतः कषायकः ।
वोलचूर्णसहितोन्तरस्थित विद्रधिं प्रशमयेदसशयम् ॥

(वै जी. । विलास ४ ; वृ नि. र. । विद्र.)

सहजने की छाल, अजवायन, बरने की छाल, हल्दी, दारुहल्दी और पीपलवृक्ष (अश्वत्थ) की छाल समान भाग लेकर क्वाथ बनावे ।

इसमे बोल का चूर्ण मिलाकर सेवन करने से अन्तर्विद्रधि अवश्य नष्ट हो जाती है ।

स्तन्यजननो दशको महाकषायः

वीरणशालिषष्टिकेक्षुबालिकादर्भकुशकाशगुन्द्रे-
त्कटकत्तृणमूलानीति दशेमानि स्तन्यजननानि भवन्ति ।

(च. स. । सूत्र. । अ. ४)

खस, शालिधान, षष्टिक (साठी), इक्षु बालिका (इक्षुभेद), दाभ, कुश, काश, गिलोय, इत्कट और रोहिष तृण, इनकी जड ये दस औषधिया स्तन्यजनक है ।

स्तन्यशोधनो दशको महाकषायः

पाठामहौषधसुरदारुमुस्तमूर्वागुडूचीवत्सक-
फलकिराततिक्तकटुरोहिणीसारिवा इति
दशेमानि स्तन्यशोधनानि भवन्ति ।

(च. सं. । सूत्र. अ. ४)

पाठा, सोंठ, देवदारु, नागरमोथा, मूर्वा गिलोय, इन्द्रजौ, चिरायता, कुटकी और सारिवा, ये दस औषधियां स्तन्यशोधक कषाय द्रव्यों में मुख्य हैं।

(इनका क्वाथ पीने से बच्चे की मां का दूध दोष-रहित हो जाता है।)

स्नेहोपगदशको महाकषायः

मृद्वीकामधुकमधुपर्णीमेदा विदारीकाकोली
क्षीरकाकोलीजीवकजीवन्तीशालपर्ण्य इति
दशेमानि स्नेहोपयोगानि भवन्ति ।

(च. स. । सू. अ. ४)

मुनक्का, मुलैठी, गिलोय, मेदा, विदारीकन्द, काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, जीवन्ती और शालपर्णी; ये दस औषधियां स्नेहोपयोगी हैं।

—o—

स्वेदोपगदशको महाकषायः

शोभाजनकैरण्डार्कवृश्चीरपुनर्नवायववतिलकुल-
त्थमाषवदराणीति दशेमानि स्वेदोपगानि भवन्ति ।

(च. स. । सूत्र । अ. ४)

सहजना, अरण्ड, अर्क (आक), सफेद पुनर्नवा, जौ, तिल, कुलथी, उड़द और बेर; ये दस औषधियां स्नेहोपयोगी हैं।

—o—

CANCER VADE MECUM

VOLUME II

चतुर्थ - सोपान

* वेदों में आयुर्वेद *

वैदिक चिकित्सा

वेद मे अनेक प्रकार की चिकित्सा–पद्धतियाँ वर्णन की है। वेद की विविध चिकित्सा-पद्धतियो का सूक्ष्म विचार करने से पता लगता है कि वेद इन चिकित्सा पद्धतियो द्वारा मनुष्य

को स्थूल से सूक्ष्म तत्त्व तक ले जा रहा है। सच्चे धर्म का यही मुख्य अभीष्ट है कि वह मनुष्यो को स्थूल की अपेक्षा सूक्ष्म शक्तियो के विपय मे अधिक प्रेम उत्पन्न करे। स्थूल पदार्थों और शक्तियो का ज्ञान मनुष्य को स्थूल दृष्टि से होता ही रहता है। क्योकि वह प्रत्यक्ष है। साधारणत मनुष्य की प्रवृत्ति प्रत्यक्ष व्यक्त और दृश्य मे रमती है, विशेप कारण के विना मनुष्य अप्रत्यक्ष, अव्यक्त और अदृश्य के पीछे नही दोडना चाहता। जो मनुष्य विचार की आँख से सृष्टि का निरीक्षण अहर्निश करते रहते है उनको इस दृश्य स्थूल जगत् के परे एक अदृश्य सूक्ष्म तत्त्व दिखाई देता है। जव उनको उस तत्त्व का साक्षात्कार वेसा ही प्रत्यक्ष होने लगता है कि जैसा साधारण मनुष्य मात्र को इस दृश्य जगत् का प्रत्यक्ष ज्ञान हो रहा है, तव उनकी भक्ति स्थूल की अपेक्षा सूक्ष्म पर अधिक दृढ होती है, क्योकि सूक्ष्म का सामर्थ्य स्थूल की अपेक्षा कई गुणा अधिक है। यही वात विविध चिकित्सा पद्धतियो मे भी है। प्रथम अवस्था मे मनुष्यो की भक्ति औपधि, वनस्पतियाँ, दवाइयाँ, गोलियाँ आदि पर विशेप रहती है। यह विल्कुल स्थूल की भक्ति है। इस कारण जो वैद्य मन की चिकित्सा करने के विना ही शरीर मे दवाइयाँ ठोस देते है वे स्थूल दृष्टि के वैद्य होते है। मन के आधीन ही सव शरीर होता है। जव तक मन कमजोर न होगा तव तक कोई वीमारी मनुष्य को हो ही नही सकती। इसलिये हर एक रोगी के मन की चिकित्सा प्रथम होना आवश्यक है। यह वात कई सूक्ष्मदर्शी अमेरिकन तत्त्वान्वेपियो के ध्यान मे आ चुकी है उनमे से एक कहता है कि–

In the heroic days of the Veda-writers the physician of the body was also the physician of the mind (Dr. Axil Emil Gibson's Health culture VOL XXI, No, V, May 1920)

"वेद के शौर्य, वीर्य युक्त ओजस्वी समय मे शरीर का जो वेद्य होता था, वह मन का भी चिकित्सक हुआ करता था।" यह म० गिव्सन महोदय का कथन विल्कुल सत्य है। इसमे आश्चर्य की वात इतनी ही है कि जो वात म० गिव्सन को विदित हो गई, वह अव तक यहाँ के हिंदी अथवा आर्यदेशीय वेद्यो और हकीमो को विदित नही हुई।।

वेद यद्यपि औषधि–चिकित्सा वता रहा है, तथापि उसका सव आकर्पण सूक्ष्म मानस चिकित्सा पर ही हो रहा है। जो भद्र पुरुप इन वेद मत्रो को सूक्ष्म दृष्टि से देखेगे वे उसी समय जान सकते है कि वेद का आकर्पण कितना प्रवल है। इस वात को ही इस लेख मे स्पष्ट करना है, प्रथमत वैद्य के विपय मे निम्न मत्र देखने योग्य है–

(१) दिव्य वैद्य ।

यत्रौपवी: समग्मत राजान' समितामिव ।
विप्र: स उच्यते भिषग् रक्षोहाऽमीवचातन. ।।

—ऋ० वे० १०/९७/६

अर्थ—जिस प्रकार राजा लोग अथवा क्षत्रिय सभा मे एकत्रित होते है, उस प्रकार जहाँ औषधियाँ इकट्ठी होती है उस विशेष ज्ञानी मनुष्य को ही वैद्य कहते है । वह ही राक्षसो का हनन करने वाला और रोग दूर करने वाला कहा जाता है ।

इस मत्र मे वैद्य का लक्षण बताया है— १. सम्पूर्ण औषधियाँ अपने पास ठीक प्रकार रखने वाला, २. विशेप प्रवुद्ध अर्थात् अपने शास्त्र का सागोपाग जिसने अध्ययन किया है, ३. जो युक्ति और योजना से रोग दूर कर सकता है, जो राक्षसो का नाश कर सकता है और ५. जो रोगो को मूल से अर्थात् जड से उखाड देता है । ये वैद्य के पाँच लक्षण उक्त मत्र मे कहे है । "राक्षसो" के विषय मे इतना ही यहाँ कहना है, कि "रक्ष', राक्षस, असुर" आदि शब्द विशेष अर्थ मे वैद्य शास्त्र मे प्रयुक्त होते है । ये सजीव प्राणधारी सूक्ष्म कीटजीव है कि जो मनुष्य के आँखो से भी दिखाई नही देते । शतपथ मे इनके विपय मे कहा है कि—

तदवधुनोति । अवधूत रक्ष । अवधूता अरातय:
इति, तन्नाष्ट्रा एवैतद्रक्षास्यतोऽपहन्ति ।।

—शत० ब्रा० १/१/४

"वह चर्म को झटक देता है और कहता है कि राक्षसो का नाश हो गया, असुरो का नाश हुआ । इस प्रकार विनाशक राक्षसो का सहार होता है ।"

अर्थात् चर्म झटकने से उस पर चिपके हुए राक्षस नीचे गिरते है और उनका नाश होता है । राक्षस चमडे पर चिपक जाते ह, वे मनुष्य की आँख से नही दिखाई देते और झटकने से दूर होते है, इतने सूक्ष्म से राक्षस है । सूर्य अस्त होने पर इनको वल आता है, अधेरे मे ये प्रवल होते है और सूर्य किरणो से इनका नाश होता है । ये नाना प्रकार के रोग उत्पन्न करते है और मनुष्यो तथा अन्य प्राणियो को सताते है । यह राक्षसो का स्वरूप यहाँ ध्यान मे धरना चाहिए । वडे शरीर वाले जो राक्षस हैं वे भिन्न है । स्वतन्त्र निवध द्वारा राक्षसो के स्वरूप का वर्णन किसी अन्य समय किया जायेगा । यहाँ के प्रकरण मे जो राक्षसो

का सूक्ष्म स्वरूप अभीष्ट है, उसका साराश से वर्णन ऊपर किया है, उसको पाठक स्मरण रखे । इस प्रकार के राक्षसो का औषधि प्रयोग आदि उपायो के द्वारा नाश करना वैद्य का कार्य है । अस्तु । इस प्रकार वैद्य का लक्षण वेद मे कहा है । अव इस मत्र के साथ निम्न मत्र देखिये—

अध्यवोचदधिवक्ता प्रथमो देव्यो भिषक् ।
अहींश्च सर्वाञ्जम्भयन्त्सर्वाश्च यातुधान्योऽधराची परा सुव ॥

—वा० य० १६/५

अर्थ—सब कम न होने अर्थात् बढने वाले रोग बीजो का नष्ट भ्रष्ट करने वाला सब राक्षसो को नीचे की ओर से जो निकालता है वह उपदेशक पहिला दिव्य वैद्य कहता है अथवा हम सबको बचाता है ।

इस मत्र मे वैद्य के लक्षण कहे है— १ रोग बीजो का नाश करने वाला, २. राक्षसो का सहार करने वाला, ३ योग्य मार्ग का उपदेश करने वाला और ४. बचाने वाला वैद्य होता है । इस मत्र मे "अ—हि" शब्द रोग बीजो का वाचक आया है । कम न होने वाला रोग बीज होता है; प्रारभ मे छोटा सा दिखाई देता है परन्तु उदासीन रहने पर वह बढने लगता है, फैलता है और सब शरीर भर व्यापता है । "यातु—धान्य" शब्द द्वारा रोगो का दूसरा लक्षण कहा है । जिसमे धन्यता के दूर होने का भाव है । यह नाम राक्षसो के लिये वेद मे आता है । जब ये सूक्ष्म राक्षस शरीर मे प्रविष्ट होते है तब शरीर का उत्साह और आरोग्य अर्थात् धन्यपन नष्ट हो जाता है । इन राक्षसो और रोग बीजो को नीचे के भाग से दूर करने का कार्य वैद्य करता है । अर्थात् वेद्य बीजो को नीचे के भाग से दूर करने का कार्य वैद्य करता है । अर्थात् वैद्य विरेचनादि द्वारा राक्षसो को शरीर से निकाल देता है । ये दो मत्र वैद्य का लक्षण बता रहे है ।

इस मत्र मे "दैव्य भिषक्" शब्द है । "दिव्य वैद्य" अर्थात् "आत्मा" ही वैद्य है, वास्तव मे सच्चा वैद्य आत्मा ही है, ऐसा इस मत्र द्वारा सूचित किया है । यह मत्र रुद्र सूक्त मे है और यहाँ 'दैव्य भिषक्" शब्द "रुद्र" के लिये प्रयुक्त हुए है । रुद्र का अर्थ 'वैद्य', आत्मा, परमात्मा" है । इसकी विस्तृत व्याख्या १ रुद्र देवता का परिचय और २. ऋग्वेद मे रुद्र देवता इन दो पुस्तको के द्वारा की है । जो पाठक विस्तारपूर्वक इस विषय को देखना चाहे उन पुस्तको मे देख सकते है । वैद्य शब्द के नाम जीवात्मा और परमात्मवाचक उक्त मत्र मे और सूक्त मे दिये

है, इससे सूचित होता है कि शरीर मे सच्चा वैद्य जीवात्मा है और जगत् मे परमात्मा है। शरीर की नीरोगता सपादन करने का कार्य जीवात्मा कर रहा है, यह सूचना वेद क्यो दे रहा है ? इस बात की ओर पाठकों का चित्त आकर्षित होना आवश्यक है।

वैद्य के औषध रोगी का आत्मिक बल हट जाने के पश्चात् कोई सहायता नही करते, और जिसमे आत्मिक बल की तीव्रता होती है वह बिना औषधी की सहायता के, अपने मन: शक्ति द्वारा ही रोगो को हटा सकता है। स्थूल से सूक्ष्म तक ले जाने की वेद की यही खूबी है; वैद्य का लक्षण कहते हुए वेद बता रहा है कि "आत्मा" ही सच्चा वैद्य है। जगत् के वैद्य उसके सन्मुख कुछ भी नही है। अर्थात् वैदिकधर्मी मनुष्यो को उचित है कि वे योगसाधादि द्वारा अपने मानसिक और आत्मिक शक्ति को वढावे और इसी सच्चे दिव्य वैद्य से अपने तथा दूसरो के रोग दूर करे ।

परावलविताही दु ख है। दूसरे पर विश्वास रखकर बैठना, दूसरे की सहायता से स्वसरक्षण करने का यत्न करना, दु खकारक ही है। यह सिद्धान्त आप व्यक्ति, राष्ट्र और जगत् मे सर्वत्र देख सकते है। स्वावलवन ही सुख है। अपनी धारणा शक्ति से स्वय स्थिर रहना सुख का साधन है। जब तक वैद्य की औषधियो पर ही रोगी का विश्वास रहता है, तब तक रोगी को दु ख भोगना आवश्यक ही है। परन्तु जब उस रोगी को पता लग जायेगा, "कि मै स्वय आत्मरूप से दिव्य वेद्य हूँ और सब औषधियो की सम्पूर्ण शक्तियाँ मेरे मन मे सदा ही सिद्ध है और मै अपनी इच्छा शक्ति के बल से अपने तथा अन्यो के रोग हटा सकता हूँ, तब ही सुख के लिये वह अधिकारी होता है"। वही स्वातन्त्रय और स्वाधीनता है वेद को अभीष्ट है कि सब लोग इस शक्ति को अपने अदर विकसित करे, इसलिये वेद अपने मत्रो द्वारा स्थूल शक्ति का वर्णन करता हुआ एकदम सूक्ष्म शक्तियो तक पाठको को पहुँचा देता है। यह बात हमने वैद्य के लक्षणो मे सूक्ष्म रूप से बताई है। अब प्रकृत निबध का विषय देखते हैं।

आश्वासन चिकित्सा

आशा, विश्वास और सन्तोप का नाम आश्वासन है। रोगी को सर्वप्रथम रोग दूर हो जाने का आश्वासन दिया जाता हे अर्थात् सर्वप्रथम उसकी आश्वासन चिकित्सा की जाती है। यदि कोई वैद्य या डॉक्टर आश्वासन चिकित्सा (रोगी को रोग दूर हो जाने के आश्वासन) मे सफल है तो वह रोगी को स्वस्थ कर सकता है और वचा सकता है तथा वही रोगी स्वस्थ हो सकता

है जिसके मन मे आश्वासन से यह निश्चय हो जावे कि मेरा रोग दूर हो जावेगा अथवा मैं बच जाऊगा। अन्यथा रोगी का स्वस्थ होना कठिन ही है। अतएव इस रोगी उपयोगी आश्वासन चिकित्सा का वर्णन वेद ने किया है। वेद के कुछ आश्वासन यहाँ दिये जाते है।

रोगी को देखते समय आश्वासन—

सोऽरिष्ट न मरिष्यसि न मरिष्यसि मा बिभे.।
न वै तत्र म्रियन्ते नो यन्त्यधम तम॰ ॥

(अथर्व० ८/२/२४)

हे प्यारे! तू रोग से पीडित होने वाला नही है, रोग तेरा शीघ्र दूर होने वाला है, साध्य है असाध्य नही, चिन्ता किञ्चित् भी न कर, स्वस्थ हो जावेगा, मर नही सकता, मत डर तू नही मर सकता। ओ प्यारे! मेरी चिकित्सा मे नही मरने, मरना तो दूर रहा रोग या कष्ट भी देर तक नही ठहरता। अत. विश्वास रख मै तुझे शीघ्र स्वस्थ कर दूगा।

अधिक घबराने वाले रोगी को आश्वासन—

यदि क्षितायु र्यदि वा परेतो यदि मृत्योरन्तिकं नीत एव।
तमाहरामि निर्ऋतेरुपस्थादस्पार्षमेन शतशारदाय ॥

(अथर्व० ३/११/२)

प्यारे रोगी! तू बिल्कुल साध्य है, घबराने की आवश्यकता नही, मैं तो यहाँ तक कर सकता हूँ कि यदि क्षीण आयु वाला भी क्यो न हो, चाहे जीवन के चिन्हो से भी परे हो गया हो, चाहे मृत्यु के समीप भी पहुँच गया हो उसे मृत्यु की गोद से निकाल लेता हूँ और सौ वर्ष तक जीने के लिये बल देता हूँ।

रोगी को औषधि देते हुए आश्वासन—

उत् त्वा मृत्योरोषधय सोमराज्ञीरपीपरन्।

(अथर्व० ८१/१/१७)

हे प्यारे! जिन औषधियो को तू सेवन कर रहा है– जिन औषधियो को मैं तुझे दे रहा हूँ इनमे एक परम महौषधि सोम जीवनतत्त्व देने वाली महारसायन भी है, इन्होने तुझे

बस मृत्यु के पार कर दिया–बचा लिया, बस अब तू शीघ्र अपने कारबार मे लग जाने के योग्य हो जावेगा ।

मृत्यु के निकट पहुँचे को आश्वासन—

आहार्षमविद त्वा पुनरागा पुनर्णव ।
सर्वांग सर्व ते चक्षुः सर्वमायुश्च तेऽविदम् ।।

(अथर्व० ८/१/२०)

ओ प्यारे ! तू अब मृत्यु के मुख मे नही रहा, मैंने तुझे मृत्यु के मुख से निकाल लिया, तू ससार मे फिर आ गया और पुन. नया बन कर जीवन के ससार मे लौट आया । हे सर्वांग स्वस्थ हुए प्यारे पात्र ! तेरे समस्त इन्द्रियगण, चेतना और आयु को मैने मृत्यु से छुडा कर प्राप्त कर लिया है ।

इस प्रकार आश्वासन देने से रोगी को बहुत लाभ होता है। कुशल वैद्य और डॉक्टर के हाथो मे वाणी मे रोग दूर करने की शक्ति आ जाती है, वह परोपकार हित दृष्टि और गम्भीरता से मधुर मोहने वाले वचनो मे जब रोगी को रोग दूर हो जाने का आश्वासन देता है तो रोगी बिना औषधि के ही रोगशय्या (बिस्तरे) को छोड़ देते है । जब ऐसा आश्वासन देने मे कुशल वैद्य या डॉक्टर रोगी के पास जाता है और उसे अपनी चिकित्सा मे लेता है तो प्रथम निम्न प्रकार आश्वासन दे ।

हस्ताभ्या दशशाखाभ्या जिह्वा वाच पुरोगवी ।
अनामयित्नुभ्या हस्ताभ्या ताभ्या त्वाभिमृशामसि ।।

(अथर्व० ४/१३/७)

हे प्यारे ! मैंने तुझे अपने आरोग्य देने वाले हाथो मे ले लिया, दशो अगुलियो सहित मेरे दोनो हाथो मे नीरोग करने की शक्ति है, मै अब तुझे शीघ्र स्वस्थ कर दूगा । प्यारे ! मै अपनी वाणी से सत्य कहता हूँ, बस अब तू अपने को स्वस्थ ही समझ, चिन्ता न कर मै तो तुझे बात की बात मे नीरोग बना दूगा ।

अगभेदो अगज्वरो यश्च ते हृदयामय ।
यक्ष्म श्येन इव प्रापप्तद वाचा साढ परस्तराम् ।।

(अथर्व० ५/३०/९)

हे प्यारे ! अंगो को तोडने वाला, अंगो मे ज्वर करने वाला और फेफडो सहित हृदय को रोगी बनाने वाला तेरा यक्ष्म–क्षय रोग अस्त्र से ताडित ऊपर से गिरे बाज पक्षी की भाँति मेरी वाणी से फटकारा हुआ ही तुझ से दूर हो जावेगा । देख अब तेरा रोग बात की बात मे दूर हो रहा है, बहुत कुछ दूर हो गया, यह तो अब सर्वथा दूर हो चुका इत्यादि ।

औषधि चिकित्सा

औषधियो के उपयोग से रोग दूर करने का नाम "औषधि–चिकित्सा" है । इस विषय के अनेक मंत्र वेद मे है । सम्पूर्ण मत्र इस छोटे से निबध मे दिये नही जा सकते । सारांशरूप से ही इस औषधि–चिकित्सा का यहाँ स्वरूप बताना है । प्रथम औषधियो की उत्पत्ति के विषय में वेद कहता है–

या औषधी· पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुग पुरा ।
मनै नु बभ्रूणामह शत धामानि सप्त च ।।

—ऋ० १०/९७/१

अर्थ–जो औषधी वनस्पतियाँ देवो से तीन युग पहिले उत्पन्न हो गई थी, उन भरण–पोषण करने वाली औषधियो के सौ और सात स्थान अथवा जातियाँ है ऐसा मैं मानता हूँ ।

इस भूमडल पर प्रथम औषधियाँ उत्पन्न हो गई थी और तीन युग व्यतीत होने के नन्तर मनुष्यो की उत्पत्ति हो गई । १. वनस्पति–युग, २. जलजतु–युग, ३ सर्प–युग, ४. पशु युग और ५ मनुष्य-युग यह सृष्टिक्रम है । इन औषधियो के एक सौ सात वर्ग है । कई लोग "सप्त शत धामानि" का अर्थ सात सौ धाम अथवा वर्ग समझते है और कई लोग "शत धामानि सप्त च" ऐसा वाक्य मानकर "सौ और सात धाम" मानते है। इसका विचार चतुर वैद्यो को करना योग्य है । अस्तु । इन औषधियो के विषय मे वेद कहता है –

औषधीरिति मातरस्तद्वो देवीरुप ब्रुवे ।।

—ऋ० १०/९७/४

"औषधियाँ सच्ची माताए है और वे देविया है । मान्य करने वाली अथवा हित करने वाली माताए होती है और देव की शक्ति धारण करने वाली देविया होती है ।"

"देवी श्रौषधी '" इस शब्द प्रयोग द्वारा सूचित किया जा रहा है कि श्रौषधि वनस्पतियो मे जो दोष दूर करने की शक्ति है वह देव की, अर्थात् ईश्वर की किंवा परमात्मा की है। सर्वव्यापक शक्ति सब विश्व मे व्याप रही है। अग्नि मे प्रकाश, जल मे शीतता, पृथ्वी मे धारणा-शक्ति आदि अनन्त गुण है, वे परमात्मा से प्राप्त हो गये है, इसी प्रकार श्रौषधियो का रोग दूर करने का गुण परमात्मा का है। पूर्व स्थल मे "दिव्य वैद्य" एक ही परमात्मा है, यह बात स्पष्ट कर दी है, अब यहाँ श्रौषधियाँ भी परमात्मा के गुण धारण करने से गुणी बन गई है ऐसा ध्वनित किया है। "आत्मा मे वैद्य और दवा एक ही हो जाती है" यह बात पाठक स्वय जानते ही होगे। इस विषय मे यहाँ अधिक लिखने की आवश्यकता नही है। श्रौषधियो की प्रतिज्ञा निम्न मत्र मे कही है —

श्रौषधय सवदन्ते सोमेन सह राज्ञा ।
यस्मै कृणोति ब्राह्मणस्त राजन् पारयामसि ॥

—ऋ० १०/९७/२२

अर्थ–श्रौषधियाँ सोम राजा के साथ बोलती है कि, हे राजन् जिस रोगी के लिये ब्रह्म का ज्ञान धारण करने वाला वैद्य हमारी योजना करता है, उस रोगी को रोग से हम पार कर देते है।

इस मत्र मे वैद्य का एक मुख्य लक्षण बताया है, वह यह है कि "वैद्य सच्चा ब्राह्मण होना चाहिए, अर्थात् ब्रह्म का ज्ञान वैद्य को चाहिये। "आत्मज्ञानी वैद्य चाहिये। आत्मा, बुद्धि, मन आदि सूक्ष्म तत्वो के गुणधर्म जानने वाला ही वैद्य बने। अन्य धनार्थी लोग वैद्य का धधा न करे। आत्मज्ञानी सात्त्विक वृत्तिवाला वैद्य क्यो होना चाहिए, इस बात का अधिक वर्णन करने की जरूरत यहाँ नही है, क्योकि आजकल के जमाने मे वैद्यो के जाल से क्वचित् कोई पुरुष ही बच सकता है। वैद्य का धधा वास्तव मे दैवी धधा है, परन्तु लालच के कारण अन्य धधो के समान यह धधा भी राक्षसी बनाया गया है। आत्मज्ञानी वैद्य आजकल किसी पवित्र भूमि मे होगा तो होगा।

इस मत्र मे श्रौषधियो के सोम राजा का नाम आ गया है। सोम का अर्थ सोमवल्लि, चन्द्र और जीवात्मा है। चन्द्र की सोलह कलाए होता है, जीव षोडश–कल है ही, इसी को "षोलशी इन्द्र" वेद मे भी कहा है। सोमवल्लि का भी शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष मे क्रमशः वृद्धि और क्षय होता है ऐसा कहते है, इस विषय मे हमे कोई प्रत्यक्ष ज्ञान नही है, क्योकि आजकल

असली सोमवल्ली कही भी उपलब्ध नही है । परन्तु चन्द्र के साथ सोम का सम्बन्ध लगाया गया है । इसलिये सोमवल्लि की भी १६ कलाए होना आवश्यक है ऐसा तर्क होता है सशोधक वैद्य इस विपय मे विचार करे ।

यहाँ इतना ही वताना है कि औपधि वाचक सोमशब्द आत्मा का वाचक होने से स्थूल औषधिक नाम से सूक्ष्म आत्मतत्त्व यहाँ सूचित किया है । पाठक यहाँ देख सकते है कि किस प्रकार वेद हर एक वात मे पाठको को सूक्ष्म तत्त्व के पास खीच रहा है । अव वेद मे कही हुई ओषधियाँ देखिए—

पिप्पली क्षिप्तभेपजी उतातिविद्धभेपजी ।
ता देवा॰ समकल्पयन् इय जीवितवा अलम् ॥

—अथर्व॰ ६/१०६/१

अर्थ—पिप्पली नामक औषधी क्षिप्त और अतिविद्ध रोगी के लिये अत्यन्त उपयोगी है । यह एक ही औषधी जीवित रहने के लिये पर्याप्त है, ऐसी देवो ने कल्पना की है ।

जिस रोग मे मनुप्य पागल सा वन जाता है उसको क्षिप्त कहते है और रोग से अत्यन्त वेरे हुए वीमार का नाम है अतिविद्ध । इनके लिये पिप्पली औपधी उत्तम है, इतना ही नही परन्तु प्राणिमात्र के जीवन के लिये अर्थात् सम्पूर्ण आरोग्य प्राप्त करने के लिये यह एक ही औषधि पर्याप्त है । तथा—

श्यामा सरूपकरणी पृथिव्या अध्युद्भृता ।
इदमू षु प्र साधय पुना रूपाणि कल्पय ॥

— अथर्व॰ १/२४/४

अर्थ— श्यामा नामक वनस्पति जो पृथ्वी के ऊपर उगती है वह शरीर के रग को ठीक करती है । इस वनस्पति से फिर शरीर के रूप ठीक वन जाते हैं ।

शरीर पर जो श्वेत कुप्ट के वव्वे आते है, तथा जो अन्य प्रकार के कुप्ट से शरीर विरूप हो जाता है, उस वीमारी से श्यामा औषधि वचाती है और पुन पूर्ववत् सुदर रूप वनाती है इस प्रकार कई औपधियो का वर्णन वेद मे है । यहाँ केवल सूचना मात्र बताना है इसलिये इतना ही पर्याप्त है । औपधियाँ न होने पर वडे से वडा वैद्य भी कुछ कर नही सकता, यह इस मार्ग मे आपत्ति है । परावीनता से दु ख और स्वाधीनता से ही सुख होना है । औपधियो के अवलवन रूप परावीनता इस मार्ग मे है, इसलिये वेद मे जल—चिकित्सा वता दी है—

जल–चिकित्सा

"जल–विद्या" नामक लेख मे बताया गया है कि वेद में जल–चिकित्सा का क्या प्रकार था। इसलिये उसका पुन: यहाँ विशेष वर्णन करने की आवश्यकता नही, तथापि एक दो मंत्र यहाँ नमूने के लिये दिये जाते है–

अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा ।
अग्नि च विश्वशभुवमापश्च विश्वभेषजी. ।।

–ऋ० १/२३/२०

अर्थ–सोमने मुझे कहा कि पानी के अन्दर सम्पूर्ण औषधियाँ है। जल ही सब औषधी है और अग्नि सब आरोग्य करने वाला है।

इस मत्र मे केवल जल के प्रयोग से सब रोगो की निवृत्ति सूचित की है। इस मत्र मे "अग्निचिकित्सा" की सूचना भी मिलती है। परन्तु इस विषय मे यहाँ लिखने के लिये हमारे पास स्थान ही नही है। अग्नि चिकित्सा के विषय मे किसी अन्य समय विस्तारपूर्वक लिखू गा। क्योकि इस एक चिकित्सा के कई विभाग हे।

अप्स्वन्तरमृत अप्सु भेषजम् ।

–ऋ० १/२३/१६

"पानी मे अमृत है, पानी मे औषध है।" इस प्रकार उदक का वर्णन वेद मे आ रहा है और जल चिकित्सा की सूचना दे रहा है।

आप इद्वा उ भेपजीरापो अमीव–चातनी: ।
आप सर्वस्य भेपजीस्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम् ।।

–ऋ० १०/१३७/६

जल नि सन्देह औषधी है, जल नि सशय रोगो को दूर करने वाला है, जल सब रोगो को एक ही दवा है, वह जल तुम्हारे लिये औषध करे।

इस मत्र मे स्पष्ट कहा है कि सम्पूर्ण रोग एक ही जल के प्रयोग से दूर हो सकते है। जल का अभिषिचन, उपसिचन आदि विधि अथर्ववेद मे लिखे है। विविध प्रकार से जल का उपयोग करने की विधियो की सूचना उन शब्दो से मिलती है। अब यहाँ प्रश्न उत्पन्न होता

है कि यदि एक ही जल सब रोगो का शमन करने के लिये पर्याप्त है तो अन्य दवाईयो की क्या आवश्यकता है ? जल सब देश मे सब काल मे मिल सकता है। औषधियाँ सब काल मे सब देश मे मिल नही सकती, इसलिये औषधि चिकित्सक की अपेक्षा जल चिकित्सक अधिक स्वतन्त्र है । औषधियाँ न मिलने की कठिनता जल चिकित्सा से हट गयी है, इसमे कोई सन्देह नही । जल चिकित्सा मे दवाइयो की कडवाहट से मुख खराब होने का भय नही है। औषधि चिकित्सा स्थूल अर्थात् पार्थिव चिकित्सा है, उससे सूक्ष्म जल तत्त्व का आश्रय होने से जल चिकित्सा से मनुष्य एक सिढी ऊपर पहुँचता है । क्योकि जिनका विश्वास जल चिकित्सा मे होता है उनके मन मे सूक्ष्म तत्त्व की शक्ति की कल्पना जागृत होती है । आजकल भी कई वैद्य हैं कि जो जल चिकित्सा को मानते ही नही !!! नि सन्देह जल चिकित्सा से उतना पैसा रोगियो के जेब से खेचा नही जा सकता, जैसा औषधियो की चिकित्सा से खीचा जा सकता है । परन्तु यह वैद्यो की सुभीता की बात है, रोगियो की सुभीता और उन्नति जल चिकित्सा से अधिक होनी हैं, इसका मूल हेतु इतना ही है कि इसमे सूक्ष्म तत्त्व का आश्रय होगा उस प्रमाण से अधिक उन्नति और अधिक सुख मनुष्य को प्राप्त होता है यह वैदिक धर्म का सिद्धान्त है ।

अग्नि–चिकित्सा

"अग्नि च विश्व–श–भुव" ऐसा पूर्व स्थल मे कहा ही है । सम्पूर्ण शाति और आरोग्य देने वाला अग्नि है । अर्थात् सम्पूर्ण दोष अग्नि दूर कर सकता है । राक्षसो का नाश करना वैद्य का एक कर्तव्य है यह बात पूर्व स्थल मे बताई है । अग्नि का नाम भी 'रक्षो–हा" अर्थात् राक्षसो का नाश करने वाला इस अर्थ का द्योतक है। अग्नि द्वारा दूसरी चिकित्सा हवन चिकित्सा है । अग्नि चिकित्सा का वर्णन विस्तारपूर्वक अन्य निवन्ध मे करना ही है, इसलिये यहाँ इतना ही पर्याप्त है ।

हवन चिकित्सा

वेद मे हवन का बडा भारी शास्त्र है । यद्यपि इसका पूर्णतया आविष्कार नही हुआ है, तथापि जो बाते इस समय सन्मुख आ गई हैं, उससे इतना स्पष्ट होता है कि हवन से रोगो का शमन किया जा सकता है। इस विषय मे इस लेख मे एक ही मत्र देखिये–

मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय
कमज्ञात–यक्ष्मादूत राजयक्ष्मात् ।।

–अथर्व ३/११/१

"हवन के द्वारा अज्ञात रोग से तथा क्षय रोग से भी तुमको दीर्घ जीवन के लिये छुडाता हूँ ।"

हवन से ज्ञात राग ता दूर ही हो सकते है, परन्तु अज्ञात रोग भी दूर हो सकते है। जिनका कारण, निदान और चिकित्सा की विधि स्पष्ट विदित होती है उन रोगो का नाम 'ज्ञात-यक्ष्म" है, और जिनका निदान और उपशमन का उपाय ज्ञात नही है, उनको "अ-ज्ञात-यक्ष्म" कहा जाता है । राजयक्ष्मा वह होता है कि जिसको तपेदिक, क्षयरोग आदि नाम से पुकारते हैं यह सब बीमारियो का राजा है, क्योकि एक समय जहाँ यह पहुँचता है बीमार को ले ही जाता है । इस प्रकार के भयानक क्षय रोग की भी चिकित्सा हवन के द्वारा होती है । अन्य रोग हट जाते है ऐसा कहने की भी क्या आवश्यकता है ?

ऋषिकाल मे यज्ञावधि मे वहुत ही उन्नति हो गई थी । यज्ञ से वृष्टि कराई जाती थी, धान्य मे विशेष सत्त्व लाया जाता था, नगरो और गृहो का आरोग्य सपादन किया जाता था। वायु शुद्धि और उसकी प्रसन्नता प्राप्त की जाती थी, सुपुत्र उत्पादन के लिये इष्टियाँ की जाती थी । यह तो दैवी भावना के यज्ञो का स्वरूप है । राक्षसी भावना के भी यज्ञ प्रचलित हो गये थे। इन राक्षसी यज्ञो द्वारा शत्रु के नगरो मे वीमारियाँ उत्पन्न की जाती थी, इनका प्रवर्तन राक्षसो के पास से होता था । तात्पर्य हवन से एक विशेप शक्ति उत्पन्न होती है उसको उन्नति के कार्य मे तथा विनाश के कार्य मे भी वर्ता जा सकता है । वैदिक वाङ्मय मे यज्ञ का सब उज्जवल स्वरूप ही दिखाया है, क्योकि वैदिक वाङ्मय की प्रवृत्ति ही दैवी है । पेशाच और आसुरी ग्रन्थो मे राजस और तामस घोर हवनो के विधि लिखे है । जिनसे उक्त भयानक परिणाम होते है । इनके सम्पूर्ण विधि इस समय ज्ञात नही है, परन्तु जो थोडे ज्ञात हुए है, उनका वर्णन भी यहाँ नही हो सकता । नि सन्देह इसका वर्णन वडा मनोरजक और उपयोगी है, इसलिये किसी अन्य लेख मे इसका शुभ और अशुभ स्वरूप वताया जायेगा ।

जिस प्रकार औषधि का योग्य उपयोग करने से आरोग्य और अयोग्य प्रकार से सेवन करने से अनारोग्य होता है, ठीक उसी प्रकार सात्त्विक श्रेष्ठ यज्ञो के हवन से आरोग्य बढ़ सकता है और अन्य घोर इष्टियो से व्याधियाँ भी फैल सकती है । श्रेष्ठ दैवी यज्ञो का वर्णन गोपथ-ब्राह्मण निम्न प्रकार करता है–

भैषज्य-यज्ञा वा एते । तस्माद्दतुसधिपु
प्रयुज्यन्ते ।। ऋतुसधिषु वै व्याधिर्जायते ।।

–गोपथ० उ० १/१९

"ये औषधियो के ही यज्ञ है । इसलिये ऋतुओ की सधियो मे यज्ञ किये जाते है, क्योकि ऋतु सधि मे व्याधि होती है ।"

अस्तु । रोग निवारण और आरोग्य सपादन यह सात्त्विक यज्ञ का मुख्य भाग है इसमे कोई सन्देह नही । इस प्रकार यज्ञ चिकित्सा का थोडा सा स्वरूप है। पार्थिव, जल और अग्नि से चिकित्सा इस प्रकार वेद मे आती है। "आप्" शब्द से जल–तत्त्व का जैसा वोध होता है उसी प्रकार व्यापक आत्म तत्त्व का भी ज्ञान होता है । तथा 'अग्नि" शब्द से तैजस् तत्त्व का ज्ञान होता हुआ भी परमात्मा का वोध होता ही है । इस प्रकार वेद न केवल उच्च तत्त्वो द्वारा चिकित्सा वता रहा है, परन्तु हर एक तत्त्व वाचक शब्द द्वारा उस तत्त्व के नीचे गुप्त रूप से विद्यमान आत्म तत्त्व का साक्षात्कार करा रहा है, इस वात को कभी भूलना नही चाहिए । अग्नि चिकित्सा मे, सूर्य भी अग्नितत्त्व होने से इस चिकित्सा का भी इस प्रकरण मे विचार करना योग्य है—

सौर-चिकित्सा

सूर्य के किरणो द्वारा जो चिकित्सा की जाती है उसका नाम सौर चिकित्सा है । सूर्य किरणो का पवित्रता उत्पन्न करने का धर्म वेद मे "शोचिप्–कश" शब्द द्वारा कहा है। इसलिये वेद कहता है कि—

न सूर्यस्य सदृशे मा युयोथा ॥

—ऋ० २/३३/१

अर्थात् "सूर्य प्रकाश से हमारा कभी वियोग न होवे" क्योकि सूर्य ही सव प्रकार के दोप दूर करके प्राणियो की पुष्टि करता है। यहाँ तक वेद कहता है कि—

सूर्य आत्मा जगतस्तथुपश्च ॥

—ऋ० १/११५/१

"सूर्य स्थावर जगम जगत् का आत्मा है ।" प्राणरूपी सूर्य होने से वह सवका आत्मा हा है । वह नष्ट होने से सव प्राणिमात्र नष्ट हो सकते है। यही वात प्रश्नोपनिपद् मे कही है—

आदित्यो ह वै प्राण ॥

—प्रश्न० उ० १/५

यत्सर्वे प्रकाशयति तेन सर्वान् प्राणान्
रश्मिषु सनिधत्ते ॥

—प्रश्न० उ० १/६

"आदित्य ही निश्चय से प्राण है। जब आदित्य प्रकाशमान होता है तब वह सब प्राणो को अपने किरणो मे रखता है।" तात्पर्य सूर्य किरणो के द्वारा सब जगत् मे प्राण तत्त्व का सचार होता है। जहाँ प्राण पहुँचता है वहाँ से मृत्यु का दूर होना स्पष्ट ही है। इसलिये घरो की रचना ऐसी होनी चाहिए कि सूर्य किरणो के द्वारा प्राण सब घर की शुद्धता करके और रहने के घरो से मृत्यु को दूर हकाल देवे। रोग उत्पादक कृमियो का नाश सूर्य किरण द्वारा होता है ऐसा भी वेद मे कहा है वह सब यहाँ अनुसधान देखने योग्य है।

सौर चिकित्सा द्वारा योगी लोग बडा लाभ उठाते है। प्राणायाम द्वारा इस प्राणपूर्ण तप्त वायु को अदर लेते और कुभक द्वारा प्राण को अपने शरीर मे स्थिर करते है। अन्य प्रकार युक्ति प्रयुक्ति से सूर्य किरणो के द्वारा आरोग्य सपादन करना सौर चिकित्सा मे हो सकता है।

विविध रगो वाले गौवो के दूध के विविध इष्ट और अनिष्ट परिणाम सौर चिकित्सा किंवा वर्ण चिकित्सा के साथ सम्बन्ध रखते है। इस विषय मे बहुत लिखा जा सकता है, परन्तु विस्तार भय के लिये यहाँ इतना ही लिख कर अब क्रम प्राप्त वायु चिकित्सा स्वरूप बताता हूँ।

वायु–चिकित्सा

वायु ही प्राण बनकर शरीर मे आकर रहा है यह उपनिषदो का कथन है। वायु मे 'अमृत का खजाना" है ऐसा ऋ० १/१८६ सूक्त मे कहा है। जहाँ अमृत है वहाँ रोग नही हो सकते, इसलिये अमृत का खजाना लेकर जहाँ वायु पहुँचता है, वहाँ नीरोगता प्राप्त हो सकती है। यही वायु चिकित्सा का मूल वेद मे हे। तथा–

आ वात वाहि भेषज वि वात वाहि यद्रप।
त्व हि विश्वभेषजो देवाना दूत ईयसे ॥

—ऋ० १०/१३७/३

"हे वायो! तुम्हारी दवाई ले आओ और यहाँ से सब दोष दूर करो, क्योकि तू ही सब औषधियो से युक्त है।"

पृथ्वी, आप, तेज की अपेक्षा वायु सूक्ष्म तत्त्व है। इसलिये इससे आरोग्य सपादन करना और रोग दूर करना अन्य प्रकारो से श्रेष्ठ है । जल भी प्राप्त करने के कष्ट है । वायु सर्वत्र ही है इसलिये यदि उसको खराब न किया जावे, तो सदा वह अमृत देने के लिये सिद्ध ही है । योगी लोग प्राणायाम द्वारा इसी प्राणवायु से आरोग्य और दीर्घ आयुष्य सपादन करते है । वायु के योग्य उपयोग से हर एक बीमारी दूर हो सकती है । उसके सेवन की विधि से परिचय होना चाहिये । दयालु परमेश्वर ने अमृतमय वायु सर्वत्र भरा रखा है, परन्तु अज्ञानी मनुष्य फिर भी अनारोग्य मे सडते ही है !!! यदि मनुष्य प्रतिदिन सौ पचास प्राणायाम विधिपूर्वक करता जायेगा तो उसके पास रोग खडा भी नही होगा । विधि छोडकर कार्य करने से ही मनुष्य की अवनति होती है ।

इस प्रकार स्थूल भूतो के आश्रय से चिकित्सा के क्रमपूर्वक प्रकार देखे । वेद किस प्रकार स्थूल से सूक्ष्म तत्त्वो की शक्तियो के पास मनुष्यो को खेच रहा है इसका ज्ञान इस विचार से हो सकता है । अब इससे भी सूक्ष्म तत्त्व से मानस चिकित्सा होती है, उसका विचार करना है ।

मानस चिकित्सा

यही सर्वोत्तम चिकित्सा है । वेद ने इस चिकित्सा पर जितना बल दिया है उतना अन्य चिकित्साओ पर नही दिया । इसका कारण स्पष्ट है । इस चिकित्सा मे जैसी स्वाधीनता होती है वैसी किसी अन्य चिकित्सा मे नही हो सकती । औषधि चिकित्सा मे औषधियो का आश्रय करना होता है, जल चिकित्सा मे उत्तम जल प्राप्त होना चाहिए, हवन–चिकित्सा मे विविध हवन सामग्री इकट्ठी करना आवश्यक है, वायु चिकित्सा मे शुद्ध वायु के बिना कार्यभाग नही हो सकता, सूर्य के प्रकाश के बिना सौर चिकित्सा अशक्य है, तात्पर्य बाह्य साधनो से जो चिकित्सा करनी है उसमे परतन्त्रता अवश्य ही है। वेद मनुष्यो को किसी प्रकार परतन्त्र रखना नही चाहता । इसलिये इस चिकित्सा मे वेद मे मानस–चिकित्सा बताई है। इसमे किसी बाह्य साधनो पर निर्भर होने की आवश्यकता ही नही है। यह चिकित्सा अपने आत्मिक बल से और मन की इच्छा–शक्ति से ही होती है । यदि किसी प्रकार रोगी मे आत्मिक बल उत्पन्न किया तो वहाँ चिकित्सक ने अपनी इच्छा–शक्ति द्वारा उसमे बल उत्पन्न किया तो वहाँ ही स्वय रोग का शमन होने लगता है । वेद मे मन की शक्ति इसी प्रकार वर्णन की है—

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृत
प्रजासु ।। यस्मान्न ऋते कि चन कर्म क्रियते

तन्मे मन: शिवसकल्पमस्तु ।।३।। येनेद भूतं
भुवन भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम् ।। येन
यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मन शिवसकल्प-
मस्तु ।।४।। सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव ।।
हृत्प्रतिष्ठ यदजिर जविष्ठ तन्मे मन: शिवसकल्पमस्तु ।। ६ ।।
—वा. य ३४

इन मत्रो मे मन के गुणों का कथन है । हमको यहाँ सब गुणो का विचार करने की आवश्यकता नही है, अपने विषय की सूचना जिन शब्दो द्वारा हो रही है, उनका ही यहाँ विचार करेंगे—

(१) यत् प्रजासु अत अमृत—जो मन प्राणियो के अन्दर अमृत रूप है। अमृत का सेवन करने से सब बीमारिया दूर होती है । यदि योग द्वारा इस मन की शक्ति का विकास हो गया तो आरोग्य के लिये किसी अन्य पदार्थ के आश्रय की आवश्यकता ही नही होगी ।

(२) यस्मात् ऋते कि चन कर्म न क्रियते—जिस मन के बिना कोई भी कर्म किया ही नही जाता । यहाँ बाह्य कर्म की अपेक्षा शरीर के अन्तर्गत कर्मो की ओर ही पाठक ध्यान देवे । हाथ ऊपर नीचे करना, पेट मे पचनका कर्म आदि सब मन की प्रेरणा से हो हो रहा है। जिस मन की शक्ति द्वारा चार पाच सेर वजन का हाथ जैसा चाहिए वैसा घुमाया जाता है, उस मन की शक्ति से रोग के थोडे से बीज अपने स्थान से हिलाये नही जायेंगे, ऐसा कोई भी नही कह सकेगा। अपने सारे शरीर मे मन की ही शक्ति कार्य कर रही है, परन्तु मनुष्य अपनी ही शक्ति से अपरिचित होने के कारण अपने स्वास्थ्य के लिये दूसरो पर निर्भर हो रहा है। वास्तव मे दिव्य वैद्य आत्मा ही है और अमृतरूपी मन उसी के पास है। परन्तु अमृत के महासागर मे डूब मरने वाले मूढ के समान यह भी अपने पास के अमृत को छोडकर बाहर के पदार्थ कष्ट से प्राप्त करने मे आनन्द मानता है !!!

(३) येन सप्त-होता यक्ष तायते-जिस मन के द्वारा 'सप्तहोता यज्ञ" फैलाया जाता है। दो आँख, दो कान दो नाक और एक मुख ये सात होतागण जिसमे बैठे है ऐसा यह पुरुषरूपी यज्ञ मन के द्वारा ही चलाया जाता है। इस यज्ञ मे मन ही ब्रह्मा है और ब्रह्मा का काम यही है कि वह यज्ञ के दोषो को दूर करे। यह मनरूपी ब्रह्मा का अधिकार ही है। तात्पर्य शरीर के सब दोष मन के द्वारा दूर किये जा सकते है। दोष दूर होने पर कोई रोग रहेगा ही नही । जब तक दोष होगे तब तक ही रोग होते है ।

(४) सुषारथि अश्वान् इव–उत्तम सारथी जिस प्रकार घोडो को चलाता है उसी प्रकार यह मन मनुष्यो को चलाता है। यह इसकी महती शक्ति है। परन्तु मनुष्य अज्ञान के कारण अपनी शक्ति से ही अपरिचित हो गये है ! ! अपने आपको निर्बल मानने मे ही धन्यता मान रहे है ! ! ! क्या यह सबसे बडा आश्चर्य नही !

तात्पर्य मन की अजब शक्ति है। इसलिये मानस–चिकित्सा ही सबसे श्रेष्ठ चिकित्सा है। इससे अपने तथा दूसरो के भी रोग दूर किये जा सकते है। हस्त स्पर्श द्वारा रोग दूर करने का विधान निम्न मत्र मे है–

हस्ताभ्याँ दशशाखाभ्याँ जिह्वा वाच पुरोगवी ।।
अनामयित्नुभ्या त्वा ताभ्यात्वोप स्पृशामसि ।।

–ऋ० १०/१३७/७

"दस शाखाए जिसको है ऐसे मेरे दोनो हाथो से तुमको स्पर्श करता हूँ। ये मेरे हाथ नीरोगता करने वाले है और साथ ही मैं अपनी वाणी को प्रेरित करता हूँ।'

दस अगुलियाँ हाथो की दस शाखाएँ है। इनके स्पर्श से दूसरे के राग दूर हो सकते है। वाणी से भी साथ–साथ रोगी को सूचना देनी चाहिए। मानस चिकित्सा का प्रकार इसमे लिखा है। इस विषय का वर्णन विस्तारपूर्वक आगे आ जायेगा। यहा वेद की विविध चिकित्साओ के प्रकार ही केवल बताने थे, सो साराश रूप से बताये है। वेद किस प्रकार स्थूल से सूक्ष्म तत्त्वो तक ले जा रहा है इसका थोडा सा वर्णन यहाँ किया गया है।

"इस वैदिक मानस–चिकित्सा के विषय मे कई लेख लिखने आवश्यक है, इसका विशेषत योग का स्वरूप बताने के पश्चात् ही इस चिकित्सा का वर्णन किया जायेगा। आशा है कि पाठक भी इस दृष्टि से विचार करेगे और अपने अदर मानसिक अमरपन की शक्ति योग द्वारा बढ़ाने का पुरुषार्थ योग–साधन द्वारा करेगे।

ॐ व्यक्ति मे शाति। राष्ट्र मे शाति। जगत् मे शाति।

—स्व० पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

वेद में वैद्यकशास्त्र

"वेद सर्व सत्य विद्याओ का मूल पुस्तक है" "वेद मे सर्व विद्याएँ बीज रूप से मिलती है" "वेद का पठनपाठन, श्रवणश्रावण करना आर्यो का परम धर्म है" इत्यादि उपदेश हम ऋषि मुख से श्रवण करते आये है और उस आप्तवाक्य के अनुसार हमारा विश्वास भी है, परन्तु कौन कौन से शास्त्र किस किस प्रकार से वेद मे उपलब्ध होते है इसका निश्चित पता अभी तक लगा नही है, तथा इन शास्त्रो की खोज मे वैदिक विद्वानो के परिश्रम भी जैसे होने चाहिये वैसे इस समय तक नही हुवे है यह बडी शोक की बात है।

मेरा परिश्रम वेद विषय मे बहुत ही अल्प है। परन्तु जो कुछ परिश्रम वेद विषय मे मैंने किया है उससे मेरा निश्चित मत यह हुआ है कि वेद विविध ज्ञान का एक भडार है। इस वेद मे मुख्यतया अध्यात्म–शास्त्र उपलब्ध होता है, तथा इसके साधक कई अन्य शास्त्र प्रतीत होते है जिनमे समाजशास्त्र, धर्मशास्त्र वैद्यकशास्त्र, दण्डनीतिशास्त्र राजविद्याशास्त्र इ० प्रमुख है।

वैद्यकशास्त्र के मत्रो का अभ्यास करते करते इस शास्त्र की एक निश्चित व्यवस्था है, ऐसा मेरे ध्यान मे आने लगा है। परन्तु इसकी पूर्ण व्यवस्था मैंने इस समय तक नही की है। इस शास्त्र के थोडे से मत्र आपके सन्मुख रखना चाहता हूँ जिससे आपके मन मे वदिक वैद्यकशास्त्र का गौरव नि सन्देह आ जायेगा।

मेरा विश्वास है कि जो मत्र वेद मे वैद्यकशास्त्र विषयक आते है उन्ही मत्रो के आश्रय पर हमारा आर्य वैद्यक–शास्त्र बना हुवा है। अर्थात् आर्य वैद्यकशास्त्र का बीज वेदमत्रो मे अवश्य मिलता है। जिसकी अशत गवाही सुश्रुतकार देते है —

इह खल्वायुर्वेदो नाम यदुपागमथर्ववेदस्य
अनुत्पाद्यैव प्रजा कृतवान् स्वयभू ॥

—ऋ० सुश्रुत० सूत्र अ०

"आयुर्वेद अथर्ववेद का उपाग है" यही उपवेद है। परन्तु शोक है कि यह उपवेद इस समय नही मिलता हैं। वेद से आयुर्वेद नामक उपवेद निर्माण हुवा। इस आयुर्वेद से प्राचीन वैद्यशास्त्र जो चरक सुश्रुतादि नाम से प्रसिद्ध है, उत्पन्न हो गये अर्थात् वेद से वैद्य शास्त्र निकल आया। वेद मे जो वैद्यशास्त्र का बीज था वही वैद्य ग्रन्थो के रूप मे वृक्षाकार परिणत हो गया है। अस्तु। अब हम प्रस्तुत निबन्ध का विचार करते है। वैद्यशास्त्र के बीजभूत मत्रो का

विचार करने के पहिले वैद्य के लक्षण जो वेद ने कहे है वह देखने चाहिये ।

यत्रौपधी समग्मत राजान: समितामिव ।
विप्र स उच्येत भिषग्रक्षोहाऽमीवचातन ॥
—ऋ० १०/९७/६

भावार्थ—"जिस प्रकार क्षत्रिय युद्ध मे एकत्रित होते है उस प्रकार जिसके पास सर्व ओपधियाँ एकत्रित होती है । उस विद्वान का नाम वैद्य होता है और वही विद्वान् राक्षसो—रोगवीजो का हनन करने हारा तथा रोगो को दूर करने वाला होता है' इस मत्र को देखने से वैद्य के निम्नलिखित लक्षण प्रतीत होते है—

(१) विप्र – वैद्य, विद्वान, ज्ञान सम्पन्न, अर्थात् सागोपाग वैद्यशास्त्र जानने वाला होना चाहिये ।

(२) औषधि सग्राहक तथा औषधियोजक – रोगनिवारक सम्पूर्ण ओपधियो का सग्रह करने वाला तथा उन औषधियो की उत्तमता से योजना करने वाला ।

(३) रक्षो—हा– रोगजन्तुओ की यथोचित परीक्षा करके उनका हनन करने वाला ।

(४) अमीव—चातन – रोगो को औषधि योजना के द्वारा दूर करने वाला ।

इन चार लक्षणो से जो युक्त होता है वह वैद्य कहलाता है ।- (१) शास्त्र का अभ्यास, (२) औषधि सग्रह, (३) रोग—बीज—दूरीकरण समर्थता (४) तथा रोगविनाश समर्थता—यह चतुर्लक्षण युक्त वैद्य होता है ।

इन लक्षणो का विचार करने से आजकल क इश्तिहारी वैद्यो के व्यवहार का यथोचित खण्डन हो गया है । अर्थात् वैद्य का धवा हर एक को नही करना चाहिए, परन्तु जो उक्त लक्षण युक्त हो वह ही वैद्यक किया करे अन्य नही ।

इस मत्र से कितना उत्तम उपदेश मिलता है । यदि लोक इस उपदेश की ओर ध्यान देगे तो वहुत लाभ हो सकता है । अब शरीर विज्ञान के विषय मे एक मत्र देखिये—

यास्ते शत धमनयोऽङ्गान्यनु विष्ठिता ।
तासा ते सर्वासा वय निर्विपाणि ह्वय.मसि ॥
—अथर्व ६/१०/२

भावार्थ– 'मनुष्य के शरीर मे सैकडो नसे तथा नाडिया है। प्रति अवयव मे इनकी स्थिति है। इन सब धमनियो से विष को हम बाहर निकालेगे।"

इस मत्र मे दो बाते स्पष्ट कही है– (१) एक यह है कि शरीर के प्रति अवयव मे अनेक नाडिया है। तथा (२) दूसरी बात यह है कि उन नाडियो मे विष सचार होकर नाना व्याधिया होती है। इस कारण उन नाडियो को सदा निर्विष अर्थात् शुद्ध रखना चाहिये। नाडियो की निर्विषता के ऊपर मनुष्य का स्वास्थ्य अवलम्बित है, यह बात यहाँ स्पष्ट प्रतीत होती है। धमनियो के अन्दर विष सचारित होकर नाना व्याधिया होती है उनके कई नाम अगले मत्र मे दिये है-देखिये—

अगभेदो अगज्वरो यश्च ते हृदयामय।
यक्ष्म श्येन इव प्रापप्तत् वाचा साढः परस्तराम् ॥

—अथर्व ५/३०/६

भावार्थ– "आग दूखना, (२) शरीर का ज्वर, (३) हृदय की व्यथा (४) क्षयरोग यह सब व्याधिया एकदम नष्ट हो जायेगी, जिस प्रकार श्येन झटपट भागता है।'

इस मन्त्र मे चार व्याधियो का परिगणन किया है। व्याधियो की अन्य परिगणना भी अन्य मन्त्रो मे आ गई है।

(१) क्षत्रिय व्याधि – जो व्याधि माता–पिता के रज वीर्य के साथ सतान मे आते है उनको क्षेत्रिय व्याधि बोलते है। यह क्षेत्रिय व्याधि वडे दुस्तर होते है। इनका औषधोपचार अथर्ववेद मे बहुत स्थान पर आया है।

(२) निर्ऋति – अनियमित वर्तन, बुरा व्यवहार करने से जो व्याधिया उत्पन्न होती है उनको निर्ऋति वोलते है।

(३) आग – फैलने वाली व्याधि।

(४) दुरितम् – सदोष पदार्थ शरीर मे प्रविष्ट होने से जो रोग उत्पन्न होते है उन व्याधियो के वोज का नाम दुरित है, इसी को विष भी कहते है।

(५) विष.– जिससे शरीर की समता नष्ट होती है उसको विष कहते है, शरीर के

अन्दर सप्त धातुओ की साम्यावस्था जिस समय होती है उस समय उसको आरोग्य कहते है, तथा जिस समय प्रतिलोमी पदार्थ अन्दर जाता है और सप्तधातुओ के अन्दर विषमता उत्पन्न करता है उस समय व्याधि उत्पन्न होते है, यह विषमता जिससे होती है उसको विष कहा हुवा है। सूर्य-किरणो के द्वारा यह विष दूर होता है ऐसा आगामी मन्त्रो मे कहा है—

ये अगानि मदयन्ति यक्ष्मासो रोपणास्तव ।
यक्ष्माणा सर्वेषा विष निरवोचमह त्वत् ।। १६ ।।
पादाभ्या ते जानुभ्या श्रोणिभ्या परि भसस ।
अनूकादर्पणीरुष्णिहाभ्यः शीर्ष्णो रोगमनीनशम् ।। २१ ।।
स ते शीर्ष्ण. कपालानि हृदयस्य च यो विधुः ।
उद्यन्नादित्य रश्मिभि शीर्ष्णो रोगमनीनश. ।। २२ ।।

—अथर्व० ९/८

भावार्थ– "जिससे अवयवो के अन्दर मद उत्पन्न होता है और नाना प्रकार के व्याधि होते है वह विष होता है। पाव, जानु, श्रोणि, पेट, कमर, मस्तक, कपाल, हृदय तथा अन्य अवयव इनके अन्दर जो विष रहता है उसका नाश उदय को प्राप्त हुवा सूर्य अपने किरणो से करता है। अर्थात् प्रात काल के सूर्य-किरणो से अनेक व्याधि नाश होते है।"

इस मन्त्र मे विष से व्याधियो का उत्पन्न होना तथा सूर्य किरणो द्वारा विष का नाश होना स्पष्ट लिखा है। सूर्य किरण विष दूर करके आरोग्य का सवर्धन करने हारे है। इस कारण सूर्य का नाम "शोचिष्+केश" ऐसा वेद मे आया है। जिससे किरणो का शुद्धता करने का धर्म स्पष्ट पाया जाता है। सूर्य के विषय मे और देखिये—

अपचित प्र पतत सुपर्णो वसतेरिव ।
सूर्य्य कृणोतु भेषज चन्द्रमा वोऽपोच्छतु ।।

—अथर्व ६/८३/१

भावार्थ– "जिस प्रकार गरुड दौड जाता है उसी प्रकार स्फोटक व्याधि दूर चली जायेगी, इसके लिये सूर्य औषध बनावे तथा चन्द्रमा अपने प्रकाश से उसका नाश करे।"

इस मन्त्र मे सूर्य औषध बनाता है, ऐसा स्पष्ट कहा है। सूर्य इस विश्व मे प्राणरूप है और अपने किरणो के द्वारा सर्व विश्व का स्वास्थ्य उत्तम रखता है। परन्तु मनुष्य ऐसे है

कि वे स्वय अधेरे स्थान मे रहकर सूर्य की प्राणशक्ति से वचित रहते है और अनारोग्य मे फँसते है। इस मत्र से पता लगता है कि मकान इस प्रकार के बनाने चाहिये कि जिनमे सूर्य-प्रकाश विपुल आवे तथा उनके द्वारा आयुरारोग्य की वृद्धि प्राप्त होवे।

सूर्य किरणो द्वारा जो चिकित्सा होती है वह रश्मि स्नान नाम से प्रसिद्ध है। इस रश्मि स्नान से अनेक व्याधिया दूर होती है। अब रश्मि चिकित्सा को यहाँ छोडकर वायु-चिकित्सा के विषय मे थोडा सा देखेगे—

द्वाविमौ वतौ वात आ सिन्धोरा परावत ।
दक्ष ते अन्य आ वातु पराऽन्यो वातु यद्रप ।। २ ।।
आ वात वाहि भेषज वि वात वाहि यद्रप ।
त्व हि विश्वभेषजो देवाना दूत ईयसे ।। ३ ।।

—ऋ० १०/१३७

भावार्थ– "दो वायु है। एक समुद्र के ऊपर से आता है और दूसरा जमीन के ऊपर से चलता है। जो समुद्र के ऊपर से जमीन पर आता है वह बल को लाता है तथा जो जमीन के ऊपर से आता है वह दोषो को साथ ले जाता है। बलवान वायु औषधि ले आवे तथा अन्य वायु दोषो को दूर करे। वायु सम्पूर्ण औषधियो का केन्द्र है इस कारण उनको देवदूत कहते है।"

इस मन्त्र मे वायु चिकित्सा का मूल है। समुद्र के ऊपर से शुद्ध वायु आता है, वह वल देता है, आरोग्य बढाता है, अर्थात् यह वायु सम्पूर्ण औषधियो को अपने साथ लाता है। शुद्ध वायु ऐसा ही उत्तम होता है। इसलिये शुद्ध वायु का सेवन करना चाहिये। शरीरो की तथा गृहो की रचना ऐसी होनी चाहिये कि उसमे ऐसा शुद्ध वायु सदैव आता रहे। मनुष्यो के स्थानो पर से जो वायु आता है वह नाना प्रकार के रोग बीजो को साथ लाता है, इस कारण वह लाभदायक नही होता है।

मनुष्य के शरीर मे भी श्वास तथा उच्छ्वास ऐसे दो वायु कार्य करते है जो शुद्ध वायु अन्दर जाता है वह बल उत्पन्न करता है। तथा जो अन्दर से अशुद्ध वायु बाहर निकलता है वह अशुद्धि ले आता है। सब शरीर का स्वास्थ्य इन वायुओ पर अवलबित है।

उक्त मन्त्रो मे वायु के लिये "विश्वभेषज" यह शब्द आया है यही शब्द सब वायु विद्या के प्रकाश का केन्द्र है। इसी शब्द ने वायु चिकित्सा के विषय मे सब कुछ कहा है। वायु अर्थात् शुद्ध वायु सम्पूर्ण औषधियो का तत्व है, सम्पूर्ण औषधि सेवन का फल शुद्ध वायु के सेवन से प्राप्त होता है। अर्थात् औषधियो का कार्य केवल अकेला वायु ही कर सकता है। किस व्याधि के लिये किस प्रकार वायु सेवन करना चाहिये, यह बात अन्य प्रकार से विदित हो सकती है। अस्तु, इतना वायु चिकित्सा के विषय मे कहना पर्याप्त है। अब जल चिकित्सा के विषय मे थोडा सा देखिये—

अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेपजा ।
अग्नि च विश्वशभुवमापश्च विश्वभेपजी. ।।
इदमाप प्र वहत यत्कि च दुरित मयि ।
यद्वाहमभिदुद्रोह यद्वा शेप उतानृतम् ।।

—ऋ० १/२३/२०, २२

आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन। महे रणाय चक्षसे ।।
यो व शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह न । उशतीरिव मातर ।।
तस्मा भर गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ ।
आपो जनयथा च न. ।।

—ऋ० १०/९/१ ३

भावार्थ— 'पानी के अन्दर सम्पूर्ण औषधिया विद्यमान है जिस प्रकार अग्नि सब' प्रकार से कल्याणकर्ता है उसी प्रकार जल भी सम्पूर्ण औषधिरूप है। मेरे अन्दर रोग बीजरूपी—विष, जो कुछ गया हो उसको यह जल बाहर ले आवे। जो कुछ अपथ्य मेरे से हो गया हो वह इस जल से ठीक होवे। जल अत्यन्त आरोग्यदायक है तथा बल देने वाला है। जल अत्यन्त कल्याणरूपी है, वह हमारा हित करने वाला होवे।"

यह साराश रूप से उक्त मत्रो का आशय है। उक्त मत्रो मे जल के लिये जो विशेष शब्द आये है उनका अर्थ देखिये—

(१) विश्व—भेपजी = (सर्व—भेपजीः) = जिसमे सम्पूर्ण औषधिया अर्थात् सम्पूर्ण औषधियो का सत्व रहता है, ऐसा पदार्थ जल है। अर्थात् जल के यथा—योग्य उपयोग से औषधियो के योग्य सेवन का फल प्राप्त हो सकता है।

(२) दूरित प्रवाहक. = (वि—विरेचक) = शरीर मे गये हुये रोगोत्पादक विष दूर करने वाला जल है। अर्थात् जल के योग्य सेवन से शरीर निर्विष होकर मनुष्य निरोग होता है।

(३) मयोभुवः आपः – उदक कल्याण करने वाला है तथा हितकारक, आरोग्यवर्धक, सुखदायक है ।

(४) शिव–तम रसः = जल यह एक अत्यन्त आरोग्य उत्पन्न करने हारा कल्याणमय अर्क है ।

उक्त मत्रो मे ये शब्द है, कि जो जल का प्रभाव वर्णन कर रहे है, जिनसे जल चिकित्सा प्रकट होती है । इस चिकित्सा के विषय मे अगले मत्र देखिये—

जालाषेणाभि षिञ्चत जालाषेणोप सिञ्चत ।
जालाषमुग्र भेषज तेन नो मृड जीवसे ।।

—अथर्व० ६/५७/२

भावार्थ– "जल से अभिषिञ्चिन करो, जल से उपसिचन करो, जल ही बडा भारी औषध है, उसी के सेवन से जीवन सुखमय होता है ।"

इस मत्र मे स्पष्टतया कहा हैं कि जल के अभिषिचन तथा उपसिचन से जीवन सुखमय हो सकता है, उक्त दो प्रकार जल के उपयोग करने के है, उक्त प्रकार से उपयोग करने से सम्पूर्ण रोग दूर हो सकते है, कारण यह है कि "जलाष उग्र भेषज" जल अत्यन्त तीव्र औषधि है, पानी बडी तेज दवा है । जैसा कि इस मत्र मे कहा है उससे और अधिक जल चिकित्सा के विषय मे क्या कहा जा सकता है ।

सूर्य किरण–चिकित्सा, वायु–चिकित्सा, जल–चिकित्सा इन तीन चिकित्साओ के विषय मे थोडा सा दिग्दर्शन इस समय तक किया है, निबध का विस्तार बहुत न हो इसलिये हर एक विषय मे अत्यन्त सक्षेप से ही दिखाया जाता है ।

उक्त जल चिकित्सा के मत्रो मे अग्नि के लिये "विश्व–श–भुव" ऐसा विशिष्ट शब्द आया है ।

जिसका अर्थ– "सम्पूर्ण कल्याण का उत्पादक" ऐसा है । अग्नि भी आरोग्यसवर्धक है ऐसा इस शब्द से प्रतीत होता है । जिस कारण अग्नि का उपयोग हवन मे होता है । "ऋतुसधिपु व्याधिर्जायते । ऋतुसधिषु यज्ञा क्रियन्ते ।" इस प्रकार के ब्राह्मण वचन बताते है कि रोग बीजो को हटाने के अर्थ मे यज्ञ का उपयोग होता है । इसलिये अग्नि के विषय मे अधिक लिखने का प्रयोजन नही है । अब औषधि चिकित्सा के विषय मे सक्षेप से लिखना है–

प्रथम "औपधि" शव्द का अर्थ देखने की अत्यन्त आवश्यकता है। औपधि शव्द मे दो शव्द है और उनका अर्थ नीचे दिया है–

औप (दोष) – दोष, मल, रोगवीज।
धी – धोने वाली, धोकर दूर करने वाली।

अर्थात् दोपो को धोने वाली, दोपो को दूर करने वाली जो चीज होती है उसको औपधि कहते है। इसी कारण औषधि वनस्पतियो को औषधि कहते है। औपधिया अनत प्रकार की है। वेद मे भी अनेक प्रकार के औषधियो का वर्णन है। उन वर्णनो मे से कुछ औपधियो का वर्णन नीचे दिया है। प्रथमत. सामान्य वर्णन अगले मत्रो मे दिया है–

या औषधी पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुग पुरा।
मने नु बभ्रूणामह शत धामानि सप्त च॥
यदिमा वाजयन्नहमोपधीर्हस्त आदधे।
आत्मा यक्ष्मस्य नश्यति पुरा जीवगृभो यथा॥

—ऋ० १०/९७/१, १०

भावार्थ– "मनुष्यो के पहिले तीन युग औपधियाँ उत्पन्न हुवी थी और इन औपधियो के सात सौ किवा एक सौ सात जातियाँ है। औपधी को वलवती करके सेवन करने से रोग का वीज नष्ट होता है।'

इन मन्त्रो मे तीन वाते कही है– (१) औषधियो का तीन युग प्रथम उत्पन्न होना (२) औषधियो की सात और सौ जातियो का अस्तित्व, (३) औपधियो के सेवन से रोग वीजो का नाश होना, इस तीसरी वात से ही वैद्य शास्त्र की उत्पत्ति है। इन मन्त्रो मे जो वात कही है वहुत ही विचारपूर्वक कही है, केवल औपधि के सेवन से व्याधि का नाश नही होता है, प्रत्युत औपधि को वीर्यवती वनाकर सेवन करने से व्याधिया दूर होती है, औषधि को वीर्यवती वनाने का जो प्रकार होता है वही उसकी विधि है। इसलिये विधियुक्त औषध वनाकर उसका यथायोग्य सेवन करना चाहिये यह तात्पर्य ध्यान मे धरने योग्य है। अव वेद मे किस प्रकार औपधियो का वर्णन है यह इस अग्रलिखित मत्र मे देखिये।

पिप्पली औषधि ।

पीप्पली क्षिप्तभेषजी उतातिविद्धभेषजी ।
ता देवा. समकल्पयन्निय जीवितवा अलम् ।।
पिप्पल्य: समवदन्तायतीर्जननादधि ।
य जीवनमश्नवामहै न स रिष्याति पुरुष' ।।
वातकृतस्य भेषजीमथो क्षिप्तस्य भेषजीम् ।।

—अ० ६/१०९/१–३

भावार्थ– पिप्पली औषधी उन्माद व्याधि पर तथा अत्यन्त पुराने रोग पर चलती है। पिप्पली की प्रतिज्ञा है कि "जो पुरुष हमारा सेवन करेगा उसका नाश नही होगा ।" पिप्पली औषधि वात विकार तथा उन्माद विकार पर अच्छी औषधि है।

कैसा स्पष्ट शब्दो मे औषधि का वर्णन आया है कोई सदिग्ध बात नही। साधारणत: पिप्पली का उपयोग सर्व साधारण व्याधियो पर किया जा सकता है। अर्थात् यही एक औषधि विविध व्याधियो पर विविध प्रकार से चलती है । यह इस औषधि का सर्व साधारण उपयोग कहा है, इस सूचना को ध्यान मे रखकर वैद्य पिप्पली का उपयोग कर सकते है। इस औषधि का विशेष उपयोग भी स्पष्टता के साथ किया है कि उन्माद तथा वातरोग तथा पुराने रोगो पर इनके सेवन से लाभ हो सकता है। अस्तु। इस प्रकार कई वनस्पतियो का वर्णन मत्रो मे आया है । उनमे से थोडासा नमूना आगे दिया हुआ है–

श्यामा औषधि ।

किलास च पलित च निरितो नाशया पृषत् ।
आ त्वा स्वो विशता वर्ण परा शुक्लानि पातय ।।

—अथर्व० १/२३/२

आसुरी चक्रे प्रथमेद किलासभेषजमिद किलासनाशनम् ।
अनीनशत् किलास सरूपामकरत् त्वचम् ।। ३ ।।
श्यामा सरूपकरणी पृथिव्या अध्युद्भृता ।
इदमू पु प्र साधय पुना रूपाणि कल्पय ।। ४ ।।

—अथर्व० १/२/४

भावार्थ– "रामा, कृष्णा, असिक्नी, श्यामा यह औषधियां हैं जिनके उपयोग से किलास (श्वेत कुष्ठ) तथा पलित (श्वेत विन्दु) विलकुल नाश होता है। त्वचा का रग ठीक करने वाली श्यामा वनस्पति है। जिसके सेवन से चमडी का रग पुन पूर्ववत् होता है।"

श्वेत कुष्ठ के ऊपर इन चार वनस्पतियो का उपयोग करके देखना चाहिये। अनुभव, विचार तथा सशोधन करने से निश्चित विधि का पता लग सकता है। वेद ने सूचना दी है, अब आर्य वैद्यो का काम है कि वे इनको यथायोग्य रीति से उपयोग मे लाकर लोगो को व्याधि से दूर करे।

अपा मार्ग।

क्षुधामार तृष्णामार तथा अनपत्यताम् ।
अपामार्ग त्वया वय सर्वं तदप मृज्महे ॥
अपामार्ग ओषधीना सर्वासामेक इद्वशी ।
तेन ते मृज्म आस्थितमथ त्वमगदश्चर ॥

—अथर्व० ४/१७/६–८

भावार्थ– "क्षुधा, तृष्णा तथा अनपत्यता इनके ऊपर अपामार्ग औषधी का उपयोग होता है। सम्पूर्ण औषधियो मे अपामार्ग औषधि से ही उक्त कार्य विशेष प्रकार से होता है।"

क्षुधा तथा तृष्णा सम्वन्धी सर्व विकार तथा अनपत्यता सम्वन्धी सर्व व्याधि इस औषधि के सेवन से दूर होते है।

केशवर्धन के उपाय का वर्णन–अथर्ववेद ६/१३८ मे आया है। इस विषय के मत्र विस्तार भय से यहाँ उद्धृत नही किये है, अब एक ही वनस्पति का उल्लेख करके इस विषय की समाप्ति करनी है—

स ते मज्जा मज्ज्ञा भवतु समु ते परुषा परु ।
स ते मासस्य विस्रस्त समस्थ्यपि रोहतु ॥ ३ ॥
मज्जा मज्ज्ञा स धीयता चर्मणा चर्म रोहतु ।
असृक् ते अस्थि रोहतु मास मासेन रोहतु ॥ ४ ॥
यदि कर्तं पतित्वा सशश्रे यदि वाऽश्मा प्रहृतो जघान ।
ऋभू रथस्येवाङ्गानि स दधत्परुषा परु ॥ ७ ॥

—अथर्व० ४/१२

भावार्थ– "रोहिणी नामक जो वनस्पति है उससे मासादिकी शीघ्र वृद्धि होती है, इस कारण शस्त्रादिको के आघात से जो जख्म होती है उसका व्रण इस वनस्पति द्वारा शीघ्र ठीक होता है। मज्जा से मज्जा, मास से मास, चर्म से चर्म, अस्थि से अस्थि इस वनस्पति द्वारा बढता है। यदि आरि शस्त्र के आघात तथा पत्थर लगने से व्रण हुवा हो तो इस वनस्पति से शीघ्र ठीक होता है, जैसा कि उत्तम तर्खान रथ के अगो को शीघ्र ठीक करता है, उसी प्रकार रोहिणी वनस्पति शरीररूपी रथ को शीघ्र ठीक करती है।"

औषधिया तैयार करने के समय वैद्यो को औषधियो की शक्ति बढाने का उपाय भी सोचना चाहिये। औषध शतवीर्य तथा सहस्रवीर्य वन सकता है ऐसा वेद मे अनेक बार वचन आया है।

शतवीर्य– सौ गुणा अधिक शक्ति वाला तथा
सहस्रवीर्य– सहस्र गुणा अधिक शक्ति वाला औषध।

वलवान, वलवत्तर तथा वलवत्तम यह भी तीन प्रकार है, यह सब सशोधक तथा सग्राहक वुद्धि से देखना तथा विचारना चाहिये, इन वीर्यो का सम्वन्ध औषधियो की तेजस्विता बढाने मे होता है, छोटे वडे वीर्य वाला औपध व्याधि के न्यूनाधिक तीव्रता के अनुसार व्याधिग्रस्त की आयु के अनुसार तथा रोग की आयु के अनुसार न्यूनाधिक सेवन किया जा सकता है, अस्तु। यहाँ औषधि विषय समाप्त करके वायु शुद्ध करने वाले वृक्षो के विपय मे वेद क्या कहता है यह सक्षेप से देखते है—

यत्राश्वत्था न्यग्रोधा महावृक्षा शिखण्डिन ।
तत् परेता अप्सरस प्रतिबुद्धा अभूतन ॥ ४ ॥
यत्र व प्रेखा हरिता अर्जुना उत
यत्राघाटा कर्कर्य सवदन्ति ।
तत्परेता अप्सरस प्रतिबुद्धा अभूतन ॥ ५ ॥
एयमगन्नोषधीना वीरुधा वीरधा वीर्यावती ।
अजश्रृग्यराटकी तीक्ष्णश्रृगी व्यृपतु ॥ ६ ॥

—अथर्व ४/३७

भावार्थ– "जहाँ अश्वत्थ न्यग्रोध, ये महावृक्ष अपने पत्रो के साथ प्रसन्नता से रहते है, अर्जुन, अघाट, कर्करी, अजश्रृगो अराटकी, तीक्ष्णश्रृगी ये वृक्ष तथा वनस्पतियाँ रहती है वहाँ पानी मे चरने हारे विपजतू नही रहते है।"

"अप् सर" शब्द पानी में सचार करने हारे जो रोग जंतु होते हैं उनका बोधक है । इन वृक्षो के कारण मलेरिया का दूर होना भी सभव है क्योंकि मलेरिया के रोग बीज भी चैलाश्रयित होते है जहाँ मलेरिया बहुत होता है वहाँ इन वृक्षो को लगाकर अनुभव देखने योग्य है, इस प्रकार कई वृक्षों के विषय मे लिखा है ।

अस्तु, इस प्रकार वेद्यक विषय की कई विद्याओ के विषय मे वेद मे उल्लेख आया है–जिसका दिग्दर्शन करना भी एक बडा भारी ग्रथ लिखने के समान बडे आयाम का काम है।

एक वर्ष हुवा मैंने वेद के वैद्यशास्त्र का अभ्यास प्रारभ किया, यद्यपि वैद्यशास्त्र मेरा विषय नही, तथा मेरी गति भी इस विषय मे बहुत सी नही तथापि इस विषय का विचार करता रहा इस समय तक मेरे पास आठ सौ से अधिक मत्र उपस्थित हैं, कि जिनमे वैद्यशास्त्र के विषय के अद्भुत सिद्धान्त लिखे हुए प्रतीत होते है, अन्य भी सैंकडो मत्र होगे जो मैंने न देखे हो अथवा मेरे समझने मे न आये हो ।

यदि कोई विद्वान वैद्य इन मत्रो का निरीक्षण करेगा और विचारपूर्वक सगति लगावेगा, तो लोगो के ऊपर बडा भारी उपकार हो सकता है, मैं यथामति इन मत्रो की सगति लगा रहा हूँ, और इन मत्रो के सग्रह को लोगो के सन्मुख रखने की मै इच्छा कर रहा हूँ; परन्तु कितने समय का यह काम है इसका निश्चय इस समय तक नही हुवा हे ।

अस्तु । अत मे इस महान् तथा गभीर विषय की ओर विद्वान वैद्यो को अपनी दृष्टि डालनी चाहिये, ऐसी उनकी सविनय नम्र विनति करके मै इस अल्प निबध को समाप्त करता हूँ।

—स्व० पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

इन्द्र और नमुचि

"अपा फेनेन नमु चे शिर इन्द्रोदवर्तय ।
विश्वा यदजय स्पृध" ।।

(ऋग् मडल ८, सूक्त १४, मत्र १३, ।। यजु०, अध्याय १६, मत्र, ७१ ।। सामवेद पूर्वाचिक प्रपाठक ३, दशती २, मत्र ८ (२११) ।। अथर्व०, काण्ड २०, सूक्त २६, मत्र ३) इसका शब्दार्थ यह है कि—

"हे इन्द्र । अपा फैन के साथ नमुचिका सिर कुचल दे या मरोड दे, या अलग कर दे और विरोध को जीत" ॥

'नमुचि" कौन है जिसका सिर कुचलने के लिये इन्द्र से प्रार्थना या निवेदन किया गया है, या इन्द्र को कहा गया है । इन्द्र कौन है ? या क्या चीज है ? "अपा फेन" कौनसा हथियार है जिसके साथ कि इन्द्र नमुचि का सिर कुचल या काट सकता है ।

यह मत्र जो भी कि ऊपर दिया गया है, आयुर्वेद से ही सम्बन्ध रखता है ।परन्तु समय फेर से, दूसरे बहुत से वेदमत्रो की तरह, इसके गले मे भी व्यर्थ कहानियो का मुर्दा साप पड गया ।

जव तक कि इस शव को इसके गले से निकालकर परे नही फैंक दिया जाता, तब तक इस मत्र की उज्ज्वल और पवित्र मूर्ति के साक्षात् दर्शन असभव है । इसलिये कुछ काल के लिये कथा कहानियो को भुलाकर शब्दार्थ से ही भावार्थ को जानने का यत्न करे ।

"नमुचि" भी रोग या बीमारी है, जिसे इन्द्र ही दूर करता है। बाहर आदित्य मे सूर्य का एक नाम "शुक्र" है और यही नाम इन्द्र का भी मशहूर है। "हरि" इन्द्र का भी नाम है और सूर्य का भी। 'दिवस्पति" इन्द्र का भी नाम है और सूर्य का भी है । देखिए शब्द कल्पद्रुम आदि सस्कृत के कोप। "शब्दस्तोम महानिधि" के पृष्ठ ६८० पर इन्द्र सूर्य का भी नाम है। निरुक्त (निघण्टु) अध्याय ५ खण्ड ४ मे सविता जो सूर्य का नाम है वही इन्द्र के लिये आया है । अथर्ववेद काण्ड १३, सूक्त ३, मत्र १३ मे लिखा है कि–

> "स वरुण सायमग्निर्भवति । स मित्रो भवति प्रातरुद्यन् ।
> स सविता भूत्वाऽन्तरिक्षेण याति । स इन्द्रो भूत्वा तपति
> मध्यतो दिवम्" ॥
>
> —अथर्व० १३/३/१३

अर्थात वह करुण सायकाल अग्नि होता है और प्रात:काल उदय होता हुआ मित्र होता है । वह आकाश मे सविता होकर चलता है और इन्द्र होकर द्युलोक मे तपता है, या दिन के मध्य मे या दोपहर के समय ।

यहाँ स्पष्ट रीति से दोपहर के सूर्य का नाम "इन्द्र" लिखा है। जिस प्रकार एक मनुष्य

को आयु की दृष्टि से बच्चा, जवान और बूढा कह सकते है और कहा जाता है, इसी प्रकार "सूर्य भी भिन्न भिन्न समयो मे अग्नि, मित्र, सविता और इन्द्र कहलाता है।"

इन्द्र नाम सूर्य का भी है; इसके लिये अधिक प्रमाणो की आवश्यकता नही क्योकि वेद के मानने वालो मे वेद से बढकर और क्या प्रमाण हो सकता ?

सूर्य के जहाँ और बहुत से नाम हैं वहाँ "अर्क" भी सूर्य का एक नाम है। जहाँ "अर्क" सूर्य का एक नाम है, वहाँ आक को भी "अर्क" कहते है। आक पजाब मे मशहूर पौधा है। आक के सस्कृत भाषा मे ये नाम भी है, अर्थात् "अर्क' भास्कर, विवस्वान, अर्यमा, अहर्पति, उष्णरश्मि, भानु, प्रभाकर, विभाकर, विभावसु, सप्ताशव, सविता और रवि आदि। ये सब नाम ही सूर्य के है।

आयुर्वेद मे आक और सूर्य एक ही नाम मे आये हे। जो नाम सूर्य के हे वे सब आक के भी हे। आक ओर सूर्य मे मित्रता भी हे। अर्थात्–तेज गरमी के दिनो मे जबकी धूप मे धरती पर नगा पैर रखना कठिन होता है धरती और आकाश गरमी की शक्ल (रूप) धारण करते हैं, गरम और वन्हिसदृश रेत मे आक के पौधे हरे–भरे और दूध या रस से भरे हुए तथा सर्वांग सम्पूर्ण होते है। फल, फूल, पत्ते, शाखा और जड ये सारे अग रसदार होते है। वर्षा के आरभ मे ही आक जलना, मुरझाना और शुष्क होना प्रारम्भ हो जाता है। बरसात के दिनो मे आक बेजान (निष्प्राण) हो जाता है। किसी हिन्दी के कवि ने कहा हे कि—

"आक, ज्वासा बकरा चौथा गाडीवान
ज्यो ज्यो बरसे मेघला त्यो त्यो त्यजे प्राण ॥"

अर्थात् "आक, जवासा (धमासा), बकरा, तथा बैलगाडी वाला इन चारो की यह विशेषता होती है कि, ज्यो ज्यो मेघ बरसता है त्यो त्यो वे प्राण को छोडते है। "जवासा भी प्रसिद्ध पौधा है, वह भी तेज गरमी मे फलता और फूलता है, बकरी तेज गरमी मे ही खुश रहती है और खूब दूध देती है। कहा जाता है कि ज्यो ज्यो बकरी के खूर तपते है त्यो त्यो इसका दूध बढता है, वर्षा के आते ही बकरियो का दूध भी शुष्क हो जाता है।

आक और सूर्य का सम्बन्ध हे। गरमी से आक फलता और फूलता सर्वांग सम्पूर्ण या रसदार होता है। सविता इन्द्र का नाम है सविता सूर्य का नाम है और सविता आक का नाम है। "आक ओर इन्द्र एक ही अर्थ के देने वाले है।"

उपरोक्त वेद मत्र मे आये हुए "इन्द्र" शब्द के अर्थ "आक" करने के पश्चात् यह मालूम करना भी आवश्यक है कि "अपा फेन" क्या वस्तु है जिसके साथ इन्द्र नमुचिका सिर काटता है।

"अपा फेन" का अभिप्राय समझने के लिये अधिक झगडे मे पडने की आवश्यकता नही, इसका प्रसिद्ध नाम है "समुद्र–झाग" व्यर्थ की कथा कहानियो के आवरण उतारकर उपरोक्त वेद मत्र का यह अर्थ किया जा सकता है कि—

"आक समुद्र–झाग के साथ नमुचिका सिर कुचलता है या दूर करता है।"

नमुचि क्या पदार्थ है? अव केवल यह देखना अवशिष्ट है। सस्कृत के कोषो मे नमुचि एक असुर का नाम लिखा हुआ मिलता है, जिसको इन्द्र नामी देवताओ के राजा ने मारा था। इससे अधिक और कुछ पता नही चलता। नमुचि का शव्दार्थ क्या है यह किसी ने नही वताया। क्योकि इस शब्द के सामने आते ही सवसे पहिले राक्षस की ओर ध्यान जाता है। नमुचि के दो अर्थ होते है। (दो केवल इसीलिये कहा गया है कि, इस समय तक कोई तीसरा अर्थ विदित नही हो सका है। सम्भव है कि इसके और भी कई अर्थ हो सकते हो) "न–मुचि" इसके दो अर्थ एक ही अभिप्राय के देने वाले होते है। एक "न मुञ्चति' अर्थात् जो नही छोडता उसे "नमुचि" कहते है, दूसरे "न मुच्यते" जो छूटता नही वह भी 'नमुचि' कहलाता है। अर्थात् नमुचिका यह अर्थ हुवा 'जो नही छोडता" और 'जो नही छूटता"। इन दोनो बातो का एक ही अभिप्राय है कि जो दूर न हो सके, वह नमुचि है इस अर्थ से यह पता नही लगता, कि वह कौनसी बीमारी है जो दूर नही हो सकती। और कि जिसका नाम नमुचि है। वर्तमान आयुर्वेदिक ग्रन्थो मे किसी भी बीमारी का नाम नमुचि नही पाया जाता। हाँ ऐसे बहुत से रोग है, जो रोगो को नही छोडते, या रोगी से नही छूटते, उन सवको नमुचि कह सकते है। अर्थात् आयुर्वेद के वर्तमान ग्रन्थो मे जिन रोगो को असाध्य कहा गया है, उन सबका नाम "नमुचि" रखा जा सकता है।

परन्तु इस पर एक अत्यन्त मुख्य आक्षेप हो सकता है, वह यह कि यदि नमुचि उन रोगो का नाम है, जो असाध्य है, तो फिर आक और समुद्र–झाग से भी क्या दूर हो सकते है। यदि वह आक और समुद्र–झाग से दूर हो जाये, तो फिर इनको नमुचि या असाध्य नही कहा जा सकता। यह आक्षेप न केवल इसी स्थान पर हो सकता है, प्रत्युत आयुर्वेद मे बतलाये हुए बहुत से रोगो की चिकित्सा पर भी हो सकता है। जहाँ एक ओर तो किसी रोग को असाध्य वतलाया है दूसरी ओर उसकी चिकित्सा भी लिख दी है। इसका यह अभिप्राय भी हो सकता है कि, ससार मे कोई रोग असाध्य नही। हाँ, बहुत से रोग साधारणतया असाध्य कहलाते है। या

सामान्यतया वास्तव मे वे असाध्य होते है । परन्तु विशेप रूप से उनकी भी चिकित्सा हो सकती है । जिस सीमा तक उनकी चिकित्सा नही हो सकती उस सीमा तक उनको असाध्य या "नमुचि" कह सकते है । दृष्टान्त के लिये "मधुमेह" का नाम लिया जा सकता है । एक ओर तो इसे असाध्य कहा गया है, दूसरी ओर इसकी चिकित्सा वताई गई है, यह कहकर कि इस दवाई से रोग दूर हो जाता है । इन दोनो वातो मे धरती और आकाश का अन्तर है । वस इस आक्षेप का जो न केवल इस मत्र पर भी किया जा सकता है, प्रत्युत आयुर्वेदिक वहुत से ग्रन्थो पर भी हो सकता है कि रोग असाध्य या नमुचि है तो इसका किसी भी दवाई और चिकित्सा से दूर होना सम्भव नही और कि यदि रोग दूर हो सकता है तो उसको नमुचि या असाध्य नही कह सकते । यही उत्तर हो सकता है कि आयुर्वेद या वेद की परिभापा मे नमुचि या असाध्य उसी रोग को कहा जाता है जो कि सामान्यतया अचिकित्स्य हो, जो रोग सामान्यतया अचिकित्स्य होते हैं ।

"इन्द्र" अर्थात् आक समुद्र भाग के साथ क्या इन सव रोगो को दूर कर सकता है कि जिनको असाध्य कहा गया है, या सामान्यतया अचिकित्स्य कहा गया है । इसका उत्तर वेद पर विश्वास रखते हुए यह दिया जा सकता है, कि हाँ आक और समुद्र-भाग (समुद्र फेन) से वह सव रोग दूर हो जाते है जिनको कि सामान्यतया असाध्य माना जा सकता है। यद्यपि अपनी अल्पशक्ति और निर्वलता के कारण यह न वतलाया जा सकता हो, कि किस किस रोग मे किस किस तरह इन दोनो वस्तुओ का उपयोग करने से लाभ होता है ।

ऊपर यह वतलाया जा चुका है कि नमुचि के दो अर्थ होते है । उनमे से एक यह वतलाया गया है कि, जो रोग नही छोडता या नही छूटता, या दूर नही होता या सामान्यतया असाध्य या अचिकित्स्य है उसे नमुचि कहते है। दूसरे नमुचि "नम्-उच्चि" के अर्थ है नीचा और ऊँचा । क्या नीचा और ऊँचा या नीचा या ऊँचा भी कोई एक वीमारी है ?"

मानव शरीर मे वहुत से ऐसे रोग उत्पन्न हो जाते है जो नीचे होते है और ऊँचे होते है और ऐसे भी रोग होते हैं जो नीचे और ऊँचे दोनो प्रकार के होते है शरीर के किसी भाग का अपनी वास्तविक दशा से नीचा या ऊँचा हो जाना भी नमुचि कहलाता है। रसौली शरीर की वास्तविक तह से ऊँची होती है आक इसे दूर करता है ।

ववासीर के मस्से शरीर की वास्तविक दशा से ऊँचे होते हैं, भगदर का फोडा शरीर मे ऊँचा या उभरा हुआ होता है । इसकी गहराई होती है। गहरे से गहरे व्रण और नाडी-व्रण (नासूर) ऊँचे से ऊँचे फोडे और मस्से, कण्ठमाला या गण्डमाला, कोठ, सूजन आदि रोग नमुचि होते हैं ।

उपरोक्त वेदमत्र मे एक शब्द "उदयवर्त्तय:" भी है, जिसका अर्थ कुचलना, मरोडना या अलग करना भी है। कोष मे इस शब्द के अर्थ बहुत से है तथा प्रकाश करना (फैलाना), विभाग करना, टुकडे करना, तोडना, फोडना आदि प्रकट करना ऊँचा करना, खीचना बलवान करना, बाँधना. रोकना छोडना, आदि, इन सब अर्थो को सामने रखते हुए इस वेद मत्र का यह अभिप्राय हो सकता है कि—

"आक समुद्रफेन (समुद्र–झाग) के साथ उपरोक्त नमुचि कहलाने वाले रोगो को, यदि दवे हुए हो, दृश्य न हो तो प्रकाशित करता है। यदि फैलाने की आवश्यकता हो तो फैलाता है, फोडता है, यदि व्रण गहरे हो तो भरता है या ऊँचा करता है, यदि पीप आदि अदर हो तो वाहर की ओर खीचता है। यदि किसी अग में निर्वलता या अशक्ति हो, तो उसे दूर करता है। यदि ससर्गजन्य अर्थात एक से दूसरे मे आने वाला हो तो उसे भी रोकता है आदि।

"उदवर्त्तय." से मिलता–जुलता शब्द "उद्वर्त्तन" है जिसका बिगडकर "उबटन" बना है। इसके अर्थ भी मिलने के है इस शब्द का बिगडकर "बटना" बन गया है। इसका अभिप्राय मदोडना या बल देना भी होते है, किसी घास या छिलके के रेशे (तन्तु) को मदोडकर रस्सी बनाने को "बटना" कहते है। हाथ या अगुलियो से किसी दवाई को मदोडकर गोली बनाते है, सस्कृत मे उसे "बटी" या 'वटिका" कहते है। इसका भी अभिप्राय यह है अर्थात् जो बढकर या मदोडकर वनाई गई हो वह बटी वटी से वडी बन गया। वडियाँ मशहूर है। उडद की दाल मे पेठा आदि डालकर प्राय. अपने घरो मे वनाई जाती है। 'उद्वत्तेय" का अभिप्राय इसीलिये मदोडना या कुचलना किया गया है।

किसी के सख्त से सख्त फोडा हो, बद हो, या गिल्टी हो, भगन्दर हो या बवासीर के मस्से हो, रसौली हो या कण्ठमाला हो, आक और समुद्र झाग के लगाने से फूट जाते है या कुचले जाते है। यदि घाव या नासूर गहरे हो तो भर जाते हे। इन सब रोगो मे जो नमुचि शब्द के अन्दर आ सकते है आक और समुद्र–झाग का आन्तरिक तथा वाह्य रीति पर प्रयोग किया जा सकता है। इनके खाने से कुष्ठ, भगन्दर, गण्डमाला, अर्श, वल, श्लीपद, फोडे, नासूर, सूजन, दाद, चम्बल आदि वहुत से रोग दूर हो जाते है। विस्तार मे जाने की आवश्यकता नही।

चिकित्सकगण! इस खुले सकलन को पाकर पर्याप्त लाभ उठा सकते है। यदि समय मिला तो इस विषय पर इससे से अधिक लिखा जा सकता है।

—प० ध्वजारामजी वैद्य, पटियाला

ऋग्वेद में आयुर्वेद

युव ह स्थो भिषजा भेषजेभिरथो ह स्था रथ्या ३ राथ्येभिः ।
अथो ह क्षत्रमधि धत्थ उग्रा यो वा हविष्मान्मनसा ददाश ॥ ६ ॥

—ऋ०वे०/१५७/६

पदार्थ—हे विद्यादि सद् गुणो मे व्याप्त सज्जनो ! तुम्ही रोग हरने वाले वैद्यो के साथ रोग दूर करने वाले हो । इसके अनन्तर निश्चय से रथ पहुँचाने वाले अश्वादिको के साथ रथ मे प्रवीण रथ वाले हो । इसके अनन्तर हे तीव्र स्वभाव वाले सज्जनो ! जो बहुदान युक्त जन तुम दोनो के लिये विज्ञान से देता है अर्थात् पदार्थो का अपर्ण करता है उसी के लिए राज्य को अधिकता से धारण करते हो ।

भावार्थ—जब मनुष्य विद्वान वैद्यो का सग करते हैं तब वैद्यक विद्या को प्राप्त होते हैं, जब शूरदाता होते है तब राज्य धारण कर और प्रशसित होकर निरन्तर सुखी होते है ।

इस सूक्त मे अश्वियो के गुणो का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सगति जाननी चाहिये ।

हिन्दी भाष्य : महर्षि दयानन्द

'Leeches are ye with medicines to heal us, and charioteer are ye with skill in driving,

Ye strong, give sawy to him, who brings oblation and with his heart pours out his gift to you"

या वो भेषजा मरुत शुचीनी या शतमा वृषणो या मयोभु ।
यानि मनुरवृणीता पिता नस्ता शञ्च योश्च रुद्रस्य वश्मि ॥ १३ ॥

—ऋ०वे० २/३३/१३

पदार्थ— हे वृष्टि कराने वाले विद्वानो ! जैसे मनुष्यो को और जिन शुद्ध वा जिन अतीव सुख करने वा जिन सुख की भावना देने वा जिन रोग निवारने वाली औषधो को तुम्हारे लिये वैद्यविद्या जानने वाला पिता स्वीकार करता है वह तुम्हारे और हमारे लिये न्याय करने और रुलाने वाले रोग की निवृत्ति के लिये और कल्याण की भावना के लिये होती वैसी मैं कामना करूँ ।

भावार्थ– मनुष्यो को चाहिये कि पिता और पितामहो तथा अध्यापक वा अन्य विद्वानो से प्रति रोग के निवारण के अर्थ औषधियो को जानकर अपने और दूसरो के रोगो को निवारण करके सबके लिये सुख की काक्षा करे ।

हिन्दी भाष्य : महर्षि दयानन्द

Of your pure medicines, O Potent Maruts those that are wholesomest and healthbestowing,

Those which our father Manu has selected, I crave from Rudra for our gain and Welfare

या ओपधी पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुग पुरा ।
मनै नु बभ्रूणामह शत धामानि सप्त च ॥ १ ॥

—ऋ०वे० १०/९७/१

पदार्थ– जो औषधियाँ पहले मनुष्य आदि से पुरातन वसन्त वर्षा और शरद् ऋतुओ मे उत्पन्न हुई है, मैं भिषग् निश्चय से बभ्रु वर्णवाली उन औपधियो के एक सौ सात नाम जन्म और स्थानो को जानता हूँ ।

भावार्थ– जो औषधियाँ मनुष्य आदि से पुरातन है और वसन्त, वर्षा और शरद् मे पैदा होने वाली है उन भूरे वर्ण के पत्तो वाली औषधियो के एक सौ सात नामो वाली, एक सो सात स्थानो मे होने वाली और शरीर के १०७ मर्मस्थानो पर प्रयुक्त की जाने वाली औषधियो को मैं भिषग् जानता हूँ ।

हिन्दी भाष्य महर्षि दयानन्द

Herbs that sprang up in time of gold, three ages earlier than the Gods,
Of these whose hue is broun; will I declare the hundred powers and seven

द्वाविमौ वातौ वात आ सिन्धोरा परावत ।
दक्ष ते अन्य आ वातु परान्यो वातु यद्रप ॥ २ ॥

—ऋ०वे० १०/१३७/२

पदार्थ– प्रत्यक्षभूत दो वायुये सिन्धु पर्यन्त और समुद्र से परे दूर प्रदेश पर्यन्त बहती है, हे साधक ! एक तो तेरे लिए बल को प्राप्त करावे और दूसरा जो खराबी है उसे दूर फेंकती है ।

भावार्थ– प्रत्यक्षभूत दो वायुये सिन्धु पर्यन्त और उसके दूर के प्रदेश पर्यन्त बहती है। हे मनुष्य एक तो तेरे लिए बल को प्राप्त कराती है और दूसरी खराबी को दूर फेंकती है।

हिन्दी भाष्य : महर्षि दयानन्द

Two several winds are blowing here, from Sindhu, from a distant land,
May one breathe energy to thee, the other blow disease away.

आ वात वाहि भेषज वि वात वाहि यद्रप ।
त्व हि विश्वभेषजो देवाना दूत ईयसे ।। ३ ।।

—ऋ०वे० १०/१३७/३

पदार्थ– वायु औषध को प्राप्त कराता है, जो खराबी है उसे वायु दूर करता है यह ही देवो का दूत हुआ सारी औषधियो के लिए निरन्तर बहता है ।

भावार्थ– वायु औषध को प्राप्त कराता और खराबी दूर करता हे, वह देवो का दूत है और सारी औषधियाँ उसमे है। इन गुणो वाला वह निरन्तर बहता है ।

हिन्दा भाष्य महर्षि दयानन्द

Hither, O Wind, blow healing balm, blow all disease away, thou wind,
For thou who hast all medicine comest as envoy of the Gods

आ त्वागम शन्तातिभिरथो अरिष्टतातिभि ।
दक्ष ते भद्रमाभार्षं परा यक्ष्म सुवामि ते ।। ४ ।।

—ऋ०वे० १०/१३७/४

पदार्थ– हे रोगी मनुष्य ! मै वैद्य तेरे पास सुखकर और अहिसाकर रक्षणो सहित आता हूँ, तेरे लिये कल्याणकारक, बल को वायु के द्वारा लाता हूँ और तेरे रोग को दूर करता हूँ ।

भावार्थ– हे रोगी मनुष्य ! तेरे पास मै वैद्य सुखकर और अहिंसाकर रक्षणो के साथ आता हूँ । तेरे लिए कल्याणकारक बल को वायु के द्वारा लाता हूँ और तेरे रोग को नष्ट करता हूँ ।

I am come nigh to thee with balms to give thee rest and keep thee safe
I bring thee blessed strength, I drive thy weakening malady away

त्रायन्तामिह देवास्त्रायता मरुता गणः ।
त्रायन्ता विश्वा भूतानि यथायमरपा असत् ।। ५ ।।

—ऋ०वे० १०/१३७/५

पदार्थ– इस लोक में सारी दिव्य शक्तियाँ सब की रक्षा करे, मरुतो का समूह सबकी रक्षा करे, समस्त भूत जात रक्षा करे जिससे यह हमारा शरीर आदि निर्दोष रहे ।

भावार्थ– इस लोक मे सभी दिव्य शक्तियाँ सबकी रक्षा करे, मरुतो का समूह सबकी रक्षा करे जिससे यह हमारा शरीर आदि निर्दोष रहे ।

Here let the Gods deliver him, the Maruts'band deliver him!
All things that be deliver him that he be freed from his disease.

आप इद्वा ऊ भेषजीरापो अमीवचातनीः ।
आप. सर्वस्य भेपजोस्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम् ।। ६ ।।

—ऋ०वे० १०/१३७/६

पदार्थ– जले निश्चय ही भेषज रूप है, जले रोग को दूर करने वाली है, जले सब प्राणियो की भेषजभूत है अत. वे तुझ रोगी का इलाज करे ।

भावार्थ– जले निश्चय ही भेपजभूत है । जले रोग को नष्ट करने वाली है, जले सभी प्राणियो की भेषजभूत है, अत. वे तुझ रोगी का इलाज करे ।

The waters have their healing power, the waters drive disease away.
The waters have a balm for all : let them make medicine for thee.

हस्ताभ्या दशशाखाभ्या जिह्वा वाचः पुरोगवी ।
अनामयित्नुभ्या त्वा ताभ्या त्वोप स्पृशामसि ।। ७ ।।

—ऋ०वे० १०/१३७/७

पदार्थ– दश अगुली वाले दोनो हाथो के साथ वाणी को आगे फेंकने वाली जीभ है। नीरोगता उत्पन्न करने वाले उन दोनो हाथो से तुझ को हे रोगी मनुष्य ! स्पर्श करते है।

भावार्थ– दश अगुलियो वाले दोनो हस्तो के साथ वाणी को आगे फैकने वाली जीभ है। नीरोगता देने वाले उन दोनो हाथो से, हे रोगी जनो ! तुझ को हम स्पर्श करते है।

The tongue that leads the voice precedes, Then with our ten-fold branching hands.

With these two chasers of disease we stroke thee a gentle touch

ब्रह्मणाऽग्निः सविदानो रक्षोहा बाधताभितः ।

अमीवा यस्ते गर्भं दुर्णामा योनिमाशये ।। १ ।।

—ऋ०वे० १०/१६२/१

पदार्थ– वेद द्वारा प्रतिपादित ज्ञान और उपाय से युक्त कृमिनाशक आग्नेय गुण वाली अथवा अग्नि नाम की औषधि अथवा विद्युत् इस शरीर से रोग को दूर करे जो दुर्णामा नामक अमीवा नामक रोग कृमि हे स्त्री ! तरे गर्भ और गर्भस्थान मे स्थान प्राप्त किये है ।

भावार्थ– वेद द्वारा प्रतिपादित ज्ञान और प्रयोग की विधि से युक्त कृमिनाशक अग्नि गुणो वाली औषधि इस शरीर से रोग को दूर करे । जो दुर्णामा नामक और अमीवा नामक रोगजन्तु हे स्त्री ! तेरे गर्भ और गर्भस्थान मे स्थान किये है उसे यह आग्नेय औषधि दूर करे ।

May Agni, yielding to our prayer, the Rakshas-slayer, drive away
The malady of evil name that hath beset thy labouring womb,

यस्ते गर्भममीवा दुर्णामा योनिमाशये ।

अग्निष्ट ब्रह्मणा सह निष्क्रव्यादमनीनशत् ।। २ ।।

—ऋ०वे० १०/१६२/२

पदार्थ– हे स्त्री ! तेरे गर्भ और योनि मे जो अमीवा कृमि और दुर्णामा कृमि स्थित है यह आग्नेय औषधि वेद प्रतिपादित प्रयोग के साथ उस कच्चा मास खाने वाले जन्तु का नि शेष रूप से नाश करे ।

भावार्थ– हे स्त्री ! तेरे गर्भ और गर्भस्थान मे जो अमीवा नामक और दुर्णामा नामक जतु स्थित है यह आग्नेय औषधि वेद प्रतिपादित प्रयोग के साथ उस कच्चे मास खाने वाले का नि शेष रूप से नाश करे ।

Agni concurring in the prayer, drive off the eater of thy flesh,
The malady of evil name that hath attacked thy babe and womb

यस्ते हन्ति पतयन्त निषत्स्नु य॰ सरीसृपम् ।
जातं यस्ते जिघासति तमितो नाशयामसि ॥ ३ ॥

—ऋ०वे० १०/१६२/३

पदार्थ– हे स्त्री ! जो तेरे गर्भाशय मे रेतस् रूप मे जाते हुए का नाश करता है, जो स्थित होते हुए गर्भ को नष्ट करता है, जो सर्पणशील गर्भ को नष्ट करता है, तेरे गर्भस्थ शिशु को जो मार देता है उसको इसमे से मै वैद्य नष्ट करता हूँ ।

भावार्थ– हे स्त्री ! जो तेरे गर्भाशय मे जाते रेतस् को नष्ट करता है, जो गर्भ रूप मे स्थित वीर्य को नष्ट करता है, जो चलते हुए गर्भ को नष्ट करता है, जो गर्भाशय मे बढे हुए शिशु को गर्भ मे ही नष्ट कर देता है उसको यहाँ से नष्ट करता हू ।

That which destroys the sinkung germ, the settled, moving embryo
That which will kill the babe at birth-even this will we drive far away.

यम्त ऊरू विहरत्यन्तरा दम्पती शये ।
योनि यो अन्तरारेलिह तमितो नाशयामसि ॥ ४ ॥

—ऋ०वे० १०/१६२/४

पदार्थ– हे स्त्री ! जो तेरे जाँघो के बीच मे घूमता है. तथा पति और पत्नी मे किसी एक के अन्तर देह मे रहता है तथा जो तेरी योनि के अन्दर रहकर गर्भ को चाट जाता है उसको यहाँ से दूर करे ।

भावार्थ– हे स्त्री ! जो तेरी जाँघो के मध्य मे रहता है तथा पति पत्नी मे किसी एक के शरीर मे रहता है और जो तेरी योनि के अन्दर रहकर गर्भ को चाट जाता है उसको हम यहाँ से नष्ट करते है ।

That whicn divides thy legs that it may lie between the married pair,
That penetrates and licks thy side-even this will we exterminate

याभि शचीभिर्वृषणा परावृज प्रान्ध श्रोण चक्षस एतवे कृथ ।
याभिर्वर्त्तिका ग्रसितामभुञ्चत ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ ८ ॥

—ऋ वे० १/११२,८

पदार्थ– हे सुख के वर्षानिहारे सभा और सेना के अधीशो ! तुम जिन रक्षा सम्बन्धी कामो और प्रजाओ से विरोध करने हारे अविद्यान्धकार युक्त वधिर के तुल्य वर्तमान पुरुष को विद्यायुक्त वाणी के प्रकाश के लिये शुभ विद्या प्राप्त होने को अच्छे प्रकार योग्य करो और जिन रक्षाओ से निगली हुई छोटी चिडिया के समान प्रजा को दु खो से छुडाओ उन्ही रक्षाओ से हम लोगो को अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये ।

भावार्थ– सभा और सेना के पति को योग्य है कि अपनी विद्या और धर्म के आश्रम से प्रजाओ मे विद्या और विनय का प्रचार करके अविद्या और अधर्म के निवारण से सब प्राणियो को अभयदान निरन्तर किया करे ।

Mightly ones, with what powers ye gave Paravrij aid what time ye made the blind and lame to see and walk ,

Where ye set at liberty the swallowed quail, -come hither unto us, O Asvins, with those aids

जुजुरुषो नासत्योत वव्रिं प्रामुञ्चत द्रापिमिव च्यवानात् ।
प्रातिरत जहितस्यायुर्दस्रादित्पतिमकृणुत कनीनाम् ।। १० ।।

—ऋ०वे० १/११६/१०

पदार्थ– हे राजधर्म की सभा के पति ! तुम दोनो भागे हुए से कवच के समान अच्छे विभाग करने वाले को भलीभाति दु ख से पृथक् करो और बुड्ढे विद्यावान शास्त्रज्ञ पढाने वाले से यौवनपन से तेज धारिणी ब्रह्मचारिणी कन्याओ को शिक्षा करो इस के अनन्तर नियत समय की प्राप्ति मे उन मे से एक एक ही का एक एक रक्षक पति करो । हे वैद्यो के समान प्राण देने हारो । त्यागी की आयुर्दा को अच्छे प्रकार पारलो पहुँचाओ ।

भावार्थ– राजपुरुष और उपदेश करने वालो का दु ख दूर करना चाहिये, विद्याओ मे प्रवृत्ति करते हुए कुमार और कुमारियो की रक्षा कर विद्या और अच्छी शिक्षा उनको दिलवाना चाहिये, बालकपन मे अर्थात् पच्चीस वर्ष के भीतर पुरुष और सोलह वर्ष के भीतर स्त्री के विवाह को रोक, इसके उपरान्त अड़तालीस वर्ष पर्यन्त पुरुष और चौबीस वर्ष पर्यन्त स्त्री का स्वयवर विवाह कराकर सबके आत्मा और शरीर के बल को पूर्ण करना चाहिये ।

Ye from the old Chayavana, O Nasatyas, stripped as'twere mail, the skin upon his body,

Lengthened his life when all had left him helpless, Dasras ! and made him lord of youthful maidens

चरित्र हि वेरिवाच्छेदि पर्णमाजा खेलस्य परितक्म्यायाम् ।
सद्यो जङ्‌धामायसी विश्पलायै धने हिते सर्तवे प्रत्यधत्तम् ।। १५ ।।

—ऋ०वे० १/११६/१५

पदार्थ– हे सभा सेनाधिपति ! तुम दोनो से सग्राम मे रात्रि मे शत्रु के खण्ड का स्वाभाविक चरित्र अर्थात् शत्रुजनो की अलग–अलग बनी हुई टोली–टोली की चालाकियाँ उडते हुए पक्षी का जैसे पख काटा जाय वैसे शीघ्र छिन्न–भिन्न की जाय तथा तुम सुख बढाने वाले सुवर्ण आदि धन के निमित्त प्रजाजनो को सुख पहुँचाने वाली नीति के लिये लोहे के विकार से बनी हुई जिससे कि मारते है उस को खाल को शत्रुओ पर जाने अर्थात् चढाई करने के लिये ही प्रत्यक्ष धारण करो।

भावार्थ– प्रजाजनो की पालना करने मे अत्यन्त चित्त दिये हुए भद्र राजा आदि जनो को चाहिये कि पखेरू के पखो के समान दुष्टो के चरित्र को युद्ध मे छिन्न–भिन्न करे । शस्त्र और अस्त्रो को धारण कर प्रजाजनो की पालना करे। क्योकि भो प्रजाजनो से कर लिया जाता है उस का बदला देना उन प्रजाजनो की रक्षा करना ही समझना चाहिये ।

When in the time of night, in khela's battle, a leg was served like a wild bird's pinion,

Straight ye gave Vishpala a leg of iron that she might move what time the conflict opened

शत मेपान् वृक्ये चक्षदानमृज्राश्व त पितान्ध चकार ।
तस्मा अक्षी नासत्या विचक्ष आधत्त दस्रा भिजजावनर्वन् ।। १६ ।।

—ऋ०वे० १/११६/१६

पदार्थ– जो वृकी अर्थात् चोर की स्त्री के लिये सैकडो ईर्ष्या करने वालो को देव वा जो ऐसा उपदेश करे और जो चोरो मे सूधे घोडो वाला हो उस स्पष्ट उपदेश करने वा सूधे घोडे वाले को प्रजाजनो की पालना करने हारा राजा जैसे अन्धा दु खी होवे वैसा दु खी करे। हे सत्य के साथ वर्ताव रखने और रोगो का विनाश करने वाले धर्मराज सभापति वैद्यजनो के

तुल्य वर्ताव रखने वालो । तुम दोनों जो अज्ञानी कुमार्ग मे चलने वाला व्यभिचारी और रोगी है उस अज्ञानी के लिये अनेकविध देखने को व्यवहार और परमार्थ विद्यारूपी आंखो को अच्छे प्रकार पोढी करो ।

भावार्थ– सभा के सहित राजा हिंसा करने वाले चोर, कपटी, छली मनुष्यों को कारागर मे अन्धो के समान रखकर और अपने उपदेश अर्थात् आज्ञा रूप शिक्षा और व्यवहार की शिक्षा से धर्मात्मा कर धर्म और विद्या मे प्रीति रखने वालो को उनकी प्रकृति के अनुकूल औषधि देकर उनको आरोग्य करे ।

His father robbed Rijrasva of his eye-sight who for the she-wolf slew a hundred wethers

Ye gave him eyes, Nasatyas Wonder-Workers, Physicians, that he saw with sight uninjured

अमाजुरश्चिद्भवथो युव भगोऽनाशोश्चिदवितारापमस्य चित् ।
अन्धस्य चिन्नासत्या कृशस्य चिद्युवामिदाहुर्भिषजा रुतस्य चित् ।। ३ ।।

—ऋ०वे० १०/३९/३

पदार्थ– हे वैद्य और वैज्ञानिक ! आप दोनो रोग से जीर्ण हुए का ऐश्वर्य वा प्रकाश होते हो, न खाने वाले अथात् अनशन करने वाले के रक्षक होते हो छोटे से छोटे व्यक्ति के भी रक्षक होते है, अन्धे के और दुर्बल हुए के रक्षक होते हो, हे सत्ताधारी ! आप दोनो को ही रोगी औषधोपचार करने वाला विद्वज्जन कहते है ।

भावार्थ- हे वद्य वैज्ञानिक ! आप दोनो नासत्य = सत्यभूत एव सत्ता वाले हो । आप रोग से जीर्ण हुए की आशाकिरण अनशनकारी के रक्षक, छोटे से छोटे के रक्षक, अन्धे के रक्षक, और कृश के भी रक्षक है क्योकि इन सबका औषधोपचार आप करते हो । आप को रोग से पीडित का भिषक् कहा जाता है ।

Ye are the bliss of her who groweth old at home, and helpers of the slow although he linger last

Men call you too, Nasatyas healers of the blind, the thin and feeble, and the man with broken bones.

युव विप्रस्य जरणामुपेयुष: पुन॰ कलेरकृणुत युवद्वय॰ ।
युव वन्दनमृश्यदादुदूपथुर्यव सद्यो विश्पलामेतवे कृथ॰ ।। ८ ।।

—ऋ०वे० १०/३९/८

पदार्थ– हे वैद्य और वैज्ञानिक ! आप जरावस्था को प्राप्त हुए गणित करने वाले मेधावी मनुष्य को फिर युवावस्था की वय से युक्त कर देते हो, आप स्तुति करने वाले मनुष्य को व्याधि के खड्डे से दूर निकालते हो, आप प्रजा की रक्षा करने वाली राज्ञी वा स्त्री को तत्काल चलने और कार्य करने के लिये कर देते हो ।

भावार्थ– हे वैद्य और वैज्ञानिक ! आप जरावस्था को प्राप्त गणितज्ञ अथवा कलाविज्ञ मेधावी मनुप्य को युवावस्था से युक्त करते हो । स्तुति करने वाले भक्त मनुष्य को व्याधि के खड्डे से उवारते हो । राज्ञी वा प्रजा की रक्षा मे लगी स्त्री को चलने और कार्य करने की शक्ति देकर योग्य वना देते हो ।

Ye gave again the vigour of his youthful life to the sage Kali when old age was coming nigh.

Ye rescued Vandana and raised him from the pit, and in a moment gave Vishpala power to move

युव ह रेभ वृपणा गुहा हितमुदैरयत ममृवासमश्विना ।
युवमृबीसमृत तप्तमत्रय ओमन्वन्त चक्रथु सप्तवध्रये ।। ९ ।।

—ऋ०वे० १०/३९/९

पदार्थ– सुखो की वर्पा करने वाले हे वैद्य और वैज्ञानिक आप दोनो मस्तिष्क की गुफा मे छिपे हुए प्राणो का त्याग कराने वाले ज्वर आदि से होने वाली बकबक को निकालते हो, आप सप्त धातुओ के शरीर मे बधी हुई वाक् के लिए तप्त भी जलीय पदार्थ को रक्षात्मक=सुखदायी बनाते हो ।

भावार्थ– हे सुखो की वर्पा करने वाले वैद्य और वैज्ञानिक ! आप दोनो मस्तिष्क मे चढे हुए, प्राणघातक ज्वर आदि से उत्पन्न अधिक बोलने की प्रवृत्ति दूर करते हो और आप

सात धातुश्रो के बने शरीर मे वधी वाक् के लिए गर्म जलीय पदार्थ को सुखदायी बनाते हो। अर्थात् मस्तिष्क ज्वर और वाणी का इलाज करते हो।

Ye, Asvins Twain, endowed with mainly strength, brought forth Rebha when hidden in the cave and well-nigh dead,

Freed Saptavadhri, and for Atri caused the pit heated with fire to be a pleasant resting-place.

मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात्।
ग्राहिर्जग्राह यदि वैतदेन तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनम् ॥ १ ॥

—ऋ०वे० १०/१६१/१

पदार्थ– हे रोगिन्! तुझे मैं वैद्य सुखपूर्वक जीने के लिए औषधि अथवा हवन द्वारा अप्रकट यक्ष्मा रोग से और प्रकट तपेदिक से छुडाता हूँ, यदि शरीर को जकडने वाले रोग ने ग्रहण किया है तो इसको उससे भी इन्द्र=विद्युत् और अग्नि गुणो वाली औषधिये छुडावे।

भावार्थ– हे रोगिन्! तुझे मै वैद्य सुखपूर्वक जीने के लिए औषधि और यज्ञ की हवि के द्वारा प्रकट और अप्रकट तपेदिक से छुडाता हूँ। यदि शरीर को जकडने वाली व्याधि ने इसे पकडा है तो उससे भी विद्युत् और आग्नेय गुणो वाली औषधियाँ इसे मुक्त करे।

हिन्दी भाष्य महर्षि दयानन्द

Oh patient ! I am realising from you from the unknown disease Phthisis, and Raja Yakshma (King of Phthisis). Then you will live Oh Indra and Agni ! if the patient is under the influence of any evil planet, release him from such influence

यदि क्षितायुर्यदि वा परेतो यदि मृत्योरन्तिकं नीत एव।
तमा हरामि निर्ऋतेरुपस्थादस्पार्शमेनं शतशारदाय ॥ २ ॥

—ऋ०वे० १०/१६१/२

पदार्थ– यदि रोगी नष्ट जीवन शक्ति वाला हो गया है यदि अथवा सीमा से परे चला

गया है यदि मृत्यु के समीप पहुँच गया ही है तो भी उस रोगी को मैं वैद्य कष्टप्रद रोग के पजे से छुडा लाता हूँ । सौ शरद् ऋतुओ तक जीने के लिये इसको बलयुक्त करता हूँ ।

भावार्थ– यदि रोगी नष्ट जीवन शक्ति वाला हो गया है, अथवा यदि वह सीमा से परे चला गया है, यदि वह मृत्यु के समीप पहुँच गया है तो भी उस रोगी को मै भिषक् कष्टप्रद रोग के पजे से छुडा लाता हूँ और सौ शरद् ऋतुओ तक जीने के योग्य बना देता हूँ ।

हिन्दी भाष्य · महर्षि दयानन्द

Even if this patient's span of life is shortened, or even if he is dead or is in a moribund condition, still I am bringing him back to life from Nirriti, the God of death. I have so touched him that he will live one hundred years

सहस्राक्षेरा शतशारदेन शतायुपा हविर्पाहार्षमेनम् ।
शत यथेम शरदो नयातीन्द्रो विश्वस्य दुरितस्य पारम् ।। ३ ।।

—ऋ०वे० १०/१६१/३

पदार्थ– इस रोगी के लिये सहस्रो गुणो वाली सौ शरद् ऋतु तक जीवन देने मे समर्थ औपधि लाता और प्रयुक्त करता हूँ जिससे प्राण सौ शरद् ऋतुओ तक सारे दुरितो के पार पहुँचावे ।

भावार्थ– इस रोगी के लिये सहस्रो गुणो वाली सौ शरद् ऋतुओ तक जीवन देने वाली औपध को लाता और प्रयुक्त करता हूँ जिसस प्राण इसे सो शरद् ऋतुओ तक सारे रोगो से दूर रखे ।

हिन्दी भाष्य महर्षि दयानन्द

The oblation that I give, has one hundred eyes which grant one hundred years of life I have brought him back by such oblations May Indra protect him from all sins and grant him life for one hundred years

शत जीव शरदो वर्धमान शत हेमन्तान्छतमु सवन्तान् ।
शतमिन्द्राग्नो सविता बृहस्पति शतायुपा हविषेम पुनर्दु · ।। ४ ।।

—ऋ०वे० १०/१६१/४

पदार्थ– हे रोग मुक्त मनुष्य तू सौ शरद् ऋतुओ तक बढता हुआ जी, तु सौ हेमन्त ऋतुओ पर्यन्त, और सौ वसन्त ऋतुओ पर्यन्त जीवित रह, विद्युत् और अग्नि सूर्य, वायु सौ सम्वत्सर तक आयु सौ वर्ष तक जीवन देने मे समर्थ शक्ति के द्वारा इसको फिर दें ।

भावार्थ– रोग मुक्त यह मनुष्य वृद्धि को प्राप्त होता हुआ सौ शरद् ऋतुओ पर्यन्त जीव, सौ हेमन्त और सौ वसन्त ऋतुओ तक जीवे तथा विद्युत् अग्नि, सूर्य, वायु आदि सौ शरद् तक जीवन जीने मे समर्थ शक्ति के द्वारा इसे सौ शरद् ऋतु जीवन प्रदान करें ।

हिन्दी भाष्य : महर्षि दयानन्द

Oh patient ! live for one hundred autumns, one hundred winters with ease and happiness, and one hundred springs. May Indra, Agni, Savita and Brihaspati satisfied with the oblations, grant him life for one hundred years.

आहार्ष त्वाविद त्वा पुनरागा: पुनर्नव ।
सर्वाग सर्वं ते चक्षु सर्वमायुश्च तेऽविदम् ।। ३ ।।

—ऋ०वे० १०/१६२/५

पदार्थ– हे रोग मुक्त ! मै भिषग् तुझे रोग से दूर लाया हूँ, तुझको पुन प्राप्त किया हूँ, हे नये जीवन को धारण करने वाले तू फिर से लौटकर आया है, हे अगो से युक्त ! सारी तेरी इन्द्रियो को सारी तेरी आयु को भी तुझे प्राप्त कराता हूँ ।

भावार्थ– हे रोग युक्त ! मैं भिषग् तुझे नये सिरे से प्राप्त किया हूँ, तुझे रोग से दूर लाया हूँ । हे नवीन जीवन प्राप्त करने वाले । तु पुन लौटकर आया है । हे सभी अगो से युक्त ! मैंने तुझे सारी इन्द्रियाँ और सारी आयु प्राप्त कर दी है ।

हिन्दी भाष्य : महर्षि दयानन्द

Oh patient ! I have hold on you, I have brought you round, you have returned rehabilitated. I have recovered your limbs, eyes and entire life.

यजुर्वेद में आयुर्वेद

वेद मे औषधि एवं चिकित्सा-विज्ञान

वेद मे भुव शब्द अनेक स्थानो पर आता है। गायत्री मन्त्र जो गुरु मन्त्र नाम से प्रसिद्ध है उसमे "भू-भुव:-स्वः" ये तीन महाव्याहृतिया है। भुवः का अर्थ दुःखनाशक है। इससे ज्ञात होता है कि जो दु:ख हमे प्राप्त होते है उन दु:खो को भी दूर किया जाता है और उन दु:खो को दूर करने की शक्ति अवश्य कही है।

दु.खो को निम्न तीन श्रेणियो मे विभक्त किया जा सकता है—

(१) शारीरिक (आध्यात्मिक)–शरीर, इन्द्रिय, मन आदि से सम्बन्धित दु:ख, रोगादि।

(२) आधिभौतिक–प्राणियो से उत्पन्न दु ख।

(३) आधिदैविक–वाढ, अग्नि, आधी, भूकम्प आदि के दु ख, प्राकृतिक पदार्थों से उत्पन्न दु ख।

इन तीनो प्रकार की विपत्तियो से अनेक प्रकार के रोग भी होते है वे चाहे शारीरिक हो या मानसिक, एक व्यक्ति तक ही सीमित हो या देशव्यापी हो उनको दूर करने के लिए औषधि-विज्ञान की आवश्यकता पडती है। रोग का उपचार करने के लिए जो औषधि आदि का प्रयोग किया जाता है वह चिकित्सा-विज्ञान का ही अग है। वेद की "भुव शक्ति" —दु.ख नाशक शक्ति – सृष्टि के पदार्थो मे तथा उनसे उत्पन्न क्रियाओ मे विद्यमान है। वेद कहता है कि मैने तुम्हारे लिए इस सृष्टि के अन्दर दु खो को निवृत्त करने के लिए औषधियाँ दे रखी है, भेषज तत्त्व प्रदान किया है उसका तू ज्ञान प्राप्त कर और सुखी हो।

भेषज तत्त्व की सृष्टि में विद्यमानता

भेषजमसि भेषज गवेश्वाय पुरुषाय भेषजम्।
सुख मेषाय मेष्यै ॥

—यजु ३/५९

पदार्थ– हे जगदीश्वर! जो आप शरीर, अन्त करण, इन्द्रिय और गाय आदि पशुओ के रोग नाश करने वाले है अविद्यादि क्लेशो को दूर करने वाले है सो आप हम लोगो के

गौ आदि घोडा आदि सब मनुष्य मेढा और भेड आदि के लिये उत्तम–उत्तम सुखो को अच्छी प्रकार दीजिये ।

भावार्थ– किसी मनुष्य का परमेश्वर की उपासना के विना शरीर आत्मा और प्रजा का दु.ख दूर होकर सुख नही हो सकता इससे उसकी स्तुति प्रार्थना और उपासना आदि के करने और औषधियो के सेवन से शरीर आत्मा पुत्र मित्र और पशु आदि के दु खो को यत्न से निवृत्त करके सुखो को सिद्ध करना उचित है ।

इमा नु क भुवना सीषधामेन्द्रश्च विश्वे च देवा. ।
आदित्यैरिन्द्र. सगणो मरुद्भिरस्मभ्य भेषजा करत ।
यज्ञ च नस्तन्व च प्रजा चादित्यैरिन्द्र सह सीषधाति ।। ४६ ।।

—यजु· २५/४६

पदार्थ– हे मनुष्यो ! जैसे परमैश्वर्यवान् राजा और सब विद्वान् लोग भी इन समस्त लोको को धारण करते वैसे हम लोग सुख को शीघ्र सिद्ध करे वा जैसे अपने सहचारी आदि गणो के साथ वर्तमान सूर्य महीनो के साथ वर्तमान समस्त लोको को प्रकाशित करता वैसे मनुष्यो के साथ वैद्यजन हम लोगो के लिये औषधिया करे जैसे उत्तम विद्वानो क साथ परमैश्वर्यवान् सभापति हम लोगो के विद्वानो के सत्कार आदि उत्तम काम और शरीर और सन्तान आदि उत्तम काम और शरीर और सन्तान आदि को भी सिद्ध करे वैसे हम लोग सिद्ध करे ।

भावार्थ– जो मनुष्य सूर्य के तुल्य नियम से वर्त्ताव रखके शरीर को नीरोग और आत्मा को विद्वाव वना तथा पूर्ण ब्रह्मचर्य कर स्वयवर विधि से हृदय को प्यारी स्त्री स्वीकार कर उस मे सन्तानो को उत्पन्न कर और अच्छी शिक्षा देके विद्वान करते है वे धनपति होते है ।

अग्नि में भेषज गुण

ऋताषाड्ऋतधामाग्निर्गन्धर्वस्तस्यौषधयो ऽप्सरसो मुदो नाम ।
स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्य. स्वाहा ।। ३८ ।।

—यजु १८/३८

पदार्थ– हे मनुष्यो ! जो सत्य व्यवहार को सहने वाला जिसके ठहरने के लिये ठीक

ठीक स्थान है वह पृथ्वी को धारण करने हारा आग के समान है वह उस की औषधि जो कि जलो मे दौडती हैं वे जिन मे आनन्द होता है ऐसे नाम वाली हैं वह हम लोगो के इस ब्रह्म को जानने वालो के कुल और राज्य वा क्षत्रियो के कुल की रक्षा करे उसके लिये सत्य वाणी जिससे कि व्यवहारो को यथायोग्य वर्त्ताव मे लाता है और उन औषधियो के लिये सत्य क्रिया हो।

भावार्थ– जो मनुष्य अग्नि के समान दुष्ट शत्रुओ के कुल को दु खरूपी अग्नि मे जलाने वाला और औषधियो के समान आनन्द का करने वाला हो वही समस्त राज्य की रक्षा कर सकता है।

जलों में भेषज तत्त्व

वेद ने जल के भीतर भी भेषज गुण बताया है जैसा कि—

अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्तिष्वश्वा भवत वाजिन ।
देवीरापो यो व ऊर्मि प्रतूर्त्तिः ककुन्मान् वाजसास्तेनाय वाज्ँसेत् ।। ६ ।।
—यजु: ९/६

पदार्थ– हे दिव्यगुण वाली अन्तरिक्ष मे व्यापक स्त्री पुरुष लोगो ! तुम जो तुम्हारा सागर के प्रशस्त चचल गुणो से युक्त सग्रामो के सेवने के हेतु अतिशीघ्र चलने वाला समुद्र के आच्छादन करने हारे तरगो के समान पराक्रम और जो प्राण के मध्य मे मरणधर्मरहित कारण और जो जलो के मध्य अल्पमृत्यु से छुडाने वाला रोगनिवारक औषध के समान गुण है जिससे यह सेनापति सग्राम और अन्न का प्रबन्ध करे उस से उक्त प्राणो और जलो की गुण प्रशसाओ मे प्रशसित बल और पराक्रम वाले कुलीन घोडो के समान वेगवाले हूजिये ।

भावार्थ– स्त्रियो को चाहिये कि समुद्र के समान गम्भीर, जल के समान शान्त स्वभाव, वीर पुत्रो को उत्पन्न करने, नित्य औषधियो को सेवने और जलादि पदार्थों को ठीक–ठीक जानने वाली होवे । इसी प्रकार जो पुरुष वायु और जल के गुणो के वेत्ता पुरुषो से सयुक्त होते हैं वे रोगरहित होकर विजयकारी होते है।

आपो अस्मान् मातर. शुन्धयन्तु घृतेन नो घृतप्व पुनन्तु ।
विश्व हि रिप्र प्रवहन्ति देवीरुदिदाभ्यः शुचिरा पूत एमि ।
दीक्षातपसोस्तनूरसि ता त्वा शिवा शग्मा परिदधे भद्र वर्ण पुष्यन् ।। २ ।।

पदार्थ– हे मनुष्यो ! जैसे अति सुन्दर प्राप्त होने योग्य रूप को पुष्ट करता हुआ मैं जो घृत को पवित्र करने दिव्यगुणयुक्त माता के समान पालन करने वाले जल व्यक्त वाणी को प्राप्त करने वा जानने योग्य सबको प्राप्त करते हैं, जिनसे विद्वान लोग हम मनुष्य लोगों के वाह्य देश को पवित्र करे और जो घृतवत् पुष्ट करने योग्य जल है जिनसे हम लोगो को सुखी कर सके उनसे जल पवित्र करे । जैसे मैं भी अच्छे प्रकार इन जलो से पवित्र तथा शुद्ध होकर ब्रह्मचर्य आदि उत्तम–उत्तम नियम सेवन से जो धर्मानुष्ठान के लिये शरीर है जिस कल्याणकारी सुखस्वरूप शरीर को प्राप्त होता और सब प्रकार धारण करता हूँ वैसे तुम लोग उस जल और उस अत्युत्तम शरीर को धारण करो ।

भावार्थ– मनुष्यो को उचित है कि जो सब सुखो को प्राप्त करने, प्राणों को धारण कराने तथा माता के समान पालन के हेतु जल है उनसे सब प्रकार पवित्र होके उनको शोध कर मनुष्यो को नित्य सेवन करने चाहिये जिससे सुन्दर वर्ण रोग–रहित शरीर को सम्पादन कर निरन्तर प्रयत्न के साथ धर्म का अनुष्ठान कर पुरुषार्थ से आनन्द भोगना चाहिये ।

एदमगन्म देवयजन पृथिव्या यत्र देवासोऽअनुपन्त विश्वे ।
ऋक्सामाभ्या सन्तरन्तो यजुर्भी रायस्पोपेण समिपा मदेम ।
इमाऽआप· शमु मे सन्तु देवी: । ओषधे त्रायस्व स्वधिते
मैन हिसीः ।। १ ।।

—यजु० ४/१

पदार्थ– हे विद्वन ! जैसे भूमि पर मनुष्य जन्म को प्राप्त होके जो यह विद्वानो का यजन पूजन वा उनके लिये दान है उसको प्राप्त होके जिस देश मे ऋग्वेद, सामवेद तथा यजुर्वेद के मत्रो मे कहे कर्म धन की पुष्टि उत्तम–उत्तम विद्या आदि की इच्छा वा अन्न आदि से दुखो के अत को प्राप्त होते हुए सब विद्वान हम लोग सुखो को प्राप्त हो सब प्रकार से सेवन करे सुखी रहे और भी मेरे सुनियम, विद्या उत्तम शिक्षा से सेवन किये हुए ये शुद्ध जल सुख देने वाले होते है वैसे वहाँ तू भी उन को प्राप्त हो सेवन और आनन्द कर । वे जल आदि पदार्थ भी तुझ को सुख कराने वाले होवे । जैसे सोमलता आदि औषधिगण सब रोगो से रक्षा करता है, वैसे तू भी हम लोगो की रक्षा करता हे, वैसे तू भी हम लोगो की रक्षा कर रोग नाश करने मे वज्र के समान होकर इस यजमान वा प्राणीमात्र को कभी मत मार।

भावार्थ– जैसे मनुष्य लोग ब्रह्मचर्य पूर्वक अग और उपनिषद् सहित चारो वेदो को पढकर औरो को पढा कर विद्या को प्रकाशित कर और विद्वान होके उत्तम कर्मो के अनुष्ठान

से सब प्राणियो को सुखी कर, वैसे ही इन विद्वानो को सत्कार कर इनसे वैदिक विद्या को प्राप्त होकर शरीर व आत्मा की पुष्टि से धन का अत्यन्त सचय करके सब मनुष्यो को आनन्दित होना चाहिये ।

स मा सृजामि पयास पृथिव्या. स मा सृजाम्याद्भिरोषधीभिः ।
सोऽह वाज सनेयमग्ने ।। ३५ ।।

—यजु० १८/३५

पदार्थ– हे रस विद्या के जानने हारे विद्वान ! जो मैं पृथ्वी के रस के साथ अपने को मिलाता हूँ वा अच्छे शुद्ध जल और सामलता आदि औषधियो के साथ अपने को मिलाता हूँ सौ मै अन्न का सेवन करू इसी प्रकार तू भी आचरण कर ।

भावार्थ– हे मनुष्यो ! जैसे मै वैद्यक शास्त्र की रीति से अन्न और पान आदि को करके सुखी होला हूँ वैसे तुम लोग भी प्रयत्न किया करो ।

देवा यज्ञमतन्वत भेषज भिषजाश्विना ।
वाचा सरस्वती भिषगिन्द्रायेन्द्रियाणि दधतः ।। १२ ।।

—यजु० १६/१२

पदार्थ– हे मनुष्यो ! जैसे उत्तम प्रकार विपय ग्राहक नेत्र आदि इन्द्रियो वा धनो को धारण करते हुए चिकित्सा आदि वैद्यक शास्त्र के अगो को जानने हारी प्रशस्त वैद्यक शास्त्र के ज्ञान से युक्त विदुषी स्त्री और आयुर्वेद के जानने हारे औषध विद्या मे व्याप्त बुद्धि दो उत्तम विद्वान वैद्य ये तीनो और उत्तम ज्ञानीजन वाणी से परमैश्वर्य के लिये रोग विनाशक औषधरूप सुख देने वाले यज्ञ को विस्तृत करे वैसे ही तुम लोग भी करो ।

भावार्थ– जब तक मनुष्य लोग पथ्य औषधि और ब्रह्मचर्य के सेवन से शरीर के आरोग्य, वल और बुद्धि को नही वढाते तब तक सब सुखो के प्राप्त होने को समर्थ नही होते ।

अश्विना भेषज मधु भेपज न सरस्वती ।
इन्द्रे त्वष्टा यश श्रिय रूप रूपमधु सुते ।। ६४ ।।

—यजु० २०/६४

पदार्थ– हमारे लिये विद्या सिखाने वाले अध्यापकोपदेशक विदुषी शिक्षा पाई हुई माता और सूक्ष्मता करने वाला ये विद्वान लोग उत्पन्न हुए परमैश्वर्य मे सामान्य और मधुरादि गुणयुक्त औषध कीर्त्ति लक्ष्मी और रूप रूप को धारण करने को समर्थ होवे ।

भावार्थ– जब मनुष्य लोग ऐश्वर्य को प्राप्त होवे तब इन उत्तम औषधियो कीर्त्ति और उत्तम शोभा को सिद्ध करे ।

यमश्विना सरस्वती हविषेन्द्रमवर्द्धयन् ।
स बिभेद बल मघ नमुचावासुरे सचा ॥ ६८ ॥

—यजु० २०/६८

पदार्थ– सयोग किये हुए अध्यापक और उपदेशक तथा विदुषी स्त्री नाशरहित कारण से उत्पन्न मेघ मे होने के निमित्त घर मे अच्छी बनाई हुई ऐश्वर्य को बढाते वह परमपूज्य बल का भेदन करे ।

भावार्थ– जो औषधियो के रस की कर्तव्यता के गुणो से उत्तम करे वह रोग का नाश करने हारा होवे ।

होता यक्षदग्नि स्वाहाज्यस्य स्तोकाना स्वाहा मेदसा पृथक्
स्वाहा छागमश्विभ्या स्वाहा मेष सरस्वत्यै स्वाहाऽऋषभमिन्द्राय
सिहाय सहसऽइन्द्रिय स्वाहाग्नि न भेषज स्वाहा सोममिन्द्रिय
स्वाहेन्द्र सुत्रामाण सवितार वरुण भिषजा पति स्वाहा वनस्पति
प्रिय पाथो न भेषज स्वाहा देवाऽआज्यपा जुषाणोऽअग्निर्भेषज पय.
सोम: परिस्रुता घृत मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ४० ॥

—यजु० २१/४०

पदार्थ– हे देने हारे जन ! जैसे ग्रहण करने हारा प्राप्त होने योग्य घी की उत्तम क्रिया से वा स्वल्प स्निग्ध पदार्थो की अच्छे प्रकार रक्षण क्रिया मे अग्नि की भिन्न भिन्न उत्तम रीति से राज्य के स्वामी और पशु के पालन करने वालो से दुग्ध के छेदन करने को विज्ञान-युक्त वाणी के लिये उत्तम क्रिया से सेचन करने हारे को परमैश्वर्य के लिये परमोत्तम क्रिया से श्रेष्ठ पुरुषार्थ को बल और जो शत्रुओ के हननकर्ता उसके लिये उत्तम वाणी से धन को उत्तम क्रिया

से पावक के समान औषध सोमलतादि औषधिसमूह वा मन आदि इन्द्रियों को शान्ति आदि क्रिया और विद्या से अच्छे प्रकार रक्षक सेनापति को वैद्यो के पालन करने हारे ऐश्वर्य के कर्त्ता श्रेष्ठ पुरुष को निदान आदि विद्या से वनो के पालन करने हारे को उत्तम विद्या से प्रीति करने योग्य पालन करने वाले अन्न के समान उत्ताम औषध को संगत करे वा जैसे विज्ञान के पालन करने हारे विद्वान् लोग और चिकित्सा करने योग्य को सेवन करता हुआ पावक के समान तेजस्वी जन सगत करे वैसे जो चारो ओर से प्राप्त हुए रस के साथ दूध औषधियो का समूह घी सहत प्राप्त होवे उनके साथ वर्त्तमान तू घी का हवन किया कर ।

भावार्थ– जो मनुष्य विद्या, क्रियाकुशलता और प्रयत्न से अग्न्यादि विद्या को जान के गौर आदि पशुओ का अच्छे प्रकार पालन करके सब के उपकार को करते है वे वैद्य के समान प्रजा के दु ख के नाशक होते हैं ।

शमिता नो वनस्पति सविता प्रसुवन् भगम् ।
ककुप् छन्दऽइहेन्द्रिय वशा वेहद्वयो दधु. ॥ २१ ॥

—यजु० २१/२१

पदार्थ– हे मनुष्यो ! जो शान्ति देने हारा औषधियो का राजा वा वृक्षों का पालक सूर्य धन को उत्पन्न करता हुआ ककुप् छन्द और जीव के चिन्ह को तथा जिसके सन्तान नही हुआ और जो गर्भ को गिराती है वह इस जगत् मे हमारे प्राप्त होने योग्य वस्तु को धारण करे उस को तुम लोग जान के उपकार करो ।

भावार्थ– जिस मनुष्य कि सर्वरोग की नाशक औषधियां और ढाकने वाले उत्ताम वस्त्र सेवन किये जाते है वह बहुत वर्षो तक जी सकता है ।

अपो देवीरुपसृज मधुमतीरयक्ष्माय प्रजाभ्य ।
तासामास्थानादुज्जिहतामोषधय. सुपिप्पला ॥ ३८ ॥

—यजु० ११/३८

पदार्थ– हे श्रेष्ठ वैद्य पुरुष ! आप प्रशसित मधुर आदि गुणयुक्त पवित्र जलो को उत्पन्न कीजिये जिससे उन जलो के आश्रय से सुन्दर फलो वाली सोमलता आदि औषधियो को रक्षा करने योग्य प्राणियो के यक्ष्मा आदि रोगो की निवृत्ति के लिये प्राप्त हूजिये ।

भावार्थ– राजा को चाहिये कि दो प्रकार के वैद्य रक्खे । एक तो सुगन्द आदि पदार्थो के होम से वायु वर्षा जल और औषधियो को शुद्ध करें । दूसरे श्रेष्ठ विद्वान वैद्य होकर निदान आदि के द्वारा सब प्राणियो को रोगरहित रक्खे । इस कर्म के बिना ससार मे सार्वजनिक सुख नही हो सकता ।

स्वाद्वी त्वा स्वादुना तीव्रा तीव्रेणामृताममृतेन मधुमतीम्मधुमता
सृजामि स सोमेन सोमोऽस्यश्विभ्या पच्यस्व सरस्वत्यै पच्यस्वेन्द्राय
सुत्राम्णे पच्यस्व ।। १ ।।

—यजु० १९/१

पदार्थ– हे वैद्यराज ! जो तू सोम के सदृश ऐश्वर्ययुक्त है उस तुझ को औषधियो की विद्या मे अच्छे प्रकार उत्तम शिक्षायुक्त करता हूँ जैसे मैं जिस मधुर रसादि के साथ सुस्वादयुक्त शीघ्रकारी तीक्ष्ण स्वभाव सहित तीक्ष्ण स्वभावयुक्त को सर्वरोगापहारी गुण के साथ नाशरहित स्वादिष्ट गुणयुक्त सोमलता आदि से प्रशस्त मीठे गुणो से युक्त औषधि को सम्यक् सिद्ध करता हूँ वैसे तू इस को विद्यायुक्त स्त्री के अर्थ पका सब को दु ख से अच्छे प्रकार बचाने वाले ऐश्वर्ययुक्त पुरुष के लिये पका ।

भावार्थ– मनुष्यो को योग्य है कि वैद्यकशास्त्र की रीति से अनेक मधुरादि प्रशसित स्वादयुक्त अत्युत्तम औषधो को सिद्ध कर उनके सेवन से आरोग्य को प्राप्त होकर धर्मार्थकाम मोक्ष की सिद्धि के लिये निरन्तर प्रयत्न किया करे ।

परीतो षिञ्चता सुत सोमो य उत्तम हवि ।
दधन्वान् यो नर्योऽअप्स्वन्तरा सुषाव सोममद्रिभि ।। २ ।।

—यजु० १९/२

हे मनुष्य लोगो ! जो उत्तम श्रेष्ठ खाने योग्य अन्न को प्रेरणा करने हारा विद्वान प्राप्त होवे जो मनुष्यो मे उत्तम धारण करता हुआ जलो के मध्य मे सिद्ध करे उस मेघो मे उत्पन्न हुए औषधिगण को तुम लोग सब ओर सीच के बढाओ ।

भावार्थ– मनुष्यो के योग्य है कि उत्तम ओषधियो को जल मे डाल मथन कर सार रस को निकाल इससे यथायोग्य जाठराग्नि को सेवन करके बल और आरोग्यता को बढाया करें ।

सहस्व मेऽअराती॑ सहस्व पृतनायत. ।
सहस्व सर्व पाप्मान सहमानास्योषधे ।। ९९ ।।

—यजु० १२/९९

पदार्थ– औपधि के सदृश औषधि विद्या को जानने हारी स्त्री ! जैसे औषधि बल का निमित्त है मेरे रोगो का निवारण करके बल बढाती है वैसे शत्रुओ को सहन कर अपने लिये सेना युद्ध की इच्छा करते हुओ को सहन कर और सब रोगादि को सहन कर ।

भावार्थ– मनुष्यो को चाहिये कि औपधियो के सेवन से बल बढा और प्रजा के तथा अपने शत्रुओ और पापीजनो को वश मे करके सब प्राणियो को सुखी करे ।

या ओषधी पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुग पुरा ।
मनै नु बभ्रणामह शत धामानि सप्त च ।। ७५ ।।

—यजु० १२/७५

पदार्थ– मैं जो सोमलता आदि औपधी पृथ्वी आदि से तीन वर्ष पहिले पूर्ण सुखदान मे उत्तम प्रसिद्ध हुई, जो धारण करने हारे रोगियो के सौ और सात जन्म वा नाडियो के मर्मो मे व्याप्त होती है उनको शीघ्र जानू ।

भावार्थ– मनुष्यो को योग्य है कि जो पृथ्वी और जल मे ओषधि उत्पन्न होती है उन तीन वर्ष के पीछे ठीक–ठीक पकी हुई को ग्रहण कर वैद्यकशास्त्र के अनुकूल विधान मे सेवन करे । सेवन की हुई वे औपधि शरीर के सब अशो मे व्यापत हो के शरीर के रोगो को छुडा सुखो को शीघ्र करती है ।

यत्रौपधी॑ समग्मत राजान समिताविव ।
विप्र सऽउच्यते भिषग्रक्षोहामीवचातन ।। ८० ।।

—यजु० १२/८०

पदार्थ– हे मनुष्यो ! तुम लोग जिन स्थलो मे सोमलता आदि औषधि होती हो उनको जैसे राजधर्म से युक्त वीर पुरुप युद्ध मे शत्रुओ को प्राप्त होते है वैसे प्राप्त होओ, जो दुष्ट रोगो का नाशक रोगो को निवृत्ति करने वाला बुद्धिमान वैद्य हो वह तुम्हारे प्रति औषधियो के गुणो का उपदेश करे और औषधियो का तथा उस वैद्य का सेवन करो ।

भावार्थ– जैसे सेनापति से शिक्षा को प्राप्त हुए राजा के वीर पुरुष अत्यन्त पुरुषार्थ से देशान्तर मे शत्रुओ को जीत के राज्य को प्राप्त होते हैं वैसे श्रेष्ठ वैद्य से शिक्षा को प्राप्त हुए तुम लोग औपधियो की विद्या को प्राप्त हो जिस शुद्ध देश मे औपधि हो वहाँ उन को जान के उपयोग मे लाओ और दूसरो के लिये भी बताओ ।

अश्वावती सोमावतीमूर्जयन्तीमुदोजसम् ।
आवित्सि सर्वाऽओपधीरस्माऽअरिप्टतातये ।। ८१ ।।

—यजु० १२/८१

पदार्थ– हे मनुष्यो ! तुम लोग जो तुम्हारी कार्य सिद्धि करने हारी माता के समान औपधि प्रसिद्धि है उस की सेवा के तुल्य सेवन की हुई औपधियो को जानने वाले होओ । चलने वाली नदियो के समान प्रत्युपकारो को सिद्ध करने वाले होओ । इसके अनन्तर जो क्रिया वा औपधि अथवा वैद्य रोग वढावे उस को छोडो ।

भावार्थ– हे मनुष्यो ! जैसे माता-पिता तुम्हारी सेवा करते है वैसे तुम भी उनकी सेवा करो । जो-जो काम रोगकारी हो उस उस को छोडो । इस प्रकार सेवन की हुई औपधि माता के समान प्राणियो को पुष्ट करती है ।

अति विश्वा: परिप्ठा स्तेनऽइव व्रजमक्रमु: ।
औपधी: प्राचुच्यवुर्यत्कि च तन्वो रप ।। ८४ ।।

—यजु० १२/८४

पदार्थ– हे मनुष्यो ! तुम लोग जो सब ओर मे स्थित सब सोमलता और जो आदि औपधि जैसे गौशाला को भित्ति फोड के चोर जावे वैसे पृथ्वी फोड के निकलती है जो कुछ शरीर का पापो के फल के समान रोगरूप दु ख है उस सब को नष्ट करती हैं उन औषधियो के युक्ति से सेवन करो ।

भावार्थ– जैसे गौओ के स्वामी से धमकाया हुआ चोर भित्ति को फाद के भागता है वैसे ही श्रेष्ठ औपधियो से ताडना किये रोग नष्ट होके भाग जाते है ।

यदिमा वाजयन्नहमोपधीर्हस्तऽआदधे ।
आत्मा यक्ष्मस्य नश्यति पुरा जीवगृभो यथा ।। ८५ ।।

—यजु० १२/८५

पदार्थ– हे मनुष्यों ! जिस प्रकार पूर्व प्राप्त करता हुआ मैं जो इन औषधियों को हाथ मे धारण करता हूँ जिन से जीव के ग्राहक व्याधि और क्षयी राजरोग का मूल तत्त्व नष्ट हो जाता है । उन औषधियो को श्रेष्ठ युक्तियों से उपयोग मे लाओ ।

भावार्थ– मनुष्यो को चाहिये कि सुन्दर हस्तक्रिया से औषधियो को साधन कर ठीक-ठीक क्रम से उपयोग में ला और क्षयी आदि बडे रोगो को निवृत्त कर के नित्य आनन्द के लिये प्रयत्न करे ।

यस्यौषधी. प्रसर्पथाङ्गमङ्ग परुष्परुः ।
ततो यक्ष्म विबाधध्वऽउग्रो मध्यमशीरिव ॥ ८६ ॥

—यजु० १२/८६

पदार्थ– हे मनुष्यो ! तुम लोग जिसके सब अवयवो और मर्म मर्म के प्रति वर्त्तमान है उसके उस तीव्र क्षयी रोग को बीच के मर्मस्थानो को काटते हुए के समान विशेष कर निवृत्त कर उसके पश्चात् औषधियो को प्राप्त होओ ।

भावार्थ– जो मनुष्य लोग शास्त्र के अनुसार औषधियो को सेवन करे तो सब अवयवो से रोगो को निकाल के सुखी रहते है ।

शत वोऽअम्ब धामानि सहस्रमुत वो रुहः ।
अधा शतक्रत्वो यूयमिम मेऽअगद कृत ॥ ७६ ॥

—यजु० १२/७६

पदार्थ– हे सैकडो प्रकार की वुद्धि वा क्रियाओ से युक्त मनुष्यो ! तुम लोग जिन से सैकडो वा हजारो नाडियो के अकुर है उन औषधियो से मेरे इस शरीर को निरोग करो इसके पश्चात् आप अपने शरीरो को भी रोगरहित करो । जो तुम्हारे असख्य मर्म स्थान है उनको प्राप्त होओ । हे माता ! तू भी ऐसा आचरण कर ।

भावार्थ– मनुष्यो को चाहिये कि सब से पहिले औषधियो का सेवन, पथ्य का आचरण और नियमपूर्वक व्यवहार करके शरीर को रोगरहित करे क्योकि इसके बिना धर्म, अर्थ, और मोक्षो का अनुष्ठान करने को कोई भी समर्थ नही हो सकता ।

औषधी प्रतिमोदध्व पुष्पवतीः प्रसूवरी ।
अश्वाऽइव सजित्वरीर्वीरुधः पारयिष्ण्व. ॥ ७७ ॥

—यजु० १२/७७

पदार्थ– हे मनुष्यो ! तुम लोग घोडो के समान शरीरो के साथ सयुक्त रोगो को जीतने वाले सोमलता आदि दु खो से पार करने के योग्य प्रशसित पुष्पो से युक्त सुख देने हारी ओषधियो को प्राप्त होकर नित्य आनन्द भोगो ।

भावार्थ– जैसे घोडो पर चढे वीर पुरुष शत्रुओ को जीत विजय को प्राप्त होके आनन्द करते है वैसे श्रेष्ठ औषधियो के सेवन और पथ्याहार करने हारे जितेन्द्रिय मनुष्य रोगो से छूट आरोग्य को प्राप्त हो के नित्य आनन्द भोगते है।

ओषधीरिति मातरस्तद्वो देवीरुप ब्रुवे सनेयमश्व
गा वासऽआत्मान तव पुरूष ।। ७८ ।।

—यजु० १२/७८

पदार्थ– हे औषधियो के समान सुखदायक सुन्दर विदुषी माताओ ! मैं पुत्र तुम को श्रेष्ठ पथ्यरूप कर्म समीप स्थित होकर उपदेश करू । हे पुरुषार्थी श्रेष्ठ सन्तानो ! मैं माता तेरे घोडे आदि वा गौ आदि पृथ्वी आदि वस्त्र आदि वा घर और जीव को निरन्तर सेवन करू ।

भावार्थ– जैसे जौ आदि औषधि सेवन की हुई शरीरो को पुष्ट करती है वैसे ही माता विद्या, अच्छी शिक्षा और उपदेश से सन्तानो को पुष्ट करे । जो माता का धन है वह दाय भाग सन्तान का और जो सन्तान का है वह माता का । ऐसे सब परस्पर प्रीति से वर्त कर निरन्तर सुख को बढावे ।

अश्वत्थे वो निषदन पर्ण वो वसतिष्कृता ।
गोभाजऽइत् किलासथ यत् सनवथ पुरुषम् ।। ७९ ।।

—यजु० १२/७९

पदार्थ– हे मनुष्यो ! औषधियो के समान जिस कारण तुम्हारा कल रहे वा न रहे ऐसे शरीर मे निवास है। और तुम्हारा कमल के पत्ते पर जल के समान चलायमान ससार मे ईश्वर ने निवास किया है इससे पृथ्वी को सेवन करते हुए ही अन्न आदि से पूर्ण देह वाले पुरुष को औषधि देकर सेवन करो और सुख को प्राप्त होते हुए इस ससार मे रहो ।

भावार्थ– मनुष्यो को ऐसा विचारना चाहिये कि हमारे शरीर अनित्य और स्थिति चलायमान है, इस कारण शरीर को रोगो से बचाकर धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष का अनुष्ठान शीघ्र करके अनित्य साधनो से पत्ते, स्कन्ध और शाखा आदि से शोभित होते है वैसे ही रोगरहित शरीरो से शोभायमान हो ।

अन्या वोऽअ यामवत्वन्यान्यस्याऽउपावत ।
ता सर्वा. सविदानाऽइद मे प्रावता वच ।। ८८ ।।

—यजु० १२/८८

पदार्थ– हे स्त्रियो ! आपस मे सवाद करती हुई तुम लोग मेरे इस वचन को पालन करो उन औषधियो की दूसरी की रक्षा के समान समीप से रक्षा करो जैसे दूसरी की रक्षा करती है वैसे तुम लोगो को पढाने हारी स्त्री तुम्हारी रक्षा करे ।

भावार्थ– जैसे श्रेष्ठ नियम वाली स्त्री एक दूसरे की रक्षा करती है वैसे ही अनुकूलता से मिलाई हुई औषधि सब रोगो से रक्षा करती है । हे स्त्रियो ! तुम लोग औषधि विद्या के लिये परस्पर सवाद करो ।

या फलिनीर्याऽअफलाऽअपुष्पा याश्च पुष्पिणी ।
बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्व हस· ।। ८९ ।।

—यजु० १२/८९

पदार्थ– हे मनुष्यो ! जो बहुत फलो से युक्त जो फलो से रहित या फूलो से रहित और जो बहुत फूलो वाली वेदवाणी के स्वामी ईश्वर ने उत्पन्न की हुई औषधि हमको दु·खदायी रोग से जैसे छुडावे वे तुम लोगो को भी वैसे रोगो से छुडावे ।

भावार्थ– मनुष्यो को चाहिये कि जो ईश्वर ने सब प्राणियो की अधिक अवस्था और रोगो को निवृत्ति के लिये औषधि रची है उनसे वैद्यक शास्त्र मे कही हुई रीतियो से सब रोगो को निवृत्त कर और पापो से अलग रह कर धर्म मे नित्य प्रवृत्त रहे ।

याऽओषधी सोमराज्ञीर्विष्ठिता पृथिवीमनु ।
बृहस्पतिप्रसूताऽअस्यै सदत्त वीर्यम् ।। ९३ ।।

—यजु० १२/९३

पदार्थ– हे विवाहित पुरुष ! जो सोम जिनमे उत्तम है वे बडे कारण के रक्षक ईश्वर की रचना से उत्पन्न हुई औषधिया भूमि के ऊपर विशेषकर स्थित है उन से इस पत्नी के लिये बीज का दान दे । हे विद्वानो ! आप इन औषधियो का विज्ञान सब मनुष्यो के लिये अच्छे प्रकार दिया कीजिये ।

भावार्थ– स्त्री पुरुषो को उचित है कि बडी–बडी औषधियो का सेवन करके सुन्दर नियमो के साथ गर्भाधान करे और औषधियो का विज्ञान विद्वानो से सीखे ।

याश्चेदमुपशृण्वन्ति याश्च दूर परागता· ।
सर्वा सगत्य वीरुधोऽस्यै सदत्त वीर्यम् ।। ९४ ।।

—यजु० १२/९४

पदार्थ– हे विद्वानो ! आप लोग जो विदित हुई और जिनको सुनते है जो समीप हो और जो दूर देश मे प्राप्त हो सकती है उन सब वृक्ष आदि औषधियो को लोग जैसे सिद्ध करते है वैसे उन औषधियो का विज्ञान इस कन्या को सम्यक् प्रकार से दीजिये ।

भावार्थ- हे मनुष्यो ! तुम लोग, जो औषधियां दूर वा समीप मे रोगो को हरने और वल करने हारी सुनी जाती है उनको उपकार मे लाके रोगरहित होओ ।

मा वो रिषत् खनिता यस्मै चाह खनामि व ।
द्विपाच्चतुष्पादस्माक सर्वमस्त्वनातुरम् ।। ६५ ।।

—यजु० १२/६५

पदार्थ- हे मनुष्यो ! मै जिस प्रयोजन के लिये औषधि को उपाड़ता वा खोदता हूँ वह खोदी हुई तुम को न दु ख देवे जिस से तुम्हारे और हमारे दो पग वाले मनुष्य आदि तथा गौ आदि सब प्रजा उस औषधि से रोगो के दु खो से रहित होवे ।

भावार्थ- जो पुरुष जिस औषधियो को खोदे वह उनकी जड न मेटे जितना प्रयोजन हो उतनी लेकर नित्य रोगो को हटाता रहे, औषधियो की परम्परा को वढाता रहे कि जिस से सब प्राणी रोगो के दु खो से वच के सुखी होवे ।

त्वा गन्धर्वाऽअखनँस्त्वाभिन्द्रस्त्वा वृहस्पति: ।
त्वामोषधे सोमो राजा विद्वान् यक्ष्मादमुच्यत ।। ६८ ।।

—यजु० १२/६८

पदार्थ- हे मनुष्यो ! तुम लोग जिस औषधि से रोगी क्षयरोग से छूट जाय और जिस औषधि को उपयुक्त करो उसको ज्ञान विद्या मे कुशल पुरुष ग्रहण करे उसको परम ऐश्वर्य से युक्त मनुष्य उसको वेदज्ञजन और उसको सुन्दर गुणो से युक्त सव शास्त्रो का वेत्ता प्रकाशमान राजा उस औषधि को खोदे ।

भावार्थ- जो कोई औषधि जडो से, कोई शाखा आदि से, कोई पुष्पो कोई फलो और कोई सव अवयवो करके रोगो से वचाती है । उन औषधियो का सेवन मनुष्यो को यथावत् करना चाहिये ।

दीर्घायुस्तऽओषधे खनिता यस्मै च त्वा खनाम्यहम् ।
अथो त्व दीर्घायुर्भूत्वा शतवल्शा वि रोहतात् ।। १०० ।।

—यजु० १२/१००

पदार्थ- हे औषधि के तुल्य औषधियो के गुण दोष जानने हारे पुरुष ! जिस से तेरी जिस औषधि का सेवन करने हारा मै जिस प्रयोजन के लिये और जिस पुरुष के लिये खोदू उस से तू अधिक अवस्था वाला हो और वडी अवस्था वाला होकर तू जो वहुत अकुरो से युक्त औषध है उसको सेवन करके सुखी हो और प्रसिद्ध हो ।

भावार्थ- हे मनुष्यो ! तुम लोग औषधियो के सेवन से अधिक अवस्था वाले होओ और धर्म का आचरण करने हारे होकर सव मनुष्यो को औषधियो के सेवन से अधिक अवस्था वाले करो ।

अथर्ववेद में आयुर्वेद

यदान्त्रेपु गवीन्यो र्यद्वस्तावधि संश्रुतम् ।
एवा ते मूत्र मुच्यता बहिर्बालिति सर्वकम् ।। ६ ।।

—अथर्व० १/३/६

भा०–जो मूत्र गुर्दों मे स्थित नाडियों में और जो मूत्र को मूत्राशय तक पहुँचाने हारी "गविनी" नामक दो मूत्रवाहिनी नाडियो मे और जो वस्ति=मूत्राशय के भीतर स्थित सुना गया है वह हे रोगी ! तेरा मूत्र सब का सब इस प्रकार की चिकित्सा से बाहर "बाल्" इस प्रकार के शब्द के साथ छुट कर चला आवे और तू रोग से मुक्त हो जा।

भाषा भाष्य– प० जयदेव शर्मा, विद्यालंकार

GRIFFITH'S TRANSLATION–

Whatever hath gathered, as it flowed, in bowels. bladders, or in groins,

By this may I bring health unto thy body ; let the channels pour their burthen freely as gold.

WHITNEY'S TRANSLATION–

What in thine entrails, thy (two) groins (Gavinis), what in thy bladder has flowed together, So be thy urine released, out of thee with a splash, all of it,

प्रते भिनदभि मेहन वत्र वेशन्त्या इव। एवा० ।। ७ ।।

—अथर्व० १/३/७

भा०– हे मूत्रव्याधि से पीडित जन ! तेरी मूत्रनाडी को मैं चिकित्सक रुके हुए मूत्र को वाहर करने के लिये लोह शलाका द्वारा उसी प्रकार खोलता हूँ जिस प्रकार जल से भरे तालाब से बन्ध को तोड दिया जाता है। इस प्रकार तेरा सम्पूर्ण मूत्र "बाल्" शब्द सहित भरभराता हुआ बाहर आ जावे ।

भाषा भाष्य– प० जयदेव शर्मा. विद्यालंकार

GRIFFITH'S TRANSLATION–

I lay the passage open as one cleanses the dam that bars the lake :
Thus let the channels &c ,

WHITNEY'S TRANSLATION-

I split up thy urinator, like the weir of a tank
So be thy etc, etc.

विषित ते वस्तिविल समुद्रस्योदधेरिव । एवा० ॥ ८ ॥

—अथर्व० १/३/८

भा०– हे मूत्र रोग से पीडित पुरुष ! ज्वार के साथ उमड़ते हुए सागर का जल जिस प्रकार उठ कर नदियो मे बहने लगता है उसी प्रकार तेरा मूत्र कोष्ठ का छिद्र भी खुलकर मूत्र के निकलने योग्य हो जाये और इस प्रकार तेरा मूत्र 'वाल्" शब्द के सहित बाहर आ जाय।

भाषा भाष्य – प० जयदेव शर्मा, विद्यालकार

GRIFFITH'S TRANSLATION-

Now hath portal been unclosed as of the sea that holds the flood,
Thus let etc

WHITNEY'S TRANSLATION-

Unfastened (be) thy bladder-orifice, liKe that of water-holding sea.
So be thy etc.

यथेषुका परापतदवसृष्टाधि धन्वन ।
एवा ते मूत्र मुच्यता बहिर्वालिति सर्वकम् ॥ ९ ॥

—अथर्व० १/३/९

भा० धनुष से छूटा हुआ बाण जिस प्रकार दूर जा पड़ता है इसी प्रकार तेरा मूत्र भी सारा वस्ति भाग से छूट कर 'वाल्' शब्द सहित बाहर आ जाय।

भाषा भाष्य– प० जयदेव शर्मा विद्यालकार

GRIFFITH'S TRANSLATION-

Even as the arrow flies away when loosend from the archer's bow,
Thus let the burthen be discharged from channels that are checked no more

WHITNEY'S TRANSLATION-

As the arrow flew forth let loose from the bow – So be thy etc, etc

अमूर्या यन्ति योषितो हिरा लोहितवासस ।
अभ्रातर इव जामयस्तिष्ठन्तु हतवर्चस ॥ १ ॥

—अथर्व० १/१७/१

भा०— वे जो रक्त का जिन मे निवास है ऐसी नाडीया है, वे विवाहित स्त्रियों कीन्याई शरीर मे सदा गति करती रहे । परन्तु भर्त्ता रहित और इसीलिये नष्ट तेज वाली अविवाहित स्त्रियो की नाई स्थित रहे अर्थात अपने २ स्थान से विचलित न हो।

अर्थात् शरीर की नाडिया सदा गति करती रहे, उनमे रक्त बहता रहे और परमात्मा ने उन्हे जिस जिस स्थान मे स्थित किया है उस उस स्थान से विचलित न हो ।

भाषा भाष्य— प० जयदेव शर्मा, विद्यालंकार

GRIFFITH'S TRANSLATION—

Those maidens there, the veins, who run their course in robes of ruddy blues,

Must now stand quiet, reft of powers, like sisters who are brotherless.

WHITNEY'S TRANSLATION—

You women (Yosit) that go, veins with red garments, like brotherless sisters, (Jamı)—let them stop with their splendour smitten

तिष्ठाऽवरे तिष्ठऽपर उत त्व तिष्ठ मध्यमे ।
कनिष्ठिका च तिष्ठति तिष्ठादिद्धमनिर्महि ॥ २ ॥

—अ० वे० १/१७/२

भा०— हे शरीर के अधोभाग की नाडी ! तू भी अपने स्थान पर स्थिर रह । हे ऊर्ध्व शरीर की नाडी ! तू भी अपने स्थान पर रह । हे शरीर के मध्यभाग की नाडी ! तू भी अपने स्थान पर रह । और छोटी से छोटी नाडी इसी प्रकार अपने २ स्थान पर स्थित रहे और इसी प्रकार वडी से वडी धमनी आदि नाडी भी शरीर मे अपने नियत स्थान पर स्थित रहे ।

भाषा भाष्य— प० जयदेव शर्मा, विद्यालकार

GRIFFITH'S TRANSLATION—

Stay still, thou upper vein, stay still, thou lower, stay thou midmost one,
The smallest one of all stands still, let the great vessel e'en be still

WHITNEY'S TRANSLATION—

Stop, lower one ! stop upper one ! do thou too stop midmost one ! if smallest stops, shall stop for sooth the great tube (Dhamani)

शतस्य धमनीना सहस्रस्य हिराणाम् ।
अस्थुरिन्मध्यमा इमाः साकमन्ता अरसत ॥ ३ ॥

—अ० वे० १/१७/३

सैकडो स्थूल नाडियो और हजारो सूक्ष्म नाडियो के बीच के परिमाण की और ये अति सूक्ष्म नाडिया भी इस शरीर मे अपने २ स्थान मे स्थित रहे । ये सब एक साथ ही इस शरीर मे अपना कार्य करती रहे ।

भाषा भाष्य– प० जयदेव शर्मा. विद्यालकार

GRIFFITH'S TRANSLATION–

Among the thousand vessels charged with blood, among a thousand veins,
Even these the middlemost stand still and their extremities have rest

WHITNEY'S TRANSLATION–

Of the thousand tubes, of the thousand viens, have stopped for sooth.
These midmost ones the end have rested (ram) together.

परिव सिकतावती धनूर्वृहत्यऽक्रमीत् ।
तिष्ठतेलयता सु कम् ॥ ४ ॥

—अ० वे० १/१७/४

भा०– हे नाडियो ! तुम मे से ही एक धानुपाकार बडी रजोधर्म की नाडी गति कर रही है । तुम सब अपने २ स्थान पर रहो और सुख प्रदान करो, सुख की वृद्धि करो ।

भाषा भाष्य– प० जयदेव शर्मा, विद्यालंकार

(G) A mighty rampart built of sand hath circled and encompassed you ·
Be still and quietly take rest

(W) About you hath gone (Kram) a great gravelly sand-bank (Dhanu), stop (and) be quiet. I pray (Sukam)

अनुसूर्यमुदयता हृद्द्योतो हरिमा च ते ।
गोरोहितस्य वर्णेन तेन त्वा परि दध्मसि ॥ १ ॥

—अ० वे० १/२२/१

भा०– हे व्याधित पुरुष ! तेरा हृदय का चमकना और शरीर के चक्षु, नख आदि मे व्याप्त हरा वर्ण सूर्य के उदय होने के साथ ही उठ जाये, नाश हो जाये । सूर्य की किरण के लाल रग की किरण या सूर्य अथवा शाल्मली वृष के रोगनाशक गुण या पुष्प, फल, रस से तुझको पुष्ट करते है ।

इस मन्त्र मे सूर्य की रक्त वर्ण की किरणो को हृद्रोग या पाण्डुरोग के नाश करने के लिये प्रयोग करने का उपदेश है । लाल गौ का दूध पीना उसके लाल लोमो से छानकर पानी पीना तथा लाल गौओ का स्पर्श आदि इस रोग मे लाभकारी है । इसी प्रकार क्रोमियोलोजी या सूर्य किरण–वर्ण चिकित्सा के अनुसार भी हरित वर्ण या कामला और हृद्रोग के रोगी को सूर्य किरणो मे रखे लाल काच के पात्र मे धरे जल को पिलाने आदि का उपदेश है ।

भाषा भाष्य– प० जयदेव शर्मा, विद्यालंकार

(G) As the Sun rises let thy sore disease and yellowness depart
We compass and surround thee with the colour of a ruddy ox

(W) Let them (both) go up toward the sun, the heart-burn (dyota) and yellowness with the colour of the red bull, with that we enclose (paridha) thee.

परि त्वा रोहितैर्वर्णैर्दीर्घायुत्वाय दध्मसि ।
यथायमरपा असदथो अहरितो भुवत् ।। २ ।।

—अ० वे० १/२२/२

भा०– हे पाण्डु रोग मे पीडित पुरुष ! दीर्घ आयु प्राप्त कराने के लिये तेरे चारो ओर सूर्य की किरणो से लाल, या रोहित नाम वृक्षो के प्रकाश युक्त आवरणो या रसो से तुझे रखने, पुष्ट करते है । जिसमे यह तू रोगी पाप के फलरूप रोग से रहित हो जाये और जिससे तू हारिद्र या पाण्डु रोग से भी मुक्त हो जाये ।

भाषा भाष्य– प० जयदेव शर्मा, विद्यालंकार

(G) With ruddy hues we compass thee that thou mayest live a lengthened life !
So that this man be free form harm and cast his yellow tint away.

(W) With red colours we enclose thee. in order to length of life, that this man may be free from complaints (rapas), also may become not yellow

या रोहिणीदेवत्या ३ गावो या उत रोहिणी· ।
रूपरूप वयोवयस्ताभिष्ट्वा परि दध्मसि ।। ३ ।।

—अ० वे० १/२२/३

भा०— जो देव, प्रकाश स्वरूप सूर्य की प्रात कालिक रक्त वर्ण की किरणे है और लाल वर्ण की कपिला गाये हे या उगने वाली औषधिया है उनके भीतर विद्यमान कान्तिजनक दीप्ति को और दीर्घ आयुजनक दुग्ध आदि अन्न को प्राप्त करके उन द्वारा तुझको सब प्रकार मे परिपुष्ट करते और चिकित्सित करते है ।

(G) Devatyas that are red of hue, yea, and the ruddy coloured kine,
Each several from, each several age — with these we compass thee about

(W) They that have the red one for divinity, and the kine that are red form, aftet form, vigour (Vayas) after vigour with them we enclose thee

सुकेपु ते हरिमाण रोपणाकामु दध्मसि ।
अथो हारिद्रवेपु ते हरिमाण नि दध्मसि ।। ४ ।।

—अ० वे० १/२२/४

भा०— हे व्याधि पीडित पुरुप ! उत्तम सुख देने वाले कर्मो या शुक नाम वृक्षो मे और वृक्षो मे और घाव आदि दूर करके व्रण भरने वाली रोहिणी नामक औषधियो के भीतर ही तुझ रोगी को रखते है और तेरे पाण्डु रोग को भी रोग हारी द्रव पदार्थो मे रखते हे अथवा तेरे वलहारी हरिमा रोग को वलकारी औषधियो के वल पर हम रोकते है, वश करते है और इसी प्रकार तेरे रोग को कष्ट हारी रसो के वल पर दमन करते हे ।

सायण ने इस मन्त्र मे हारिद्र रोग को तोता, खुटवढई और हारिद्रव नामक पक्षियो मे लगा देने का अर्थ किया है वह नितरा असगत है । सूक्त का तात्विक अभिप्राय इस प्रकार है कि हृद्योत और हरिमा दो रोग है उनकी चिकित्सा के लिये सूर्य की रक्त वर्ण की किरणो के प्रयोग का और कुछ औपधि वर्ग का भी उपदेश है जिनमे गौ रोहित रोहिणी, सुक या शुक्र, रोपणका हारिद्रव ये शब्द चिकित्साकारक औपधि और उपायो के वाचक है । हृद्रोग के विपय मे वाग्भट अष्टाग सग्रह मे लिखते हैं कि 'पाच प्रकार का हृदय रोग होता है व तज, पितज, कफज, त्रिदोपज और कृमियो मे । इनके भिन्न २ लक्षण प्रकट होते हे । इसी प्रकार पाण्डु रोग का एक विकृत रूप हलीमक है । उसमे शरीर हरा नीला पीला हो जाता है । उसमे सिर मे चक्कर प्यास, निद्रानाश, अजीर्ण और ज्वर आदि दोप अधिक हो जाते है । इनकी

चिकित्सा मे रोहिणी और हारिद्रव और गोक्षीर का प्रयोग दर्शाया गया है। रोहित रोहिणी, रोपणाका, यह एक ही वर्ग प्रतीत होता है । हारिद्रव हल्दी और इसके समान अन्य गाठ वाली औषधियों का ग्रहण है। शुक भी एक वृक्ष वर्ग का वाचक है ।

शुक= शिरीष, स्थौणेयक और तालीश पत्र इसी प्रकार गन्धक, चक्रमर्दा स्योनाक, जम्बू, अर्क, दाडिम, शिग्रु और क्षीरी वृक्ष शुक वर्ग मे आते है । इनके गुण इस प्रकार है (१) शिरीष (वर्ण्य , कुष्टकण्डूघ्न:, त्वग्दोषश्वासकासहा) अर्थात् शरीर की त्वचा के रग, कोढ और खाज और त्वचा के दोष, सास, कास आदि का नाशक है। (२) स्थौणेयक कटुतिक्त, पित्त प्रकोपशमन, वल पुष्टिकारक । (३) तालीश पत्र तिक्तोष्ण कफतावघ्न, कास हिक्का क्षय, श्वास आदि का नाशक है । (४) गन्धक विषघ्न, कुष्ठ, कण्डू, खर्जू त्वचादोष का नाशक और जाठराग्नि वढाने वाला है । (४) चक्रमर्दा, कटु, उष्ण वातकफनाशक, कान्ति और सौकुमार्य करती है । (६) स्योनाक पित्त, श्लेष्म, आमवात, अतिसार, कास, अरुचि का नाशक है। (७) जम्बू रोहिणी शोषहर, कृमिदोपनाशक, श्रमपित्त, दाह, नाशक और श्वासकासहर है, (८) अर्कतिक्त, उष्ण, परम रक्तशोधक, कण्डू, व्रणहर, जन्तुनाशक, कुष्ट, प्लीहा, शोष, विसर्प, उदररोग और व्रण का विनाशक है । राजार्क, शुक्लार्क श्वेतमन्दार आदि भी इसके भेद है । इसे वेद मे सूर्य कहा है। (९) दाडिम कास वात कफ और पित्त का नाशक है । (१०) शिग्रु तिक्त, कटु, उष्ण, कफ, शोफ, वायुनाशक, क्रिमि, आम और विप का नाशक, विद्रधि, प्लीहा और गुल्म का नाशक है। (११) क्षीरी रुचिकर वातनाशक, पित्त, हृद्रोग नाशक, तर्पक, वृष्य और प्रमेहनाशक है । रोहिणी वर्ग मे जम्बू-रोहितक, रोहिण या वट, कटुक, काश्मर्य, मजिष्ठ, मासी और हरीतिकी ये वृक्ष है । सूर्य वर्ग मे अर्क, उपविष, क्षीरपर्णी, समस्त नक्षत्र वृक्ष, सुवर्चला, सूर्यकान्त, ऐन्द्री सूर्यादि दाह, आतप आदि पदार्थ है। इनके गुण ये है- (१) जम्बू पहले लिख आये, (२) रोहितक=शालमली विशेप । यकृत, प्लीहा, गुल्म, उदर, शोष नाशक, कटु और उष्ण विषवेगनाशक कृमिदोप, व्रण और नेत्र रोग का नाशक है । (३) कटुका-तिक्त, पित्तदोष नाशक, कटु, कफ, अरोचक और विषमज्वर, हृदयरोग का नाशक है। (४) काश्मर्य-तिक्त, गुरु, उष्ण, रक्तपित्त-नाशक, त्रिदोषनाशक, श्रम, दाह पीडा, ज्वर, तृष्णा और विष का नाशक, वृष्य, वलकारी, शोफनाशक । (५) मजिष्ठ-कपाय, उष्ण, कफ, उग्र व्रण, प्रमेह, रक्तपित्त, विष, और नेत्र रोगों का नाश करता है । (६) मासी स्वादु, कपाय, कास पित्त रक्तनाशक, विषनाशक, मारुत हृद्रोगनाशक वलकारी, त्वचा का कान्तिदायक, भूत और दाह का नाशक प्रसन्नता का उत्पादक । इसी का भेद गन्धमासी है वह भी रक्त पित्तनाशक, वर्णकारी, विप भूतज्वर आदि का नाशक है । इसी का भेद आकाशमासी जो शोफ, व्रण, नाडीरोग मकडी, गर्दभजालादि का नाशक है

श्रौर वर्णकारी है। (७) हरीतकी— आभा, चेतकी, पथ्या, पूतना और हरीतिकी इतनी भेदो वाली है। वह उदररोग, मूत्ररोग, प्रमेह, पथरी, वात, पित्त, कफ का नाशक है और जया नाम की हरीतकी गुल्मरोग, प्लीहा, रक्तातिसार और पित्त का नाशक है और हैमवती सर्व रोगनाशक नेत्ररोग नाशक है यही प्रमेह, कोढ, व्रण आदि का भी नाश करती है।

(१) सूर्य वर्ग मे अर्क के गुण पूर्व लिख दिये हैं (२) उपविष एक वर्ग है जिसमे अफूक, अर्क, करवीर, कलिकारी, काकादनी, धत्तूर और अतिविषा, शरभ और खद्योत ये औषधिया गिनी गई है।

नक्षत्र वृक्षो मे विषमुष्टी, स्थामली औदुम्बर, जम्बू, अगरु, वेगु, पिप्पल चम्पक, वट, पलाश, पायरी या प्लक्ष, जातो, बिल्व, अर्जुन, बबूल, नागपुष्प, मोच, रालवृक्ष, वेत, निचुल अर्क, शमी, कदम्ब, आम रिष्ट मोहवृक्ष इतनी वृक्षोपधिया है। क्षीरपर्णी अर्क को कहते हैं। सुवर्चला = आदित्यभक्ता, मण्डूकपर्णी आदित्यलता कहाती हैं जो कटु उष्णा स्फोटनाशनी है और त्वग् दोष, कण्डू, व्रण, कुष्ठ, भूतग्रह, उग्र शीत और ज्वर का नाश करती है। इसका एक भेद ब्राह्मी है। वह भी कुष्ठ, पाण्डु प्रमेह और रक्त का नाशक है। इसका एक भेद क्षुद्रपत्रा है, वह शोफनाशक है।

सूर्यकान्त के तीन भेद है– स्फटिक, सूर्यकान्त और वक्रान्त (बिल्लौर) इनमे स्फटिक–पित्त, दाह और पीडा का नाशक है। सूर्यकान्त–उष्ण निर्मल रसायन है और वातश्लेष्मनाशक है। वैक्रान्त मणि क्षय कुष्ठ और विष का नाशक पुष्टिप्रद और रसायन है।

ऐन्द्री वर्ग मे देवसर्षप और इलायची है। ऐन्द्री–कृमि, श्लेष्म और व्रण का नाशक है, वह सब उदररोगो को भी नाश करती है। सूर्यादि दाह और आतप कटु स्वभाव, रूक्ष है।

(G) To parrots and to starlings we transfer thy sickly yellowness :
Now in the yellow-coloured birds we lay this yellowness of thine

(W) In the parrots, in the ropanakas we put thy yellowness, likewise the haridravas we deposit thy yellowness

नक्त जाताऽस्योषधे रामे कृष्णे असिक्नि च।
इद रजनि रजय किलास पलित च यत् ॥ १ ॥

—अ० वे० १/२३/१

भा०— हे औषधे ! तू नक्त नामक औषधि रूप से उत्पन्न है। हे रामा नाम औषधे ! हे कृष्णा नामक औषधे ! हे असिक्नी नामक औषधे ! हे रजनीनामक औषधे ! यह जो किलास नामक कोढ और पलित नामक रोग है उसको नाश कर। इसको उत्तम वर्ण का कर दे।

(G) O Plant, thou sprangest up at night, dusky, dark coloured black in hue !
So, Rajani, re-colour thou these ashy spots, thi leprosy

(W) Night-born art thou, O herb, O dark black (and) dusky one C colourer (Rajani) do thour colour this leprous spot and what is pale (palita)

किलास च पलितं च निरितो नाशया पृषत्।
आ त्वा स्वो विशता वर्ण. परा शुक्लानि पातय ॥ २ ॥

—अ० वे० १/२३/२

भा०— हे औषधे ! इस रोग युक्त देह से किलास नामक कुष्ठ को और पलित नामक रोग को निर्मूल करके नाश कर दे और त्वचा से जल बहाने वाले और दर्द करने वाले रोग को भी नाश कर। हे रोगी ! तेरे शरीर को अपना पूर्व अर्थात् निरोग दशा का रूप प्राप्त हो और श्वेत कुष्ठ के चिन्हो और चालो को दूर भगा दे।

(G) Expel the leprosy, remove from him the spots and ashy hue,
Let thine own colour come to thee, drive far away the specks of white.

(W) The leprous spot, what is pale, do thou cause to disappear from hence, the speckled, let thine own colour enter thee, make white things (sukla) fly away.

असित ते प्रलयनमास्थानमसित तव।
असिक्न्यस्योषधे निरितो नाशया पृषत् ॥ ३ ॥

—अ० वे० १/२३/३

भा०— हे औषधे ! तेरा शरीर मे लीन हो जाने वाला गुण श्वेत रोग का नाशक है और तेरा चिपकने का गुण सित या श्वेत कुष्ठ का नाशक है। हे औषधे ! तू असिक्नी नाम वाली है इस शरीर से पीडाकारी या जल छोडने वाले विकृत या पृषत् अर्थात् श्वेत रग के कुष्ठ को सर्वथा नाश कर दे।

(G) Dark is the place of thy repose, dark is the place thou dwellest in:
Dusky and dark, O Plant, art thou · remove from him each speck and spot

(w) Dusky is thy hiding-place, dusky thy station (asthana) dusky art thou, O herb, make the speckled disappear from hence.

अस्थिजस्य किलासस्य तनूजस्य च यत् त्वचि ।
दूष्या कृतस्य ब्रह्मणा लक्ष्म श्वेतमनीनशम् ॥ ४ ॥

—अ० वे० १/२३/४

भा०— हड्डियो मे उत्पन्न होने वाले और त्वचा और अस्थि के बीच मास मे उत्पन्न होने वाले किलास नामक कुष्ठ को और जो कुष्ठ रोग त्वचा मे उत्पन्न हो गया है और शरीर के रक्त आदि मे विकार उत्पन्न करने वाले दूपी विष द्वारा उत्पन्न हुए कुष्ठ रोग को और शरीर की शोभा के नाशक कलकरूप श्वेतकुष्ठ को भी मैं उत्तम वैद्य 'ब्रह्मम" नामक औषधि से दूर करता हूँ ।

इस सूक्त मे नक्त, रामा कृष्णा असिक्नी और ब्रह्म ये नाम औषधिवाचक है । धन्वन्तरी के अनुसार इनका विवेक इस प्रकार है—

(१) "नक्त" नाम से कलिकारी, गुग्गुल, उलूक, प्रसहा, करज, फजी या भार्ङ्गी इन औषधियो का ग्रहण होता है ।

इनके गुण इस प्रकार है— (१) कलिकारी (नक्तेन्दुपुष्पिका) कफ, और वात का नाशक, सोज शल्य व्रण का नाशक, (२) गुग्गुल (=नक्त च) व्रण, प्रमेह और शोफ का नाशक । कण गुग्गुल और भूमि इसके दो भेद है । (३) उल्लू पक्षी के मासादि विसर्प कुष्ठ के नाशक है । (४) प्रसह वर्ग मे काक, गीध, उल्लू चील आदि पक्षिगण । (५) करज (नक्तमाल) या घृतकरज व्रण, प्लीहा और कृमिनाशक और सब त्वचा के दोषो को दूर करता है । उदकीर्य और अंगारवल्लिका इसी के भेद है जिनमे अगारवल्लिका भी कण्डू, विचर्चिका, कुष्ठ, त्वग्दोष, व्रण (नासूर) आदि का नाशक है । (६) फजी या भार्ङ्गी या ब्रह्मसुवर्चलाशोफ, व्रण, कृमि का नाश करती है । इसका दूसरा नाम ब्राह्मणयष्टि भी है ।

(२) रामा नाम मे आरामशीतला, गृहकन्या, रोचना, लक्ष्मणा, इनका ग्रहण होता है। है । जिनमे आरामशीतला दाहदोष, विस्फोट और व्रण का नाशक है और गृहकन्या या घृतकुमारी पित्त, कास श्वास और कुष्ठ का नाशक है । शेप भी कटु तिक्त होने से रक्तशोधक है।

(३) कृष्णा शब्द से काश्मर्य, कृष्णा तुलसी, कृष्णा मूली, कृष्णा नीलपुनर्भवा द्राक्षा और पिप्पली इन औषधियो का ग्रहण है। जिनमे से काश्मर्य (१/१२) सूक्त मे लिखा जा चुका है। इनमे से कृष्णा तुलसी जन्तु, भूत, कृमि आदि का नाशक है। नीलपुर्नवा हृद्रोग प्रदर, पाण्डु, सोज, श्वास वात आम आदि का नाशक है। पुनर्नवा और क्रूर ये दो भी इसी जाति के है। कृष्णा काला जीरा कफशोफनाशक है। पिप्पली रक्तशोधक है, ये सभी कटु और तिक्त उष्ण है।

(४) "असिक्नी" नामक औषध वर्तमान मे कोई प्रसिद्ध नही है तथापि असिक्नी यह "असि--कनी" असिशिम्बी प्रतीत होती है जो व्रण दोष नाशक है।

(५) "रजनी' शब्द से हरिद्रा, दारुहरिद्रा, उदकीर्य (करजभेद) रोचना, शिंशपा, वनवीजपुर, यूथिका, मूर्वा ये सभी औषधिया "पीता" कहाती हैं और इनका गुण त्वचादोष, कुष्ठ, कण्डू आदि को नाश करना है।

(६) 'ब्रह्ममन'— भार्ङ्गी, फाजी नामक औषधि ही ब्रह्मसुवर्चला या ब्राह्मणयष्टिनाम से कही गई है वही यहाँ "ब्रह्म' शब्द से लेनी उचित है।

(G) I with my spell have chased away the pallid sign of laprosy
Caused by infection, on the skin, sprung from the body, from the bones.

(W) Of the bone-born leprous spot, and of the body-born that is in the skin, of that made by the spoiler (dushi)-by incantation have I made the white (s'veta) mark disappear

सूपर्णो जात प्रथमस्तस्य त्व पित्तमासिथ।
तदासुरी युधा जिता रूप चक्र वनस्पतीन् ॥ १ ॥

—अ० वे० १/२४/१

भा०– सबसे श्रेष्ठ, प्रथम सुपर्ण नामक वनस्पति या सूर्य इस दोष का नाशक विद्यमान है। हे उपरोक्त रजनी औषधे ! तू उसके पित्त रस के समान उष्ण स्वभाव, बलशाली है। आसुरी नामक औषधि कूट–कूट कर अनुकूल वनाई जाकर नाना वनस्पतियो को भी उस ही सेवन करने योग्य उत्तम रूप का बना देती है। इसी से रजनी या हरिद्रा=दारुहल्दी का 'पित्ता" एक नाम है।

(G) First, before all, the strong-winged Bird was born, thou wast the gall thereof. Conquered in fight, the Asuri took then the shape and form of plants.

(W) The eagle (suparna) was born first, of it thou wast the gall, then the Asura-woman, conqured by fight (yudh), took shape as forest trees

आसुरी चक्रे प्रथमेद किलासभेपजमिद किलासनाशनम् ।
अनीनशत्किलास सरूपामकरत् त्वचम् ॥ २ ॥

—अ० वे० १/२४/२

भा०— आसुरी नामक औपधि सबसे श्रेष्ठ है । उसने ही यह किलास नामक कुष्ठ की चिकित्सा करती है । यह स्वय भी किलास का नाश करने हारी है । किलास=कुष्ठ रोग को नाश करती और त्वचा को सर्वत्र शरीर पर एक समान कान्तिवाली बना देती है ।

(G) The Asuri made, first of all, this medicine for leprosy, this banisher of leprosy, She banished of leprosy, and gave one general colour to the skin

(W) The Asura-woman first made this remedy for leprous spot, this effacer of leprous spot, it has made the leprous spot disappear, has made the skin uniform (sarupa)

सरूपा नाम ते माता सरूपो नाम ते पिता ।
सरूपकृत् त्वमोपधे सा सरूपमिद कृधि ॥ ३ ॥

—अ० वे० १/२४/३

भा०— हे औपधे ! तेरी उत्पत्ति–भूमि तेरे ही समान गुण वाली सरूपा" नामक है और तेरा उत्पादक बीज या पालक सूर्य भी "सरूप" नाम वाला है । हे ओषधे ! तू स्वय त्वचा का समान रूप बना देने हारी है, इसलिये इस दोपयुक्त कुष्ठी शरीर को भी समान सुन्दर रूप कर ।

(G) One-coloured is thy mother's name, One-coloured is thy father called : One-colour maker, Plant art thou . give thou one colour to this man

(W) Uniform by name is thy mother, uniform by name is thy father, uniform making art thou, O herb, (so) do thou make this uniform

श्यामा सरूपङ्करणी पृथिव्या अध्युदभृता ।
इदमूपु प्र साधय पुना रूपाणि कल्पय ।। ४ ।।

—अ० वे० १/२४/४

भा०— पूर्व मन्त्र मे कही औषधि ही श्यामा नाम वाली पृथिवी के ऊपर उत्पन्न और पुष्ट होती है। वह उत्तमरूप और समान त्वचा बना देती हे । हे श्यामे ! तू इस कुष्ठी शरीर मे अपना गुण दर्शा और वार २ नये २ रूप, नयी त्वचाए उत्पन्न कर ।

(G) Syama who gives one general hue was formed and fashioned from the earth: Further this work efficiently Restore the colours that were his.

(W) The swarthy, uniform-making one (is) brought up off the earth, do thou accomplish this, we pray, make the forms right again

अक्षीभ्या ते नासिकाभ्या कर्णाभ्या छुबुकादधि ।
यक्ष्म शीर्पण्यमस्तिष्काज्जिजह्वाया वि वृहामि ते ।। १ ।।

—अ० वे० २/३३/१

भा०— इस सूक्त मे समस्त शरीर के भिन्न २ अगो मे वैठे रोगो की चिकित्सा का उपदेश करते हैं। हे पुरुष ! मै वैद्य, आयुर्वेद का जानने हारा विद्वान तेरे आखो मे से दोनो नासिकाओ मे से और ठोडी मे से और तेरे शिर के भीतर भेजे अर्थात् मस्तिष्क भाग मे से और जीभ मे से और शिर मे वैठे रोग को दूर करता हूँ ।

(G) From both thy nostrils, from both eyes, from both thine ears, and from thy chin, Forth from thy brain and tongue I root Consumption seated in thy head.

(W) Forth from thy (two) eyes, (two) nostrils, (two) ears, chin, brain, tongue, I eject (vi-vru) for thee the yakshma of the head

ग्रीवाभ्यस्त उष्णिहाभ्य कीकसाभ्यो अनूक्याऽत ।
यक्ष्म दोषण्य१मसाभ्या बाहुभ्या वि वृहामि ते ।। १ ।।

—अ० वे० २/३३/२

भा०— तेरी गर्दन की नाडियो से ऊपर को स्नेहमय रस द्रव्य ले जाने वाली धमनियो से, जत्रु और वक्ष स्थल की हड्डियो से और अस्थियो के मिलाने वाले सधिभाग से और तेरे कन्धो और बाहुओ से और भुजाओ मे होने वाले रोग को दूर करता हूँ ।

(G) Forth from the neck and from the nape, from dorsal vertebrae and spine,
From arms and shoulder-blades I root Consumption seated in thine arms

(W) From thy neck (grivas), nape (ushnihas) vertebrae (Kikasa), back-bone, (two) shoulders. (two) fore-arms, I eject for thee the yakshma of the arms.

हृदयात् ते परि क्लोम्नो हलीक्ष्णात् पार्श्वाभ्याम् ।
यक्ष्मं मतस्नाभ्या प्लीह्नो यक्नस्ते वि वृहामसि ।। ३ ।।

—अ० वे० २/३३/३

भा०— तेरे हृदय से, हृदय के समीप के फेफडे से पित्तोत्पादक अग से, दोनो पासो पर लगे गुर्दो से, पिलही से और तेरे यकृत् अर्थात कलेजे मे हम रोग को दूर करते है ।

(G) Forth form thy heart & from thy lungs, from thy gallbladder & thy sides,
From kidneys, spleen, and liver thy Consumption we eradicate

(w) Forth from thy heart, lung (kloman), halikshna, (two) sides, (two) matasnas, spleen liver, we eject for thee the yakshma

आन्त्रेभ्यस्ते गुदाभ्यो वनिष्ठोरुदरादधि ।
यक्ष्म कुक्षिभ्या प्लाशेर्नाभ्या वि वृहामि ते ।। ४ ।।

—अ० वे० २/३३/४

भा०— तेरी आँतो से, गुदाओ से, स्थूल आँतो से, और उदर अर्थात् आमाशय से दोनो कोखो से, मलाशय से और तेरी नाभि से रोग को दूर करता हूँ ।

(G) From bowels and intestines, from the rectum and the belly, I
Extirpate thy Consumption, from flanks, navel, and mesentery

(W) Forth from thine entrails guts, rectum, belly, (two) paunches, plasi, navel, I eject for thee the yakshma

ऊरुभ्या ते अष्ठीवदभ्या पार्ष्णिभ्या प्रपदाभ्याम् ।
यक्ष्म भसद्य श्रोणिभ्या भासद भससो वि वृहामि ते ।। ५ ।।

—अ० वे० २/३३/५

भा०— तेरी उरू=जघाओ से, सख्त हड्डी वाले दोनो गोडो और एडियो से, पैर के

अगले भागो, पजो से तेरा यक्ष्म=रोग विनाश करता हूँ और इसी प्रकार दोनो कूल्हो से और कटिदेग मे उत्पन्न रोग को दूर करता हूँ और तेरे गुह्य=मूत्र मार्ग से गुह्य प्रदेश मे उत्पन्न रोग को भी दूर करता हूँ ।

(G) Forth from thy thighs & from thy knees, heels & the foreparts of thy feet, Forth from thy loins and hips, I draw Consumption settled in thy loins

(W) From thine two thighs, knees, heels, front feet, hips, fundament (bhansas), I eject for thee the yakshma of the rump

अस्थिभ्यस्ते मज्जभ्य. स्नावभ्यो धमनिभ्य· ।
यक्ष्म पाणिभ्यामङ्गुलिभ्यो नखेभ्यो वि वृहामि ते ।। ६ ।।

—अ० वे० २/३३/६

भा०– तेरी हड्डियो से, मज्जा भागो से, स्नायुओ से धमनी, रक्त–वाहिनी नाड़ियो से तेरे हाथो से अगुलियो से और तेरे नखो से रोग को दूर करता हूँ ।

(G) Forth from thy marrows and thy bones, forth from thy tendous and thy veins. I banish thy Consumption, from thy hands, thy fingers, and thy nails.

(W) From thy bones, marrows, vessels, (two) hands, fingers, nails, I eject for thee Yakshma

अङ्गे अङ्गे लोम्नि लोम्नि यस्ते पर्वणि पर्वणि ।
यक्ष्म त्वचस्यते वय कश्यपस्य विवर्हेण विष्वञ्च वि वृहामसि ।। ७ ।।

—अ० वे० २/३३/७

भा०– तेरे अग २ मे और रोम रोम मे और पोरु २ मे तेरी त्वचा के भीतर बैठे, सब देह मे बैठे रोग को रोग के मूल कारण और दूर करने के सत् उपायो को देखने हारे ज्ञानी पुरुष के उपदेश किये हुए नाना प्रकार के रोग विनाशक उपाय से हम दूर करते है ।

(G) In every member, every hair, in every joint wherein it lies, We with exorcising spell of Kasyapa drive far away Consumption settled in thy skin

(W) What Yakshma is in thine every limb, every hair, every joint-the Yakshma of thy skin do we, with Kasyapa's ejector (vibruha) eject away (visvan).

या बभ्रवो याश्च शुक्रा रोहिणीरुत पृश्नय ।
आसिक्नी. कृष्णा औपधी सर्वा अच्छावदामसि ।। १ ।।

—अ० वे० ८/७/१

भा०– जो औषधिया पुष्टिकारक, मास वढाने वाली और जो शुक्र, वीर्यवर्धक रोहणी अर्थात् क्षत आदि को भरने वाली, उत रस पोपण करने वाली, श्याम रग की कृष्ण वर्ण की या विलेखन करने वाली औपधिये है उन सवका हम भली प्रकार उपदेश करते हैं। अथवा भूरे रग की श्वेत रग की पुष्टिकारी चित्र वर्ण की फलियो वाली काली रग की इत्यादि औपधियो को हम उपदेश करते है ।

(G) The tawny-coloured and the pale, the variegated and the red
The dusky tinted and the black, all plants we summon hitherward,

(W) Those that are brown and that are bright (sukra) the red and the spotted, the swarthy, the black herbs— all (of them) do we address (acha-avad).

त्रायन्तामिम पुरुप यक्ष्माद् देवेपितादधि ।
यासा द्यौष्पिता पृथिवी माता समुद्रो मूल वीरुधा वभूव ।। २ ।।

—अ० वे० ८/७/२

भा०– जिन लताओ या वृक्ष वनस्पति आदि औपधियो का सूर्य पालक है अर्थात् जिनकी धूप लगने से रक्षा होती है, पृथ्वी माता है अर्थात् जो पृथ्वी से रस और पुष्टि प्राप्त करती है और मेघ ही उत्पन्न होने के कारण है अर्थात् वर्षाकाल मे वर्पा के जल से जो उत्पन्न होती हैं वे औषधियाँ इस पुरुप की विपय क्रिडा द्वारा प्राप्त हुए रोग से या देव= मेघ या वर्पा काल मे उत्पन्न राजयक्ष्मा रोग से रक्षा करे ।

(G) This man let them deliver from Consumption which the gods have sent
The father of these herbs was Heaven their mother earth, the sea their root
A. V 8/7/2

(W) Let them save (tra) this man from the Yaksma sent by the gods— the plants of which heaven has been the father, earth the mother, ocean the root

आपो अग्र दिव्या औषव्रय ।
तास्ते यक्ष्ममेनस्य १ मङ्गादनीनशन् ।। ३ ।।

—अ० वे० ८/७/३

भा०– सब से प्रथम और सबसे उत्कृष्ट औषधि जो रोग और पाप को नाश करने मे समर्थ है वे दिव्य गुणयुक्त अप=जलो के समान पवित्र और अन्यो को पवित्र करने वाले आप्त विद्वान् पुरुष है। वे शीतल स्वभाव होकर पापो के लिये सतापकारी हैं वे तेरे पाप से उत्पन्न राजरोग को शरीर के अग २ से विनाश कर देते है। जिस प्रकार रोगो को दूर करने मे दिव्य जल सब से उत्तम औषधि हैं और जल विलासादि द्वारा उत्पन्न रोगो को सुलभतया विनाश कर देता है उसी प्रकार आप्त पुरुष भी है जो ज्ञानोपदेश से पापभावो को दूर करते है। समस्त रोग जलो द्वारा दूर करने के उपाय हाइड्रोपैथी (जलचिकित्सा) द्वारा जानने चाहिये।

(G) The waters are the best and heavenly Plant,
From every limb of thine have they removed Consumption caused by sin.

(W) Waters (were) the beginning, heavenly herbs, they have made disappear from every limb thy (enasya) sinful yakshma.

प्रस्तृणतो स्तम्बिनीरेकशुङ्गा: प्रतन्वतीरोषधीरा वदामि ।
अंशुमती: काण्डिनीर्याविशाखा ह्वयामि ते वरुधो वैश्वदेवीरुग्रा:
पुरुषजीवनी ॥ ४ ॥

—अ० वे० ८/७/४

भा०– हे पुरुष ! मै परमेश्वर तुझे अच्छी प्रकार फैलने वाली, झुण्डो वाली, एक सरपत वाली, खुब बढकर फैलने वाली, नाना प्रकार की औषधि लताओ का उपदेश करता हूँ। और तुझे वहुत कोपलो वाली या अंशु अर्थात् सोम के गुणो वाली, काण्ड या पोरुओ वाली और जो शाखाओ से रहित या नाना प्रकार की शाखाओ वाली लताओ को जो समस्त विद्वान् पुरुषो के उपयोग की, अपना प्रभाव करने मे तीव्र, पुरुष शरीर को जीवन प्रदान करने या प्राण धारण कराने मे समर्थ है उनका उपदेश करता हूँ।

(G) I speak to Healing Herbs spreading, and bushy, to creepers and to those whose sheath is single,
I call for thee the fibrous and the reed like, and branching Plants dear to the Visve Devas powerful giving life to men

(W) The spreading, the bushy, the one-sheathed the extending herbs do I address, those rich in roots jointed (Kandini) that have spreading branches (Visakha), I call for thee the plants that belong to all the gods, formidable, giving life to men

यद्व सह: सहमाना वीर्य १ यच्च वो वलम् ।
तेनेममस्माद् यक्ष्मात् पुरुष मुञ्चतौषधीरथो कृणोमि भेषजम् ॥ ५ ॥

—अ० वे० ८/७/५

भा०– हे औषधियो ! तुम रोगो को दूर करने मे वलवती हो । जो तुम मे रोग दूर करने का सामर्थ्य और जो तुम्हारा पुष्टिकारक रस और बल है उससे इस पुरुष को इस राजयक्ष्मा आदि रोग से छुडाओ । और इस प्रकार औषधियो के वल पर मै रोगो को दूर करने का कार्य करता हूँ ।

(G) The conquering strength, the power and might which ye, victorious Plants, possess.
Therewith deliver this man here from this Consumption O ye Plants, so I prepare the remedy.

(W) What power (is) yours, ye powerful ones, (what) heroism and what strength (is) yours, therewith, herbs free ye this man from this Yakshma, now (atho) do I make a remedy

जविला नघारिपा जीवन्तीमोपधोमह्म ।
अरुन्धतीमुन्नयन्ती पुष्पा मधुमतीमिह हुवेस्मा अरिष्टतातये ॥ ६ ॥

—अ० वे० ८/७/६

भा०– इस रोगी पुरुष के स्वास्थ्य लाभ कराने के लिये मैं वैद्य आयुप्रद, किसी प्रकार की हानि न पहुँचाने वाली, जीवन्ती नामक औषधि को और रोगी की दशा को उत्तम रूप मे ला देने वाली, उसकी दशा को सुधारने वाली 'अरुन्धती' नामक औषधि को और मधुर रस वाली "पुष्पा" औषधि को वतलाता हूँ उसके सेवन का उपदेश करता हूँ वैद्य रोगी के रोग दूर करने उसे पुष्ट करने और उसके चित्त प्रसादन के लिये उचित औषधियो को नुसखा वना कर रोगी को दे ।

(G) The living plant that giveth life that driveth malady away, Arunhati, the rescuer, strengthening rich in sweets I call, to free man from scath and harm,

(W) Tne lively, by-no-means-harming, living herbs, the non-obstructing up-guiding' flourishing (pushpa) one, rich in sweets, do I call hither, for this man's freedom from harm

इहा यन्तु प्रचेतसो मादनीर्वचसो मम ।
यथेम पारयामसि पुरुष दुरितादधि ॥ ७ ॥

—अ० वे० ८/७/७

भा०— इस चिकित्सा के अवसर मे मुझ उत्कृष्ट ज्ञानवान् वैद्य के वाणी या उपदेश के अनुसार बुद्धिप्रद, रोगनाशक या स्निग्ध गुणयुक्त पौष्टिक औषधियाँ प्राप्त हो जिनसे इस पुरुष को दुखप्रद अवस्था से पार कर सके ।

(G) Hitherward let the sapient come, the friendly sharers of my speech.
That we may give this man relief and raise him from his evil plight.

(W) Let the fore-thoughtful ones come hither, allies (medini) of my spell (vachas) that we may make this man pass forth out of difficulty.

अग्नेर्घासो अपा गर्भो या रोहन्ति पुनर्णवा ।
ध्रुवा. सहस्रनाम्नीर्भेषजी: सन्त्वाभृता: ॥ ८ ॥

—अ० वे० ८/७/८

भा०— अग्नि को अपने भीतर धारण करनेवाली, और जलो को भीतर धारण करने वाली, जो औपधिया प्रति वर्ष वार २ नये सिरे से फूट पडती है ऐसी सदा स्थितिशील, शीघ्र नाश न हाने वाली सहस्रों नामवाली अथवा वलप्रद स्वरूप वाली रोगहारी औषधिया ला लाकर सग्रह की जावे ।

(G) Germ of the waters, Agni's food Plant ever-growing fresh and new,
Sure healing breathing thousand names let them be all collected here.

(W) Food of fire, embryo of the waters, they that grow up renewed, fixed, thousand -named, be they remedial (when) brought

अवकोल्वा उदकात्मान औपधय ।
व्यृषन्तु दुरित तीक्ष्णशृङ्ग्च ॥ ९ ॥

—अ० वे० ८/७/९

जल मे उतराने वाले सैवार के भीतर उत्पन्न होने वाली जलमय देहवाली, जल के बिना न जीने वाली और तीखे सीग या काटो वाली औपधियाँ भी दुखदायी रोग को विशेष रूप से दूर करे ।

(G) Let Plants whose soul is water, girt with Avaka Piercing with their sharp horns expel the malady

(W) Wrapped in avaka, water-natured let the herbs, sharp-horned, thrust away difficulty

उन्मुञ्चन्तीर्विवरुणा उग्रा या विषदूषणी: ।
अथो वलासनाशनी: कृत्यादूषणीश्च यास्ता इहा यन्त्वोषधी: ।। १० ।।

—अ० वे० ८/७/१०

भा०— रोग से मुक्त करने हारी, विशेष रूप से वरण करने योग्य या वरुण से रहित, निर्जल, अति बलवाली, विषो की नाशक और कफ को या शरीर के बलनाशक रोगो को नाश करने वाली, दुष्ट पुरुषो के दुष्ट घातक अपचारो से उत्पन्न पीडाओं का नाश करने वाली, औषधियाँ जो भी है वे सब इस वैद्यशाला मे प्राप्त हो ।

(G) Strong antidotes of poison, those releasers, from Varuna,
And those that drive away Catarrh, and those that frustrate magic arts, let all those p'ants come hitherward

(W) Releasing free from Varuna, formidable, that are poison-spoiling also balasa-dispelling and that are witch-spoiling let those herbs come hither

अपक्रीता सहीयसीर्वीरुधो या अभिष्टुता ।
त्रायन्तामस्मिन् ग्रामे गामश्व पुरुष पशुम् ।। ११ ।।

— अ० वे० ८/७/११

भा०— दूर देश से द्रव्य के बदले प्राप्त की गई, अतिबलशाली लताए, जिनकी सब तरफ प्रशसा सुनाई दे रही हो वे भी हमारे इस ग्राम मे गौ, घोडे आदि पशु और पुरुषो को भी रोगो से बचाये ।

(G) Let purchased Plants of mightier power, Plants that are praised for excellence, Here in this village safely keep cattle and horses man and beast.

(W) Let the purchased, very powerful plants that are praised save in this village safely keep cow, horse, man and beast

मधुमन्मूल मधुमदग्रमासा मधुमन्मध्य वीरुधा बभूव ।
मधुमत् पर्णं मधुमत् पुष्पमासा मधो सभक्ता अमृतस्य भक्षो

घृतमन्न दुह्रता गोपुरोगवम् ।। १२ ।।

—अ० वे० ८/७/१२

भा०– इन औपधियो का मूल मधु के समान मधुर रसयुक्त है, इन औपधियो का अग्रभाग, कोपल मधुर रस से युक्त है, इन औपधियो का मध्यभाग मधुर रस से युक्त होता है, इसी प्रकार इन औपधियो का पत्ता मधुरस से युक्त होता है, इस कारण से ये सब औपधिये मधु, अमृत से सिची हुई है, इनमे मधु का अश सर्वत्र व्यापक है । इससे ये अमृतमय औषधिये अमृत के बने भोजन के समान दीर्घायुप्रद है । हे पुरुषो ! ये औपधिया ही खाद्य पदार्थ घी आदि अन्न को पूर्ण करती बढाती और प्रदान करती हैं, जिन मे गाय का दूध सब से मुख्य है । नाना प्रकार को औपधिया है जिनमे से किसी की जड मधुर, किसी की कोपल किसी का पत्ता, किसी का फूल, फलत इन मे मधु मानो नाना प्रकार से प्राप्त है । यही सब अमृत का भोजन है, घी अन्न और दूध, जिन मे दूध सब से मुख्य है । ये औपधिया ही ये सब भोजन हमको प्राप्त करावे ।

G) Sweet is their root, sweet are these Plants'top branches, sweet also is their intermidiate portion, Sweet is their foliage and sweet their blossom, combined with sweetness is their taste of Amrita, food fatness let them yield with kine preceding

(W) Rich in sweets the root, rich in sweets the tip of them, rich in sweets was the middle of the plants, rich in sweets the leaf, rich in sweets the flower of them, partaking of sweet, a drink of nectar (amrita), let them milk out Ghee, food with milk (go) as chief (Purogava)

यावती कियतोश्चेमा पृथिव्यामध्योपधी ।
ता मा सहस्रपर्ण्यो मृत्योर्मुञ्चन्त्वहस ।। १३ ।।

—अ० वे० ८/७/१३

पृथ्वी पर जितनी और कितनी भी ये ओपधिया है वे सब हजारो प्रकार के पत्तो वाली मुझे मृत्यु के दु:ख से दूर करे बचावे ।

(G) These Plants that grow upon the earth, whatever their number and their size, Let these with all their thousand leaves free me from death and misery

(W) However many (may be) these herbs upon the earth let them, thousand leaved, free me from death from distress

वैयाघ्रो मणिर्वीरुधां त्रायमाणोऽभिशस्तिपाः ।
अमीवाः सर्वा रक्षांस्यप हन्त्वधि दूरमस्मत् ॥ १४ ॥

—अ० वे० ८/७/१४

भा०– औषधियो के रसो से बनाया हुआ नाना प्रकार की गन्ध देने वाला मणि, रोगस्तम्भन गुटिका रोगो से रक्षाकारी निन्दनीय पापमय रोगो से रक्षा करने वाला होता है। वह सब प्रकार के रोग जन्तुओ को और बाधक, जीवन के विघ्नकारी रोगादि पीड़ा के कारणों को हम से दूर मार भगावे। औषधियो के रस से तीव्र गन्ध की गोलियो या पुटिकाओ को बनावे जो सदा जेब मे रहने से रोगो और पीडाकारी कारणो का तीव्र गन्ध से नाश करे और रोगो से बचावे ।

"विविध विशेषेण वा आघ्रीयते इति व्याघ्रः स एव वैयाघ्र ।"

सचासौ मणिश्चेति । तपेदिक्, सिरदर्द आदि रोगो मे निरन्तर सूंघने के लिये विशेष औषधि-रसो की शीशो या फायो का प्रयोग और प्लेग आदि के समय फिनाइल आदि गोलियो को जेब मे रखने आदि का प्रयोग किया जाता है । पूर्वकाल मे ऐसी रोगहर औषधियो को कपडे मे बाधकर गले मे या बाजू पर बाध लिया जाता था ।

(G) May the Plant's tiger-amulet, protective, guardian from the curse,
Beat off the brood of demons, drive all maladies afar from us

(W) Let the tigerish amulet of plants saving, protecting from imprecation smite far away from us disease (and) all demons

सिंहस्येव स्तनथो स विजन्तेऽग्नेरिव विजन्त आभृताभ्य ।
गवा यक्ष्म. पुरुषाणा वीरुद्भिरतिनुत्तो नाव्या एतु स्रोत्या ॥ १५ ॥

—अ० वे० ८/७/१५

भा०– जिस प्रकार पशु शेर के गर्जन से खूब भयभीत हो जाते है और जिस प्रकार पशु व्याकुल हो जाते है उसी प्रकार सग्रह की हुई औषधियो से रोग के कीट भी कापते है और भय से व्याकुल हो जाते है और इसीलिए औषधि लताओ से पराजित हुआ हुआ गौ आदि पशुओ और मनुष्यो का पीडाकारी रोग नावो से तरने योग्य नदियो के समान हमारे शरीर मे सदा नवरक्त से पूर्ण बहाने वाली रक्त नाडियो से परे दूर चला जाय । यहाँ मुख्य अर्थ भी सम्भव है कि नावो से तरने योग्य नदियो से दूर चला जाय । वेद मे '९० या ९९ बड़ी

नदियो के पार चला जाना" यह मुहावरा अति दूर चले आने के अर्थ मे प्रायः प्रयुक्त हुआ है। इसका प्रयोग भाषाओ मे उसी प्रकार समझना चाहिए जैसे "सात समुद्रो पार" का प्रयोग होता है अथवा जीवन के एक २ वर्ष को २ "नाव्य नदी" से उपमा दी गई है। "९९ नाव्य नदी" जीवन के ९९ वर्ष है। रोगादि हमारे ९९ वर्ष के जीवन से परे रहे।

(G) Before the gathered Plants they fly and scatter as though a lion's roar or fire dismayed them. Expelled by Plants let men's and kine's Consumption pass from us to the navigable rivers.

(W) As at the roaring of a lion do they quake, as at fire do they tremble at the herbs when brought, let the Yakshma of kine, of men, go driven by the plants beyond navigable streams.

मुमुचाना औषधयोग्नेर्वैश्वानरादधि ।
भूमिं सतन्वतीरित यासा राजा वनस्पतिः ॥ १६ ॥

—अ० वे० ८/७/१६

भा०— हे औषधि लताओ ! तुम जिनका राजा, रक्षक वनस्पति, वनपाल या बड़ा वृक्ष है वे सर्व पुरुषो के हितकारी अग्नि से दूर सुरक्षित रहकर भूमि को आच्छादित करती हुई फैलती जाओ। राज्य मे वनपाल औषधियो की रक्षा करे। वन मे औषधिया खूब अधिक मात्रा मे उत्पन्न हो। अग्नि से उनको बचाया जाय।

(G) Emancipated from the sway of Agni, of Vaisvanara, Go covering the earth, ye Plants whose ruler is Vanaspati.

(W) The herbs, becoming freed from Agni Vaisvanara—go ye stretching over the earth, [ye] whose king is the forest-tree.

या रोहन्त्याङ्गिरसी. पर्वतेषु समेषु च ।
ता न पयस्वती: शिवा औषधी सन्तु शं हृदे ॥ १७ ॥

—अ० वे० ८/८/१७

भा०— जो अग या शरीर मे रस को उत्पन्न करने हारी, वा अगिरा आयुर्वेद के विद्वानो की परीक्षित औषधिया पर्वतो और समस्थलो मे उगती है वे पुष्टिकारक, वीर्यरसवाली कल्याण और सुखकारी औषधियाँ हमारे हृदय की शाति करने वाली हो।

(G) May these be pleasant to our heart auspicious rich in store of milk.
These Plants of the Angirasas which grow on mountain and on plains.

(W) They who belonging to the Angirasas, grow on mountains and on plains-let those herbs rich in milk, propitious, be weal to our heart.

याश्चाहं वेद वीरुधो याश्च पश्यामि चक्षुषा ।
अज्ञाता जानीमश्च या यासु विद्म च सभृतम् ।। १८ ।।
सर्वा· समग्रा औषधीर्बोधन्तु वचसो मम ।
यथेम पारयामसि पुरुष दुरितादधि ।। १९ ।।

—अ० वे० ८/७/१८, १९

भा०— मैं जिन लताओ को जानता हूँ और जिन लताओ को आँख से देखता हूँ और जो अभी तक नही जानी गई है और जिनको हम सब प्राय. जाना करते हैं और जिन मे से सग्रह किए हुए भाग को प्राप्त कर लेते है उन सब, समस्त प्रकार की औषधियो को मुझ आयुर्वेदज्ञ के वचन से सब मनुष्य जाने, कि किस प्रकार इस रोगी पुरुष को दु खप्रद रोग से छुडावें, मुक्त करे ।

(G) The Plants I know myself, the Plants that with mine eye I look upon
Plants yet unknown, and those we know, wherein we find that power is stored

(W) Both what plants I know, and what I see with the eye, the unknown and what we are acquainted with, and those in which we know w'iat is brought to gether

(G) Let all the congregated Plants attend and mark mine utterance,
That we may rescue this man there and save him from severe distress

(W) Let all the entire herbs note [bodh] my spell [vachas], that we may make this man pass forth out of difficulty

अश्वत्थो दर्भो वीरुधा सोमो राजामृत हवि ।
व्रीहिर्यवश्च भेपजो दिवस्पुत्रावमर्त्यो ।। २० ।।

—अ० वे० ८/७/२०

भा०— पीपल, दाभ, कुशा और औषधियो का राजा सोमलता और अन्न अमृतस्वरूप दीर्घायु प्रदान करने वाला धान और जो भी रोगो को दूर करने वाले कभी विनाश न होने

वाले द्युलोक से बरसे हुए मेघ के जल और ओस एव सूर्य को धूप से उत्पन्न होने वाले है, अथवा द्युलोक से रस और सूर्य के प्रकाश के बल से 'पुत्र' अर्थात्, बहुत से मनुष्यो की जीवन रक्षा करने मे समर्थ हैं ।

व्रीहियव अमर्त्य = अर्थात् न मरने वाले किस प्रकार है, क्योकि धानो से बीज और बीजो से पुनः धान उत्पन्न होते है इस कारण वे कभी पृथ्वीतल से विनष्ट नही होते । इसी दृष्टान्त से जीव भी कभी नही मरता । "सस्यमिव मर्त्यः पच्यते सस्यमिवाजायते पुन.।" कटोप० ।

[G] Asvattha, Darbha, King of Plants, is Soma, deathless sacrifice:
Barley and Rice are healing balms the sons of heaven who never die

(W) The asvattha, the darbha, Soma king of plants, immortal oblation—rice and barley [are] remedial immortal sons of heaven

उज्जिहीध्वे स्तनयत्यभिक्रन्दत्योषधी. ।
यदा वः पृश्निमातर पर्जन्यो रेतसावति ।। २१ ।।

—अ० वे० ८/७/२१

हे पृश्नि = रसो को अपने भीतर ले लेने मे समर्थ, पृथ्वी माता से उत्पन्न औषधियों ! जब रसो, जलो का प्रदान करने वाला मेघ गरजता है खूब ध्वनि करता है तब तुम ऊपर उठती हो, प्रसन्न होती हो, पुलकित होती हो, उस समय वह जल से तुम्हारी रक्षा करता है ।

(G) Lift yourselves up, ye healing Plants, loud is the thunder's crash and roar.
When with Full flow Parjanya,ye children of Prishni, blesseth you.

(W) Ye rise up (ud-ha), it thunders it roars at (you), O herbs ! when O ye Children of the spotted one, Parjanya favours you with seed

तस्यामृतस्येम बल पुरुष पाययामसि ।
अथो कृणोमि भेषज यथासच्छतहायन ।। २२ ।।

—अ० वे० ८/७/२२

भा०— उस जल के परिवर्तित रूप इस औषधि और अन्न के रूप मे प्राप्त बल को हम लोग इस पुरुष को पिला देते है । और साथ ही रोग की निवृत्ति भी करते है जिससे यह पुरुष सौ वर्ष तक जीवित रहता है ।

(G) We give the essence of that stream of nectar to this man to drink.
So I prepare a remedy that he may live a hundred years.

(W) Of this amrita we make this man to drink the strength, now do I make a remedy, that he may be one of a hundred years (hayana).

वराहो वेद वीरुधं नकुलो वेद भेषजीम् ।
सर्पा गन्धर्वा या विदुस्ता अस्मा अवसे हुवे ।। २३ ।।
—अ० वे० ८/७/२३

वराह, सूकर नाना प्रकार की जिन खाद्य और रोगहारी लताओं को जानता है और नेवला रोग और विष दूर करने हारी जिन औषधियों को जानता है और जिन औषधियों को सर्प, पृथ्वी पर पेट के बल सरकने वाले प्राणी जानते हैं और गन्ध से अपने खाद्य पदार्थों को प्राप्त करने वाले गौ, वानर आदि पशु लोग तथा गौओं को धारण पालन करने वाले पशुपाल लोग और विद्वान लोग जिन औषधियों को जानते हैं उनको मैं उत्तम वैद्य इस पुरुष की प्राणरक्षा के लिये प्राप्त करूं । पण्डित ग्रीफिथ ने इस मन्त्र पर टिप्पणी में लिखा है कि जंगली सूकर की खाद्य मूल कन्दों को खोजने और खोदने में असाधारण शक्ति होती है ।

(G) Well doth the wild boar know a Plant, the mongoose knows the Healing Herb, *I call to aid this man, the Plants which serpents and Gandharvas know.*

(W) The boar knows the plant, the mongoose knows the remedial (herb), what ones the serpents, the Gandharvas know, those I call to aid for him

या सुपर्णा आङ्गिरसीर्दिव्या या रघटो विदुः ।
वयांसि हंसा या विदुर्याश्च सर्वे पतत्रिणः ।
मृगा या विदुरोषधीस्ता अस्मा अवसे हुवे ।। २४ ।।
—अ० वे० ८/७/२४

भा०— जिन अंगिरा, शरीर शास्त्र वेत्ता ऋषि लोगों की उपदेश की हुई औषधियों को उत्तम, विशाल पक्ष वाले या बड़ी उडान वाले बाज शिकरा, गरुड गीध आदि जानते हैं और जिन दिव्य गुणवाली औषधियों को छोटी उडान वाले पक्षी या "रघट" अति वेग से चलने वाले पक्षी जानते हैं और सब पंखों वाले जिन २ औषधियों को जानते हैं और जिन औषधियों को मृग, आरण्य पशु हस्ति, व्याघ्र, गवय, मृग आदि जानते हैं उन सबको इस पुरुष की रक्षा के लिये प्राप्त करता हूँ, संग्रह करता हूँ ।

(G) Plants of Angirasas which hawks celestial Plants which eagles know, Plants known to swans and lesser fowl, Plants know, to all the birds that fly, Plants that are known to sylvan beasts, — I call them all to aid this man

(W) What (herbs) of the Angirasas the eagles (know), what heavenly ones the Raghats know what ones the birds, the swans know and what all the winged ones, what herbs the wild beasts know — those I call to aid for him

यावतीनामोषधीना गाव प्राश्नन्त्यघ्न्या यावतीनामजावयः ।
तावतीस्तुभ्यमोषधी शर्म यच्छन्त्वाभृता ।। २५ ।।

—अ० वे० ८/७/२५

भा०— और जितनी औषधियो को कभी न मारने योग्य गौए खाती है और जितनी औषधियो को भेड बकरिये खाती है उतनी सभी औषधिया सग्रह की जाकर तुझे सुख प्रदान करे।

(G) The multitude of herbs whereon the cows whom none may slaughter feed all that are food for goats and sheep
So many Plants brought hitherward give shelter and defence to thee.

(W) Of how many herbs the inviolable kine partake (pra-as), of how many the goats and sheep, let so many herbs, being brought, extend protection to thee.

यावतीषु मनुष्या भेषज भिषजो विदु ।
तावतीर्विश्वभेषजीरा भरामि त्वामभि ।। २६ ।।

—अ० वे० ८/७/२६

भा०— जितनी औषधियो मे रोग दूर करने का कार्य करने वाले मनुष्य, वैद्य, डाक्टर लोग रोग दूर करने के गुण को जानते है उतनी सब रोगहारी औषधियो को तेरे लिये हे पुरुष ! ले आता हूँ।

(G) Hitherward unto thee I bring the Plants that cure all maladies,
All Plants wherein physicians have discovered health bestowing power.

(W) In how many (herbs) human physicians (bhishaj) know a remedy so many all-remedial, do I bring unto thee

पुष्पवतीः प्रसूमती फलिनीरफला उत ।
समातर इव दुह्नामस्मा अरिष्टतातये ॥ २७ ॥

—अ० वे० ८/७/२७

भा०— फुलो वाली नवपल्लव, नयी शाखाओ, नयी जडो को उत्पन्न करने वाली फलो वाली और फलरहित औपधियो को सम्मान पद पर विराजमान माताओ या गौवो के समान इस पुरुष के कल्याण के लिये दोह लू प्राप्त करू ।

(G) Let Plants with flower and plants with bud the fruitful, and the fruitless all,
Like children of one mother yield their stores for this man's perfect health.

(W) Rich in flowers rich in shoots (Prasu), rich in fruits, also those lacking fruits—like joint mothers, let them milk unto this man in order to his freedom from harm.

उत् त्वाहार्प पञ्चशलाददधो दश शलादुत ।
अथा यमस्य पड्वीशाद् विश्वस्माद् देवकिल्विषात् ॥ २८ ॥

—अ० वे० ८/७/२८

भा०— हे पुरुष! तुझको मै सताप करने वाले शल या शर, पीडाजनक रोग से अथवा पचप्राणो के कष्टो से और तुझे काटने और चुभने एव क्षीण करने वाले दु खदायी, रोग अथवा दश इन्द्रियो के कष्टो से और शरीर मे बाधने वाले या यातना देने वाले कष्ट की बेड़ियो से और सब प्रकार के देव, ईश्वर द्वारा पाप—कर्मो के फलरूप मे प्राप्त कष्टो से ऊपर ले आता हूँ, तुझे मुक्त करता हूँ ।

(G) From the five arrowed, from the ten arrowed have I delivered thee,
Freed from yama's fetter and from all offence against the gods.

(W) I have taken thee up out of what has five salas, and also out of what has ten salas, out of yama's fetter, out of all offence against the gods

केन पार्ष्णी आभृते पूरुषस्य केन मास सभृत केन गुल्फौ ।
केनाङ्गुलीः पेशनीः केन खानि केनोच्छ्लङ्खौ मध्यतः क प्रतिष्ठाम् ॥ १ ॥

—अ० वे० १०/२/१

भा०— पुरुष, मनुष्य या प्राणी के देह के दोनो एडियाँ किसने बनाई है ? और मास

किसने देह मे लाकर लगाया ? गुल्फ = टखने किसने लगाये ? पोरुओ वाली नाना अवयवो से युक्त ये अंगुलिया किसने जोड़ दी ? शरीर के ये नाक, कान, मुँह आदि इन्द्रियो के छिद्र किसने बनाये ? सिर के ऊपर के दोनो कपाल किसने बनाये ? और बीच मे बैठने के लिये चूतड भाग किसने वनाया ?

(G) Who framed the heels of Purusha ? Who fashioned the flesh of him ? Who formed and fixed his ankles ?
Who made the opening and well moulded fingers ? Who gave him foot-soles and a central station ?

(W) By whom were brought the two heels of a man (Purusha) ? by whom was his flesh put together ? by who his two ankle-joints (gulpha) ? by whom his cunning (pesani) fingers ? by whom apertures ? by whom his (two) uchlamkhas in the midst ? who (put to-gether) his footing (pratistha).

कस्मान्नु गुल्फावधरावकृण्वन्नष्ठीवन्तावुत्तरौ पूरुषस्य ।
जङ्घे निर्ऋत्य न्यदधु क्व स्विज्जानुनोः सन्धी क उ तच्चिकेतु ॥ २ ॥

—अ० वे० १०/२/२

भा०— किस कारण से पुरुष के नीचे के दोनो टखने और ऊपर के घुटने बनाये गये है ? और क्यो दोनो जांघे अलग २ करके रखी गई है ! और दोनो गोडो के जोडो को कहाँ जोड़ा गया है इस सब रहस्य को कौन जानता है ?

(G) Whence did they make the ankles that are under, and the knee-bones of Purusha above them ?
What led them onward to the legs' construction ? Who planned and formed the knees' articulation ?

(W) From what, now, did they make a man's two ankle-joints below, his two knee-joints above ? separating his two back thighs, where forsooth, did they set them in ? the two joints of his knees—who indeed understands that ?

चतुष्टय युज्यते सहितान्त जानुभ्यामूर्ध्वं शिथिर कबन्धम् ।
श्रोणी यदूरू क उ तजजान याभ्यां कुसिन्ध सुदृढ व भूव ॥ ३ ॥

—अ० वे० १०/२/३

भा०-- पूर्वोक्त दोनो जाघे और दोनो गोडे इन चारो को इनके सिरे खूब अच्छी प्रकार मिला २ कर जोडे गये है और टागो के साथ ऊपर कवन्ध =धड भाग शिथिल रूप से रख दिया गया है। दो कूल्हे और ये दोनो जघाएँ इनको किसने बनाया। जिनके कारण यह कुत्सित, दुर्गन्ध मल मूत्र वहाने वाला या विचित्र रूप से वन्धा हुआ, अथवा परस्पर ससक्त अथवा छोटी २ नाडियो से पूर्ण शरीर खूब मजबूत हो गया है।

(G) A fourfold frame is fixt with ends connected, and up above the knees a yielding belly.
The hips and thighs, who was their generator, those props whereby the trunk grew firmly established ?

(W There is joined, fourfold, with closed ends, above the knees, the plaint trunk, what the hips are, the thighs—who indeed produced that, by which the body became firm ?

कति देवा कतेम त आसन् य ग्रोवाश्चिक्यु पूरुषस्य ।
कति स्तनौ व्यदधु क कफोडौकति स्कन्धान् कति पृष्टीरचिन्वन् ॥ ४ ॥
—अ० वे० १०/२/४

भा०— इस शरीर मे देव जीवन–ज्योति के प्रकाशक तत्त्व कितने है ? उनमे से वे कौनसे २ है जो पुरुष–देह के छाती और गर्दन के मोहरो को बना रहे है ? और स्तनो को कितने तत्त्व विशेष रूप से धारण कर रहे है ? और कौनसा तत्त्व दोनो हसुलियो या कपोल = गालो को धारण करता है। और कन्धो को कितने तत्त्व धारण कर रहे है। और पसुलियो या पीठ के मोहरो को कितने तत्त्व बनाये हुए हैं।

(G) Who and how many were those gods who fastened the chest of Purusha and neck to-gether ?
How many fixed his breasts ? Who framed his elbows ? How many joined to-gether ribs and shoulder ?

(W) How many gods and which were they, who gathered the breast, the neckbones of man ? how many disposed the two teats ? who the two collar-bones ? how many gathered the shoulder bones ? how many the ribs ?

को अस्य बाहू समभरद् वीर्यं करवादिति ।
असौ को अस्य तद् देवः कुसिन्धे अध्या दधौ ॥ ५ ॥

—अ० वे १०/२/५

भा०– इस पुरुष के बाहुओ को कौनसा देव पुष्ट करता है कि वह ऐसा २ वीर्य, बल का काम करे ? इसके भुजाओ के ऊपर के भागो को कौन बनाता है और उनको कौन देव शरीर मे स्थापित करता है ?

(G) Who put to-gether both his arms and said, let him show manly strength ? Who and what God was he, who set the shoulder-blades upon the trunk ?

(W) Who brought to-gether his two arms, saying "he must perform heroism" ? What god then set on his two shoulders upon the body (kusindha) ?

क सप्त खानि वि ततर्द शीर्षणि कर्णाविमौ नासिके चक्षणी मुखम् ।
येषा पुरुत्रा विजयस्य मह्मनि चतुष्पादो द्विपदो यन्ति यामम् ॥ ६ ॥

—अ० वे० १०/२/६

भा०–कौन देव शिर भाग मे सात इन्द्रियो के छिद्रों को विशेष रूप से गढ कर बनाता है ? और कौन इन दो कानो, इन दो कान के छिद्रो और इन दो आखो और इस मुख को किसने बनाया जिनके विजय की महिमा=महान् सामर्थ्य मे वहुत से चोपाये और पक्षिगण और दोपाये मनुष्य भी अपना जीवन–मार्ग तय करते है ।

(G) Who pierced the seven openings in the head ? Who made these ears, these nostrils eyes, and mouth,
Through whose surpassing might in all directions bipeds and quadrupeds have power of motion ?

(W) Who bored out the seven apertures in his head—these ears, the nostrils, the eyes, the mouth ? in the might of whose conquest in many places quadrupeds and bipeds go their way

हन्वो हि जिह्वामदधात् पुरूचीमधा महीमधि शिश्राय वाचम् ।
स आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तरपो वसान क उ तच्चिकेत ॥ ७ ॥

– अ० वे० १०/२/७

भा०– जो देव दोनो जवाडो के बीच मे जीभ को रखता है और वहाँ ही वह सर्व-व्यापक बडी भारी वाक्–शक्ति को स्थापित करता है। वह लोको के भीतर व्यापक समस्त जीवनो, प्राणियो कर्मो, ज्ञानो और मूलकारण रूप प्रकृति के परिमाणुओ मे भी व्यापक है, कौन उसको जानता है ?

(G) He set within the jaws the tongue that reaches far, and thereon placed Spech the mighty Goddess
He wanders to and fro mid living creatures, robed in the waters, who hath understood it ?

(W) Since in his jaws he put his ample tongue then attached to it great voices he rolls greatly on among existences, clothing himself in the waters who indeed understands that £

मस्तिष्कमस्य यतमो ललाट ककाटिका प्रथमो य: कपालम् ।
चित्वा चित्य हन्वो. पूरुपस्य दिव रुरोह कतम स देव. ॥ ८ ॥
—अ० वे० १०/२/८

भा०–जो देव इस पुरुप–देह के मस्तिष्क को, ललाट, माथे को और जो सबसे प्रथम विद्यमान इस पुरुष के गले की घटी और कपाल, खोपडी को और पुरुष देह के दोनो जवाडो के बीच की रचना को बनाकर प्रकाशस्वरूप द्यौ या मोक्षपद मे स्वय व्याप्त हुआ है वह कौनसा है ?

(G) Who was he, first, of all the Gods who fashioned his skull and brain and occiputand forehead.
The pile that Purusha's two jaws supported ? Who was that God who mounted up to heaven ?

(W) Which was the God who produced his brain, his forehead, his hindhead (kakatikas), who first his skull, who having gathered a gathering in man's jaws ascended to heaven ?

प्रियाऽप्रियाणि बहुला स्वप्न सबाधतन्द्रय: ।
आनन्दानुग्रो नन्दाश्च कस्माद् वहति पूरुप ॥ ९ ॥
—अ० वे० १०/२/९

भा०– हे विद्वान् पुरुषो ! विचार करो कि बलवान होकर यह पुरुष बहुत प्रकार के प्रिय, चित्त को भले लगने वाले और अप्रिय, चित्त को बुरे लगने वाले भावो को, निद्रा वा स्वप्न पीडा और थकान, आनन्दो और हर्षो को किस हेतु से या कहाँ से प्राप्त करता है ?

(G) Whence bringeth mighty Purusha both pleasant and unpleasant things of varied sort, sleep, and alarm, fatigue, enjoyments and delights ?

(W) Numerous things dear and not dear sleep oppressions and oppressions and wearinesses, delights and pleasures-from where does formidable man bring them ?

आर्तिरवर्तिर्निर्ऋति कुतो नु पुरुषेऽमतिः ।
राद्धि समृद्धिरव्यृद्धिर्मतिरुदितयः कुत ॥ १० ॥

—अ० वे० १०/२/१०

भा०– पुरुष मे पीडा, दुःख, मानसिक व्यथा, बेचैनी या बेरोजगारी पाप की प्रवृत्ति और अज्ञान ये कहाँ से आये ? और किस कारण से उत्पन्न होते है ! और कार्य–सिद्धि सपत्ति, विशेष सपत्ति का अभाव अथवा दरिद्रता, सदाचार का अभाव, विशेष ज्ञान और ऊपर उठने की प्रवृत्तिया कहाँ से और किस कारण से उत्पन्न होती है ?

(G) Whence is there found in Pursha want, evil, suffering, distress ?
Whence come success, prosperity, opulence, thought, and utterance ?

(W) Whence now in man come mishap, ruin, perdition, misery accomplishment, success, non-failure? Whence thought, uprising ?

को अस्मिन्नापो व्यदधाद् विषूवृत. पुरूवृत सिन्धुसृत्याय जाताः ।
तीव्रा अरुणा लोहिनीस्ताम्रधूम्रा ऊर्ध्वा अवाचीः पुरुषे तिरश्ची ॥ ११ ॥

—अ० वे० १०/२/११

भा०– इस पुरुष देह मे द्रवो, रक्त धाराओ को किसने रचा है, जो नाना प्रकार से देह मे मे घूमते है, समस्त अगो मे घूमते और नाडियो मे गति करने के योग्य हो गये है और यह नाडिये इस शरीर मे तीव्र गति करने वाली लाल, सुर्ख और लाल नीले रग की होकर, उपर, नीचे और तिरछी भी जाती है ।

(G) Who stored in him floods turned in all directions, moving diverse and formed to flow in rivers.
Hasty, red, copper-hued, and purple, running all ways in Purusha upward and downward ?

(W) Who disposed in him waters, moving apart, much moving, produced for river running, strong, ruddy, red, dark and turbid, upward, downward, crosswise in man ?

को अस्मिन् रूपमदधात् को मह्मानं च नाम च ।
गातुं को अस्मिन् कः केतुं कश्चरित्राणि पूरुषे ॥ १२ ॥

—अ० वे० १०/२/१२

भा०– इस पुरुष देह मे कौन रूप को धारण करता है ? महत्व या महिमा और नाम को कौन उत्पन्न करता है ? इस पुरुष मे गातु=गति चेष्टा वा वाणी को कौन स्थापित करता है ? आत्मा को ज्ञापक चिह्न ज्ञन या ज्ञान, सामर्थ्य कौन देता है ? और नाना प्रकार के सत् और असत् चरित्रो, इन्द्रियो के व्यापारो और प्रवृत्तियो को कौन स्थापित करता है ?

(G) Who gave him visible form and shape ? Who gave him magnitude and name ?
Who gave him motion, consciousness ? Who furnished Purusha with feet ?

(W) Who set form in him ? who both bulk (mahman) and name ? who set in him progress (Gatu) ? Who display (Ketu) ? Who set saviours in man ?

को अस्मिन् प्राणमवयत् को अपानं व्यानमु ।
समानमस्मिन् को देवोधि शिश्राय पुरुषे ॥ १३ ॥

—अ० वे० १०/२/१३

भा०– इस पुरुष देह मे प्राण को, जीवन शक्ति को कौन सचारित करता है, जिस प्रकार जुलाहा कपडे के तन्तुओ को बुन देता है उस प्रकार इस देह के ताने मे प्राण रूपी वरनी कौन बुन देता है ? अपान और व्यान को कौन सचारित कर देता है ? कौन देव इस पुरुष देह मे समान नामक प्राण भेद को स्थापित करता है ?

भाषा भाष्य – पं० जयदेव शर्मा, विद्यालकार

(G) Who wove the vital air in him, who filled him with the downward breath ? What God bestowed on Purusha the general prevailing air ?

(W) Who wove in him breath ? Who expiration and respiratio (Vyana) ? What God attached conspiration (समान) to man hera ?

को अस्मिन् यज्ञमदधादेको देवोऽधि पूरुषे ।
को अस्मिन्त्सत्यं कोऽनृतं कुतो मृत्युः कुतोऽमृतम् ।। १४ ।।
—अ० वे० १०/२/१४

भा०— वह एक कौनसा प्रकाशक देव है जो इस पुरुष देह मे यज्ञरूप शक्तिप्रद आत्मा को अधिष्टाता रूप मे स्थापित करता है ? इसमे सत्य को कौन रखता है ! अनृत, झूठ को कौन रखता है ? मृत्यु, मौत अर्थात् देह का आत्मा से छूट जाना किस कारण से होता है ? और आत्मा अमृत किस कारण से और किस प्रकार से वा कहाँ से आता है ?

भाषा भाष्य – प जयदेव शर्मा, विद्यालंकार

(G) What God, what only Deity placed sacrifice in Purusha ? Who gave him truth and falshohood ? Whence came death and immortelity ?

(W) What one God set sacrifice in man bere ? Who set in him truth ? Who untruth ? Whence comes death ? Whence the immortal ?

को अस्मै वासः पर्यदधात् को अस्यायुरकल्पयत् ।
बलं को अस्मै प्रायच्छत् को अस्याकल्पयज्जवम् ।। १५ ।।
—अ० वे० १०/२/१५

भा०— इस पुरुष को पहनने के वस्त्र, देह रूप चोला कौन पहराता है ? इसको आयुष्काल को कौन नियत करता है ? इसको बल = शारीरिक शक्ति कौन प्रदान करता है ? इस शरीर के वेग या क्रिया–सामर्थ्य को कौन रचता है ?

भाषा भाष्य – प० जयदेव शर्मा, विद्यालकार

(G) Who wrapped a garment round him ? Who arranged the life he hath to live ? Who granted him the boon of speech ? Who gave this fleetness to his feet ?

(W) put about him clothing ? Who prepared his life time ? Who extended to him stlength ? Who prepared his swiftness ?

केनापो अन्वतनुत केनाहरकरोद् रुचे ।
ऊपसं केनान्वैन्द्ध केन सायंभवं ददे ।। १६ ।।

—अ० वे० १०/२/१६

भा०– ये जल, देह मे रुधिर रस आदि पदार्थ किस के सामर्थ्य से सर्वत्र फैले है ? किसने प्रकाश के लिए सूर्य को बनाया ? किसने उषा काल को पुरुष के अनुकूल प्रकाशित किया ? और किसने सायकाल बनाया ?

भाषा भाष्य – प० जयदेव शर्मा, विद्यालंकार

(G) Through whom did he spread waters out, thrPngh whom did he make Day to shine ?
Through whom did he enkindle Dawn and give the gift of eventide ?

(W) With what did he stretch the waters alone ? with what did he make the day to shine ? with what did he kindle the dawn ? with what did give the coming-on of evening ?

को अस्मिन् रेतो न्यदधात् तन्तुरा तायतामिति ।
मेधा को अस्मिन्नध्योहत् को वाणं को नृतो दधौ ।। १७ ।।

—अ० वे० १०/२/१७

भा०– इस पुरुष देह मे वीर्य को कौन स्थापित करता है कि जिससे इस पुरुष को प्रजातन्तु और अधिक फैले ? इस पुरुष मे मेधा बुद्धि को कौन धारण करता है ? कौन इसमे वाणी या वाक्–शक्ति को धारण कराता और नृत्य या हाथ पैर आदि की अपने इच्छानुरुप चेष्टाओ को कौन धारण करता है ?

भाषा भाष्य पं जयदेव शर्मा, विद्यालकार

(G) Who set the seed in him and said, "still be the thread of lifa spun out" ?
Who gave him intellect besides ? who gave him voice and gestic power ?

(W) Who put in him seed, saying "let his line be extended" ? who conveysd into him wisdom ? who gave him music ? Who dances ?